Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MSW-105
शोध विधियां तथा सांख्यिकी

खण्ड
1
शोध का अर्थ, आवश्यकता समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इकाई- 1

शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता 5

इकाई- 2

शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन 13

इकाई- 3

शोध परिकल्पना 18

इकाई- 4

शोध प्रतिचयन एवं आँकड़ों का प्रतिचयन 28

परामर्श समिति

प्रो० नागेश्वर राव	कुलपति – अध्यक्ष
डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता –कार्यक्रम संयोजक
डॉ० ए० के० सिंह	कुलसचिव – सचिव

परिमापक

प्रो० एस० पी० गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो० राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो० हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

परिमापक

प्रो० एस० पी० गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो० एस० सी० अग्रवाल	शिक्षाशास्त्र विभाग, सी०एस०जे०एम०, विश्वविद्यालय, कानपुर

लेखक

डॉ० प्रदीप कुमार पाण्डेय	उपनिदेशक/ उपाचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित २०२४.

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा० लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

MSW-105
शोध विधियाँ तथा सांख्यिकी

खण्ड-1 शोध का अर्थ, आवश्यकता, समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इकाई-01 शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता

इकाई-02 शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

इकाई-03 शोध परिकल्पना

इकाई-04 शोध प्रतिचयन एवं आंकड़ों का प्रतिचयन

खण्ड-2 अनुसन्धान के प्रकार

इकाई-05 ऐतिहासिक अनुसन्धान

इकाई-06 वर्णनात्मक अनुसन्धान

इकाई-07 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

इकाई-08 गुणात्मक अनुसन्धान

खण्ड-3 आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

इकाई-09 परीक्षण

इकाई-10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ

इकाई-11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति-अध्ययन विधि

इकाई-12 समाजमिति प्रविधि

खण्ड-4 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इकाई-13 केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें

इकाई-14 सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र

इकाई-15 सांख्यिकी अनुमान का आधार, टी-परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

इकाई-16 अप्राचलिक सांख्यिकी

खण्ड- परिचय -1 : शोध का अर्थ, आवश्यकता, समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इस खण्ड को चार इकाइयों में विभक्त किया गया है। प्रथम इकाई में शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता की चर्चा की गयी है। शोध का तात्पर्य एक वैज्ञानिक शोध से होता है। जिसके विभिन्न पद होते हैं। जिसकी एक विशिष्ट प्रक्रिया है। शोधों को विभिन्न आधारों यथा प्रक्रिया, परिणाम एवं प्रकृति के आधार पर कई भागों में बाँटा जा सकता है। ज्ञान की अभिवृद्धि के साथ-साथ कई रूपों में शोध की महती आवश्यकता है। इस इकाई में शोध की विभिन्न आवश्यकताओं को भी स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय इकाई में शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन की चर्चा की गई है। किसी शोधकर्ता की यह पहली समस्या होती है कि वह समस्या का चयन कहाँ से तथा कैसे करें। समस्या चयन हेतु उन स्रोतों एवं क्षेत्रों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है जहाँ से शोधकर्ता एक दृष्टि प्राप्त कर सकता है। समस्या चयन के लिये सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

परिकल्पना किसी समस्या को सम्भावित समाधान का एक कथन होती है। यह किसी अनुसन्धान प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ है। बिना परिकल्पना के अनुसन्धान कार्य एक उद्देश्यहीन क्रिया है। परिकल्पना निर्माण हेतु व्यक्तिगत अनुभव, रचनात्मक चिन्तन आदि के साथ सम्बन्धित साहित्य एवं पूर्व अनुसन्धानों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस खण्ड की तृतीय इकाई में परिकल्पना के अर्थ, प्रकृति, स्रोत अच्छी परिकल्पना की विशेषताओं के साथ-साथ परिकल्पना के विभिन्न प्रकारों का विवेचन किया गया है।

इस खण्ड की चतुर्थ इकाई में शोध प्रतिचयन एवं आँकड़ों के प्रतिचयन की चर्चा की गई है। शोध कार्य के लिये समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिये उस जीवसंख्या को परिभाषित करना आवश्यक होता है। जिससे सूचनायें प्राप्त करनी होती है। परन्तु शोध में सम्पूर्ण जीवसंख्या को सम्मिलित करना शोधकर्ता के लिये संभव न होने पर उसे आंकड़े प्राप्त करने के लिए एक प्रतिनिधि-समूह का चयन करना पड़ता है। इस इकाई में प्रतिचयन के विभिन्न प्रकारों का भी वर्णन है।

इकाई –01 शोध का अर्थ प्रकार एवं आवश्यकता

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 वैज्ञानिक विधि के सोपान

- 1.2.1 समस्या की पहचान
- 1.2.2 परिकल्पना का निर्माण
- 1.2.3 निगमनात्मक चिंतन द्वारा परिकल्पना के आशय तक पहुँचना
- 1.2.4 सम्बन्धित प्रमाणों एवं कारणों का संग्रह
- 1.2.5 परिकल्पना की जाँच

1.3 वैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषताएं

1.4 शिक्षा में अनुसंधान की आवश्यकता

- 1.4.1 ज्ञान के विकास में सहायक
- 1.4.2 उद्देश्य प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम क्रिया
- 1.4.3 मानव समाज को नवीन ज्ञान एवं गति प्रदान करना
- 1.4.4 जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति का सरल उपाय देना
- 1.4.5 सुधार में सहायक
- 1.4.6 सत्य व ज्ञान की खोज करना
- 1.4.7 प्रशासनिक क्षेत्र में सफलता प्रदान करना
- 1.4.8 अध्यापक के लिये अति उपयोगी

1.5 शैक्षिक अनुसंधान के प्रकार

- 1.5.1 ऐतिहासिक शोध
- 1.5.2 विवरणात्मक शोध
- 1.5.3 प्रयोगात्मक शोध

1.6 सारांश

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 प्रस्तावना :

शोध समस्याओं का चुनाव करना तथा समस्या की पहचान के द्वारा परिकल्पना का निर्माण करना वास्तव में कठिन कार्य है क्योंकि समस्याओं का चुनाव करने या उसे जानने के लिए अनुसंधानकर्त्ता को बहुत सम्वेदनशील, जटिल समस्याओं के समाधान करने की योग्यता वाला, मेहनती एवं कुशाग्र बुद्धि

वाला होना चाहिये ताकि वे वैज्ञानिक समस्या तथा विज्ञान की तर्क संगत वातों को समझ सके ? क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता को वैज्ञानिक समस्याओं को सामान्य उद्देश्यों के अनुसार ही चुनाव करना होता है। समस्याओं के चुनाव या निर्धारण में हमे यह ज्ञात करना होता है कि विषय की विशेषता क्या है ? उसको किस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं? अनुसन्धान द्वारा विशेष समस्या का क्या होगा 3 समस्या का क्षेत्र क्या हो सकता है? आदि बातों की जानकारी प्राप्त करनी होती है।

1.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- वैज्ञानिक विधि के सोपान को जान सकेंगें।
- परिकल्पना निर्माण की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वैज्ञानिक शोध का अर्थ एवं विशेषतायें को समझ सकेंगे।
- शैक्षिक अनुसंधान के प्रकार को बता सकेंगे।
- ऐतिहासिक शोध एवं विवरणात्मक शोध के अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।

शोध का अर्थ प्रकार एवं आवश्यकता

शिक्षा, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र ऐसे व्यवहारपरक विज्ञान (Behavioural Science) है जिनमें वैज्ञानिक विधियों द्वारा ही अनेकों प्रकार के शोधकार्य किये जाते हैं । ऐसी विधियों द्वारा लिये गये शोध कार्यो को वैज्ञानिक शोध कहते हैं। वैज्ञानिक शोध क्या है ? इस पर चर्चा करने से पूर्व ये जान लेना आवश्यक है कि विज्ञान किसे कहते हैं एवं वैज्ञानिक विधि क्या है ?

विज्ञान सामान्यतः दो दषष्टिकोणों से मिलकर बना है –

(i) स्थिर दृष्टिकोण (Static View)

(ii) गतिमान दृष्टिकोण (Dynamic View)

स्थिर दृष्टिकोण में वैज्ञानिक वर्तमान सिद्धान्तों, नियमों, परिकल्पनाओं (Hypothesis) आदि के ज्ञान भण्डार में नये–नये तथ्यों की खोज कर उस ज्ञान भण्डार का विस्तार करता है जबकि गतिमान दषष्टिकोण में समस्या समाधान के नये–नये तरीकों पर जोर दिया जाता है अंर्थात किसी भी समस्या के समाधान में नई–नई विधियें को प्रयोग किया जाता है। यह विज्ञान का क्रियाशील पक्ष है, इसे स्वानुभाविक दषष्टिकोण (Heuristic view) भी कहते हैं। कुल मिलाकर विज्ञान का मूल उद्देश्य प्राकषतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या करना है। इस वैज्ञानिक व्याख्या को ही वैज्ञानिक सिद्धान्त कहते हैं।

विज्ञान क्या है ? ये जानने के बाद अब हम वैज्ञानिक विधि के बारे में चर्चा करेंगे । वैज्ञानिक विधि उस विधि को कहते हैं जिसमें किसी भी विषयवस्तु

का अध्ययन नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है तथा उससे प्राप्त परिणामों का वैध एवम् विस्तष्त सामान्यीकरण किया जाता है।

"A scientific Medthod is one in which the scientist studies his subject matter in controlled situation and looks for a broader valid generalization."

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी भी वैज्ञानिक विधि में दो बातें प्रमुख होती है, पहली यह कि अध्ययन नियंत्रित परिस्थति में हो और दूसरी यह कि अध्ययन से प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण वैध (Valid) एवं विस्तृत हो।

यहाँ नियन्त्रित परिस्थिति से तात्पर्य ऐसी परिस्थिति से है जिसके अन्तर्गत हम सिर्फ उसी चर के प्रभाव का अध्ययन करेंगे जिसका प्रभाव हम देखना चाहते हैं तथा अन्य चरों के प्रभाव को नियंत्रित कर देगे ताकि उनका कोई भी प्रभाव उस अध्ययन पर न पड़ सके। इसके अलावा अध्ययन से प्राप्त परिणाम का विस्तृत एवं वैध सामान्यीकरण से तात्पर्य है कि उन परिणामों को उन सभी लोगों पर लागू किया जा सके जो उस अध्ययन में सम्मिलित तो नहीं किये गये परन्तु जिनकी विशेषताएं उन व्यक्तियों से मिलती–जुलती है जिन्हें अध्ययन में शामिल किया गया था।

1.2 वैज्ञानिक विधि के सोपान :

कोई भी विधि वैज्ञानिक विधि तभी हो सकती है जब उसमें निम्न निश्चित एवं उपयोगी चरणों का समावेश आवश्यक रूप से किया जाय –

1.2.1 समस्या की पहचान –

किसी भी वैज्ञानिक विधि में सर्वप्रथम समस्या की निश्चित पहचान कर ली जाती है। अर्थात् वास्तव में हम जिस समस्या या उससे सम्बन्धित चरों का अध्ययन करना चाहते हैं वो वही है या नहीं। तत्पश्चात् अपने अध्ययन के अनुरूप समस्या में सम्मिलि शब्दों का परिभाषीकरण किया जाता है। ऐसा करने के लिए शोधकर्ता समस्या से सम्बन्धित ज्ञान एवं सूचनाओं की आलोचनात्मक व्याख्या करता है।

1.2.2 परिकल्पना का निर्माण –

समस्या पहचान के बाद परिकल्पना का निर्माण किया जाता है। किसी भी समस्या की परिकल्पना उसका सम्भावित समाधान होती है।

1.2.3 निगमनात्मक चिंतन (Deductive reasoning) द्वारा परिकल्पना से एक आशय तक पहुँचना–

वैज्ञानिक विधि के इस तीसरे चरण में निगमनात्मक चिंतन द्वारा प्रस्तावित परिकल्पना के रूप में समस्या के सुझावात्मक समाधान (Suggested solution

of the problem) **पर पहुँचने की कोशिश की जाती है। यहाँ यह तय किया** जाता है कि यदि परिकल्पना सच हुई, तो किन तथ्यों का प्रेक्षण किया जायेगा तथा किन–किन तथ्यों का प्रेक्षण नहीं किया जायेगा।

1.2.4 सम्बन्धित प्रमाणों एवं कारणों का संग्रह एवं विश्लेषण

इस चरण में प्रस्तावित परिकल्पना से सम्बन्धित संग्रहीत कारणों एवं प्रमाणों का निगमन विधि (Deductive Method) द्वारा विश्लेषण किया जाता है।

1.2.5 परिकल्पना की जाँच –

वैज्ञानिक विधि के इस चरण में चतुर्थ सोपान से प्राप्त आँकड़ो के आधार पर परिकल्पना की जाँच की जाती है। यदि परिकल्पना जाँच के आधार पर सही सिद्ध होती है तो उसे स्वीकार कर लेते हैं और यदि परिकल्पन जाँच के आधार पर सत्य सिद्ध नहीं होता है या उसमे कुछ कमी होती है तो उस कमी को दूर कर सही परिकल्पना का निर्माण करने के लिए उसका परिमार्जन किया जाता है।

अतः उपरोक्त चरणों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि कोई भी वैज्ञानिक विधि उपरोक्त चरणों पर ही आधारित होगी।

1.3 वैज्ञानिक शोध का अर्थ एव विशेषतायें :

जब किसी समस्या या प्रश्न को क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ (Objective) ढ़ंग से सुलझाने का प्रयास किया जाता है तो इस क्रिया को ही वैज्ञानिक शोध कहते हैं। करलिंगर ने शोध के अर्थ को स्पष्ट करते हुये कहा कि –

"स्वभाविक घटनाओं का क्रमबद्ध, नियंत्रित आनुभाविक एवं आलोचनात्मक अनुसन्धान जो घटनाओं के बीच कल्पिन संबंधों के सिद्धान्तों एवं परिकल्पनाओं द्वारा निदेशित होता है, को वैज्ञानिक शोध कहा जाता है।"

इसी प्रकार बेस्ट एवं काहन ने वैज्ञानिक शोध को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है –

"वैज्ञानिक शोध किसी नियंत्रित प्रेक्षण का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ अभिलेख एवं विश्लेषण है जिनके आधार पर सामान्यीकरण, नियम या सिद्धान्त विकसित किया जाता है तथा जिससे बहुत सारी घटनाओं, जो किसी खास क्रिया का परिणाम या कारण हो सकती है, को नियंत्रित कर उनके बारे में पूर्वकथन किया जाता है।"

अतः कहा जा सकता है कि (वैज्ञानिक) शोध से तात्पर्य उस क्रिया या क्रियाओं से है जिनके माध्यम से व्यवस्थित रूप से किसी समस्या का निराकरण करने का प्रयास किया जाता है तथा प्राप्त निराकरण किसी नये सिद्धान्त का प्रतिपादन या पुष्टि करता है।

वैज्ञानिक अनुसंधान की उपरोक्त परिभाषाओं के अतिरिक्त इसकी विशेषतायें निम्नवत है –

1. अनुसन्धान का उद्देश्य किसी समस्या का समाधान ढूढ़ना अथवा दो या दो से अधिक चरों के आपसी सम्बन्धों को ज्ञात करना है।
2. अनुसन्धान केवल सूचनाओं की पुनः प्राप्ति या संग्रहण नहीं है अपितु अनुसन्धान में व्यापीकरण, नियमों या सिद्धान्तों के विकास पर बल दिया जाता है।
3. अनुसन्धान किसी दैव वाणी या मत को ज्ञान प्राप्ति की विधि नहीं मानता हैं बल्कि ये उन बातों को स्वीकार करता है जिन्हें प्रेक्षण द्वारा परखा जा सके।
4. अनुसन्धान में आँकड़ो के संग्रहण के लिए वैध उपकरणों एवं विधियों का प्रयोग किया जोता है तत्पश्चात् इन आँकड़ो का शोधन, संलेखन, अभिकलन व विश्लेषण किया जाता है।
5. अनुसंधान, प्राथमिक सूत्रों से प्राप्त नई सूचनायें प्राप्त करना या विद्यमान सूचनाओं से नया प्रयोजन प्रस्तुत करता है।
6. अनुसंधान में निपुणता की आवश्यकता होती है। अनुसंधानकर्ता को यह ज्ञान होना चाहिये कि समस्या के बारे में पहले से कौन–कौन सा ज्ञान या सूचनायें मौजूद है। वह संबंधित साहित्य का अध्ययन करता है। उसे सभी पारिभाषिक शब्दों, धारणाओं और तकनीकी कुशलता का पूर्णज्ञान होता है ताकि वह संकलित सूचनाओं एवं आँकड़ों का विश्लेषण कर सके।
7. वैज्ञानिक अनुसंधान वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसंगत होता है। परिकल्पना को सिद्ध करने के स्थान पर उसके परीक्षण पर बल दिया जाता है।
8. इससे पुनरावृत्ति की संभावना होती है।

उपरोक्त विशेषताओं के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा प्राप्त ज्ञान अति उच्च स्तर का होता है। यह कल्पनाओं, विश्वास एवं अप्रमाणित बातों पर आधारित नहीं होता है। ऐसे ज्ञान अर्जन के लिये अनुसंधानकर्ता को अपनी विद्धता का विकास करना व सही प्रेक्षण व कर्मठता का परिचय देना चाहिये। साक्ष्यों को एकत्रित कर उनका अध्ययन करने, तार्किक विश्लेषण कर सम्बन्धों को पहचानने, विचारों में मौलिकता और स्पष्ट उद्देश्य के साथ अपने लक्ष्य को निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

1.4 शिक्षा अनुसंधान की आवश्यकता :

आज प्रत्येक क्षेत्र में इस बात का अनुभव किया जा रहा है कि यदि ज्ञान के विस्फोट को समझना है, प्रगति की होड़ में आगे बढ़ना है तो उसका एकमात्र साधन वैज्ञानिक अनुसंधान ही हो सकता है क्योंकि विश्व में हुयी सारी प्रगति विभिन्न क्षेत्रों में किये गये अनुसंधानों के कारण ही है।

9

शिक्षा और मनोविज्ञान में हमारा प्रयास, मानव के व्यवहार को समझने, उसकी भविष्यवाणी करने तथा उस पर नियंत्रण के लिए है। इसके लिये अनुसंधान कार्य एक प्रमुख साधन है। अतः इन क्षेत्रों में अनुसंधान को निम्नलिखित कारणों से अधिक महत्व दिया गया है –

1.4.1 ज्ञान के विकास में सहायक –

अनुसंधान ज्ञान के किसी एक सूक्ष्म अंग का विस्तष्त, सम्पूर्ण एवं नवीन चित्र प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा ज्ञानकोष में वष्द्धि एवं विकास होता है। गुड तथा स्केट का कहना है कि विज्ञान का कार्य बुद्धि का विकास करना है तथा अनुसंधान का कार्य विज्ञान का विकास करना है। अतः बुद्धिमत्ता के विकास के लिए अनुसंधान अति आवश्यक है।

1.4.2 उद्देश्य प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम क्रिया –

अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है, इसकी समस्त गतिविधियाँ उस उद्देश्य की ओर ही अग्रसर रहती है जिसकी प्राप्ति के लिये अनुसंधान किया जा रहा है।

1.4.3 मानव समाज को नवीन ज्ञान एवं गति प्रदान करना –

अनुसंधान मानव जीवन को गति देने एवं दिशा निर्देशित करने में अत्यन्त आवश्यक है आज अनुसंधान के माध्यम से ही नयी–नयी तकनीकों का जन्म हो रहा है।

1.4.4 अनुसंधान जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति का सरल उपाय देना –

उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरल साधनों को प्राप्त करना मानव स्वभाव है। अनुसंधान शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाज विज्ञान इन सभी क्षेत्रों में इस दृष्टि से उपयोगी है।

1.4.5 सुधार में सहायक –

अनुसंधान वैज्ञानिक होता है इसमें किसी भ्रानित या अपुष्ट धारणा के लिये स्थान नहीं होता है अतः ये रूढ़िगत विचारों एवं व्यवहारों में सुधार का मार्ग प्रस्तुत करता है।

(6) सत्य ज्ञान की खोज करना –

अनुसंधान, अनुसंधानकर्ता की उत्सुकता को शांत करता है और उसकी सत्य ज्ञान की पिपासा को शांत करता है।

(7) प्रशासनिक क्षेत्र में सफलता प्रदान करना –

अनुसंधान अनेक प्रशासनिक गुत्थियों को सुलझाकर स्वस्थ प्रशासनिक व्यवस्था के सफल संचालन में सहायक होता है।

(8) अध्यापक के लिये अति उपयोगी –

अध्यापक के लिये यह प्राण के समान ही होता है। अध्यापक इसके माध्यम से सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक समस्याओं को समाधान कर प्रगति का पथ प्रशस्त करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों तथा प्रशासकों एवं पर्यवेक्षकों को स्वयम् के ज्ञान, परस्पर एव दूसरे के ज्ञान एवं मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याओं का सुनियोजित समाधान प्रस्तुत करने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

1.5 शैक्षिक अनुसंधान के प्रकार :

यद्यपि शैक्षिक शोध को वर्गीकृत करना एक कठिन कार्य है क्योंकि भिन्न–भिन्न पाठ्य–पुस्तकों में कई वर्गीकरण अलग–अलग ढ़ंग से प्रस्तावित किये गये हैं। फिर भी बेस्ट वएं काहन (Best & Kahn, 1992) द्वारा प्रस्तावित वर्गीकरण को सबसे उत्तम माना जा सकता है और इसे वर्गीकरण की एक कसौटी मानते हुए शैक्षिक शोध को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है–

1.5.1 ऐतिहासिक शोध (Historical Research) -

ऐतिहासिक शोध से तात्पर्य उस शोध से होता है जिसमें बीती घटनाओं का अभिलेखन किया जाता है, उनका विश्लेषण किया जाता है तथा उनकी व्याख्या की जाती है ताकि **समुचित सामन्यीकरण** किया जा सके। ऐसे सामान्यीकरण से विगत एवं वर्तमान की क्रियाओं को समझने में मदद मिलती ही है साथ ही साथ इनसे प्रत्याशित भविष्य (anticipated future) को भी समझने में मदद मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक शोध मूलतः 'क्या था' का वर्णन करता है।

1.5.2 विवरणात्मक शोध (Descriptive Research) -

विवरणात्मक शोध उस शोध को कहा जाता है जिसमें वर्तमान हालातों का अभिलेखन किया जाता है, विश्लेषण किया जाता है तथा उनकी व्याख्या की जाती है। ऐसे शोध में अपरिचालित चरों (Non-manipulated variables) के बीच मौजूद संबंधों का विश्लेषण किया जाता है। इसे अप्रयोगात्मक या सहसबंधात्मक शोध (Non-experimental or correlational research) भी कहते हैं। ऐसे शोध में मूल रूप से 'क्या है' (what is) का वर्णन किया जाता है।

1.5.3 प्रयोगात्मक शोध (Experimental Research) -

प्रयोगात्मक शोध उस शोध को कहा जाता है जिसमें कुछ चरों को नियंत्रित किया जाता है, कुछ चरों को परिचालित (manipulate) किया जाता है एवं किसी अन्य चर पर उसके पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। अतः ऐसे शोधों में मूलतः इस बात का अध्ययन किया जाता है कि चरों को नियंत्रित करने एवं उनका परिचालन करने का प्रभाव क्या होगा।

11

1.6 अध्याय सारांश :

विज्ञान के अर्थ को मूलतः दो दृष्टिकोण से समझा जाता है– स्थैतिक दृष्टिकोण तथा गत्यात्मक दृष्टिकोण। वैज्ञानिक अपने क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन करने के लिये किसी वैज्ञानिक विधि का चयन करते हैं। सामान्यतः वैज्ञानिक विधि से तात्पर्य उस विधि से होता है जिसके द्वारा वैज्ञानिक अपने विषय वस्तु का अध्ययन एक नियंत्रित परिस्थिति में करके वैध सामान्यीकरण करता है।

वैज्ञानिक शोध का महत्व शिक्षा एवं मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण है। किसी स्वाभाविक घटना का क्रमबद्ध, नियंत्रित, एवं आलोचनात्मक अनुसंधान जो घटनाओं के बीच कल्पित संबंधों के सिद्धान्तों एवं प्राकल्पनाओं द्वरा निदेशित होता है, को वैज्ञानिक शोध कहा जाता है।

शैक्षिक शोध के प्रकार के बारे में भी बताया गया है।

1.7 अभ्यास प्रश्न :

1. वैज्ञानिक विधि के सोपान से क्या आशय है?
2. परिकल्पना निर्माण की व्याख्या करे।
3. सम्बन्धित प्रमाणों एवं कारणों का संग्रह एवं विश्लेषण कीजिये।
4. वैज्ञानिक शोध की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
5. अनुसंधान उद्देश्य प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम क्रिया क्या है ?
6. शिक्षा में अनुसंधान की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिये।
7. अनुसंधान के महत्व को स्पष्ट करे।
8. शैक्षिक अनुसंधान के प्रकार बताइये।
9. ऐतिहासिक शोध को स्पष्ट कीजिये।
10. वर्णनात्मक शोध एवं प्रयोगात्मक शोध में क्या भिन्नता है ?

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची :

बेस्ट, जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल, 1997।

सिंह, अरूण कुमार : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, (2007)।

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2005।

भटनागर, आर0पी0 : शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

राय, पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, नवरंग ऑफसेट प्रिन्टर्स, आगरा, 2002।

इकाई – 02 : शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 समस्या की पहचान

2.2.1 ज्ञान में दरार

2.2.2 विरोधी पारिणाम

2.2.3 किसी तथ्य की व्याख्या

2.3 समस्या का मूल्यांकन

2.4 शोध समस्या के उद्भव स्रोत

2.5 सारांश

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.7 शब्दावली

2.8 प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना :

वैज्ञानिक समस्या का प्रतिपादन निश्चित रूप से किसी भी शोधकर्ता के लिये कठिन कार्य होता है। इस कठिन कार्य को आसान बनाने के लिये वह कुछ ऐसे स्रोतों का सहारा लेता है जिससे शोध समस्या का प्रतिपादन करना आसान हो जाता है। शोध समस्या की उत्पत्ति परस्पर विरोधी उपलब्धियों की परिस्थितियों में पायी जाती है। (वेस्ट एण्ड कोहन, 1992) ने शोध समस्या की उत्पति के साठ क्षेत्रों का वर्णन किया है। जिसमें निम्नलिखित प्रमुख है – अध्ययन–अध्यापन की विधायें, अधिगम मूल्यांकन, शैक्षिक नवाचार सीखने के तरीके, पाठ्येत्तर क्रियाकलाप, निदेशन एवं परामर्श कार्यक्रम, शैक्षिक संगठन, मुक्त अधिगम, शिक्षक समस्यायें, यौन शिक्षण, विशिष्ट शिक्षा, शैक्षिक प्रशासन एवं नेतृत्व, शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारक, धर्म और शिक्षा, सेवाकालीन कार्यक्रम, पाठ्यचर्या विकास, निजी शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा तथा समुदाय आदि।

2.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन को समझ सकेंगे।
- शोध समस्या की पहचान कर सकेंगे।
- शोध तथ्य की व्याख्या कर सकेंगे।
- शोध समस्या के मूल्यांकन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13

— शोध का उद्भव स्रोत बता सकेंगे।

शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

किसी भी शैक्षिक शोध की शुरूआत एक शोध समस्या की स्पष्ट पहचान से होती है। शोध समस्या की स्पष्ट रूप से पहचान कर उसका उल्लेख करना शोधकर्ता के लिए एक कठिन कार्य होता है। फिर भी वह परिस्थितियों की समझ, अपने अनुभवों एवं पहले किये गये शोधों की समीक्षा करके किसी स्पष्ट तथा ठोस समस्या का निर्धारण कर पाता है।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि शोध समस्या किसे कहते हैं ? सामान्यतः शोध समस्या एक ऐसी समस्या होती है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक चरों के बीच एक प्रश्नात्मक सम्बन्ध (Interrogative Relationship) की अभिव्यक्ति होती है। 'करलिंगर' के अनुसार "समस्या एक ऐसा प्रश्नात्मक वाक्य या कथन होता है जो दो या दो से अधिक चरों के बीच कैसा सम्बन्ध है, यह देखता है।"

टाउनसेण्ड (John C. Townsend) ने समस्या की परिभाषा देते हुए कहा है कि "समस्या तो समाधान के लिए एक प्रस्तावित प्रश्न है।"

वास्तव में जब किसी प्रश्न का कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो समस्या उपस्थित हो जाती है।

किसी भी वैज्ञानिक स'''स्या में सदैव दो या दो से अधिक चल राशियों (variables) के बीच क्या सम्बन्ध है, देखा जाता है। उदाहरण के लिये पुरस्कार का सीखने की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह देखना वैज्ञानिक समस्या का उदाहरण है। यहाँ पुरस्कार एक चलराशि तथा दूसरी चलराशि सीखने में प्रभाव है।

2.2 समस्या की पहचान :

मैक्गुइन (Mc. Guigan) के अनुसार, "एक (समाधान–योग्य) समस्या ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के प्रयोग से दिया जा सकता है।"

इनके अनुसार समस्या की अभिव्यक्ति के तीन कारण है –

2.2.1 ज्ञान में दरार (Gap) हो –

कोई भी समस्या उस समय स्वयं अभिव्यक्त हो उठेगी जब व्यक्ति का ज्ञान किसी जानकारी की तर्कयुक्त ढंग से व्याख्या न कर सके। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति यद्यपि अपने ज्ञान (knowledge) से परिचित होता है तथा साथ ही वह इस सत्य से भी इन्कार नहीं करता है कि उसके ज्ञान में कुछ कमी है जिसके कारण वह किसी घटना की उचित व्याख्या नहीं कर पा रहा है। उदाहरण के लिये 'शिक्षण की कौन सी विधि सर्वोत्तम है ? अथवा चिकित्सा क्षेत्र में कौन सी चिकित्सा–प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है ? आदि प्रश्नों से यह स्पष्ट है कि मनुष्य के ज्ञान में वास्तव में दरार है।

14

2.2.2 विरोधी परिणाम (Contradictory Results) –

कभी–कभी ऐसा होता है जब किसी एक ही समस्या पर विभिन्न प्रयोगों द्वारा विभिन्न परिणाम निकलते हैं। इस परिणामों में अन्तर के कई कारण हो सकते हैं, जैसे प्रयोगकर्ता या अनुसंधानकर्ता द्वारा प्रयोग को ठीक ढ़ंग से न करना या चरों पर पूरी तरह से नियंत्रण न कर पाना आदि प्रयोगकर्ता की ये त्रुटियां भी समस्या अभिव्यक्ति का कारण बन जाती है।

2.2.3 किसी तथ्य की व्याख्या (Explaining a 'fact') –

जब कोई भी नया तथ्य वैज्ञानिक को प्राप्त होता है, तो वह उसे अपना ज्ञान से सम्बन्धित करने का प्रयास करता है। किन्तु वह अपने प्रयास में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाता यहाँ उसका असफल हो जाना ही समस्या की अभिव्यक्ति करता है। ऐसी परिस्थिति में वह अतिरिक्त जानकारी एकत्रित करता है जिसके द्वारा वह इस नये तथ्य की व्याख्या कर सके।

इस प्रकार शिक्षाशास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों के विचारों में केवल शब्दावली का ही अन्तर दिखाई देता है अन्यथा इस बात को सभी स्वीकार करते है कि आवश्यकता की संतुष्टि के मार्ग में बाधा ही समस्या है, चाहे यह आवश्यकता जिज्ञासा की संतुष्टि मात्र हो, जो सभी मूलभूत अनुसंधानों का आधार है अथवा किसी उपयोगिता पर आधारित हो।

2.3 समस्या का मूल्यांकन :

अनुसंधानकर्ता को जाँच में ली जाने वाली समस्या पर विचार करते हुये उसे इस सम्बन्ध में स्वयं से श्रृंखलाबद्ध कुछ प्रश्न पूछने चाहिये। ये प्रश्न उसकी व्यक्तिगत उपयुक्तता व सामाजिक मूल्यों के आधार पर समस्या का मूल्याकंन करने में सहायक होते हैं। अध्ययन पर कार्य आरम्भ करने से पहले इन सभी प्रश्नों के सकारात्मक उत्तर मिल जाने चाहिये।

1. क्या समस्या ऐसी है जिसे शोध के द्वारा सुलझाया जा सकता है ? अर्थात् क्या समस्या ऐसी है जिसके बारे में संगत आँकड़े एकत्रित किये जा सकते हैं और उनका उचित उत्तर दिया जा सकता है ?
2. क्या समस्या सार्थक है ? क्या समस्या में इतने चर सम्मिलित है जिन पर अनुसंधान किया जा सकता है ? क्या समस्या के समाधान से वर्तमान शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सिद्धान्त में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ सकता है ?
3. क्या समस्या नयी है ? अगर समस्या ऐसी है जिसका अनुसंधान पहले हो चुका है तो उस पर पुनः शोध करने से शोधकर्ता का समय एवं धन दोनों की ही बर्बादी होगी। इसलिये समस्या को नयी एवम् मौलिक होना चाहिये ताकि शोधकर्ता एक नये निष्कर्ष पर पहुँच सके।
4. क्या समस्या का कोई सैद्धान्तिक मान है ? अर्थात् क्या समस्या ऐसी है जिससे क्षेत्र में उत्पन्न अज्ञानता की खाई भरी जा सकती है? क्या समस्या के समाधान से किसी सिद्धान्त के विकास में मदद मिलेगी ?

15

5. क्या समस्या ऐसी है जिस पर शोध किया जा सके ? अर्थात् कोई समस्या अच्छी हो सकती है परन्तु यह कई कारणों जैसे शोधकर्ता में प्रशिक्षण की कमी, उसके पास समय तथा धन की कमी, उपयुक्त ऑकड़े संग्रहण के उपकरणों का अभाव आदि से भी शोध के योग्य नहीं हो सकती है।

यदि उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर हाँ में मिलता है तो समझना चाहिये कि शोध समस्या उपयुक्त एवं वैज्ञानिक है। यदि इनका उत्तर 'नहीं' में मिलता है, तो ऐसी समस्या एक अच्छी शोध समस्या नहीं मानी जायेगी।

2.4 शोध समस्या के उद्‌भव स्त्रोत :

किसी भी शोधार्थी के लिये एक वैज्ञानिक समस्या का प्रतिपादन निश्चित रूप से एक कठिन कार्य है। फिर भी वह इस कठिन कार्य के लिये कुछ ऐसे स्रोतों (Sources) का सहारा ले सकता है जिससे उसे समस्या को ढूँढ़ने में मदद मिल सके। ये स्त्रोत निम्नवत हैं –

(1). शिक्षकों, छात्रों एवं अभिभावकों द्वारा अनुभव की जा रही है दिन–प्रतिदिन की समस्यायें किसी भी शोधकर्ता के लिये एक उपयोगी समस्या का स्रोत हो सकते हैं। उदाहरण के लिये वर्तमान समय में छात्र अनुशासनहीनता की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इस समस्या से शिक्षक एवं अभिभावक दोनों ही परेशान हैं। अतः ये समस्या शोध का विषय हो सकता है कि उन कारणों का पता लगाया जाये जिन कारणों से छात्रों में अनुशासनहीनता बढ़ रही है तथा जो छात्र अनुशासनहीन है उनका व्यक्तित्व कैसा है? उनका पारिवारिक वातावरण, मित्र, अभिभावक, आर्थिक स्तर इत्यादि किस प्रकार के हैं एवं इन सभी का छात्र के जीवन पर क्या और किस प्रकार का प्रभाव है, का अध्ययन करके उपरोक्त समस्या का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

(2). पाठ्य पुस्तक, शोध–पत्र, शोध जर्नल आदि को पढ़कर भी संभावित शोध समस्या का संकेत प्राप्त किया जा सकता है। क्र्योंकि इन स्रोतों में कुछ ऐसी प्रविधियों एवं कार्यविधियों का भी उल्लेख रहता है जिनसे शोध की नयी समस्या की झलक तो मिलती ही है साथ ही उन्हें सुलझाने में भी शोधकर्ता को विशेष सहायता मिलती है।

(3) वरिष्ठ शिक्षक एवं विशय विशेषज्ञ भी अच्छी एवं वैज्ञानिक समस्या के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बेस्ट एवं काहन (Best & Kahn, 1992) ने शोध की उत्पत्ति के साठ क्षेत्रों तथा कुछ सामान्य चयन के स्रोतों का वर्णन किया है जिनमें से कुछ प्रमुख स्रोत निम्नवत हैं –

1. पाठ्य पुस्तकें (Text Books)
2. पाठ्येत्तर क्रियायें (Extracurricular Activities)
3. स्वतंत्र अध्ययन (Independent Studies)
4. शोध लेख (Research Papers)

16

5. शोध साराश (Researc Abstracts)
6. शोध प्रकाशन (Research Publications)
7. संगोष्ठी प्रपत्र (Seminar Papers)
8. शोध पत्रिकायें (Research Journals)
9. विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण (Different Suves)
10. सामाजिक आर्थिक अध्ययन एवं शैक्षिक लेख (Socio-economic studies and educational writings)
11. कार्यक्षेत्र के अनुभव (Work Experiences)
12. सरकारी निर्णय एवं नीतियाँ (Government Decisions & Policies)
13. अन्तर्राष्ट्रीय अभिलेख (International Reports)
14. छात्रों के वाद–विवाद (Students Discussion)
15. इण्टरनेट एवं दैनिक पत्र (Internet and News Papers)

उपरोक्त कुछ ऐसे सामान्य स्रोत है जिनमें शोध समस्याओं को ढूँढ़ा जा सकता है।

2.5 अध्याय सारांश :

किसी भी शोध की शुरूआत एक वैज्ञानिक शोध समस्या की पहचान के साथ होती है। किसी भी समस्या के उत्पन्न होने के मुख्य कारण, ज्ञान में दरार, विरोधी परिणाम एवं किसी तथ्य की व्याख्या आदि हो सकती है। कोई समस्या उचित, उपयोगी एवं वैज्ञानिक है इसको जानने के लिये विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को ध्यान में रखना चाहिये। समस्या के विभिन्न स्रोतों की जानकारी भी दी गयी है।

2.6 अध्याय प्रश्न :

– शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन को स्पष्ट कीजिये ?
– शोध समस्या की पहचान बताइये ?
– परस्पर विरोधी शोध परिणाम से आप क्या समझते हैं ?
– अनुंसधान के तथ्य की व्याख्या कीजिये ।
– शोध मूल्यांकन की विशेषतायें बताइये ।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची :

सिद्धू, कुलबीर सिंह : मैथडलॉजी ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2007।

सिंह, राम पाल, शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2005 ।

श्रीवास्तव, डी0एन0 मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2006।

17

इकाई –03 : शोध परिकल्पना

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 परिकल्पना की परिभाषा

3.3 परिकल्पना की प्रकृति

3.4 परिकल्पना के स्रोत

- 3.4.1 समस्या से सम्बन्धित साहित्य
- 3.4.2 विज्ञान
- 3.4.3 संस्कृति
- 3.4.4 व्यक्तिगत अनुभव
- 3.4.5 रचनात्मक चिंतन
- 3.4.6 अनुभवी व्यक्तियों से परिचर्चा
- 3.4.7 पूर्व में हुए अनुसंधान

3.5 उत्तम परिकल्पना की विशेषतायें या कसौटी

- 3.5.1 परिकल्पना जॉचनीय हो
- 3.5.2 परिकल्पना मितव्ययी हो
- 3.5.3 परिकल्पना क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त तथा तथ्यों से सम्बन्धित हो
- 3.5.4 परिकल्पना किसी न किसी सिद्धान्त या तथ्य पर आधारित हो
- 3.5.5 परिकल्पना द्वारा अधिक से अधिक सामान्यीकरण किया जा सके
- 3.5.6 परिकल्पना संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट हो

3.6 परिकल्पना के प्रकार

- 3.6.1 चरों की संख्या के आधार पर
- 3.6.2 चरों में विशेष सम्बन्ध के आधार पर
- 3.6.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर

3.7 परिकल्पना के कार्य

- 3.7.1 दिशा निर्देश देना
- 3.7.2 प्रमुख तथ्यों का चुनाव
- 3.7.3 पुनरावृत्ति को सम्भव बनाना
- 3.7.4 निष्कर्ष निकालने एवं नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सहायक

3.8. अध्याय सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना :

परिकल्पना अनुसन्धान का एक प्रमुख एवं लाभदायक एवं उपयोगी हिस्सा है एक परिकल्पना के पीछे एक अच्छा अनुसन्धान छिपा होता है। बिना परिकल्पना के अनुसन्धा उद्देश्यहीन तथा बिन्दुहीन होता जाता है। बिना किसी अच्छे अर्थ के परिणाम अच्छे नहीं मिलते हैं इसलिये परिकल्पना का आकार मिश्रित तथा कठिन तथा लाभ से परिपूर्ण होता है। परिकल्पना का स्वरूप बड़ा एवं करीब होने पर इसके आकार को रद्दो बदल कर अनुसन्धान के अनुसार घटाया बढ़ाया जाता है। ऐसा नहीं किया जायेगा तो अनुसन्धानकर्ता अनावश्यक एवं तथ्यहीन आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है।

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

– परिकल्पना के अर्थ प्रकषति को जान सकेंगे।
– परिकल्पना के स्रोत को स्पष्ट कर सकेंगे।
– परिकल्पना की विशेषताये या कसौटी की जानकारी प्राप्त कर सकेगे।
– परिकल्पना क्षेत्र के सिद्धान्त तथा तथ्यों को बता सकेगे।
– परिकल्पना के प्रकार को जान सकेंगे।
– परिकल्पना के कार्य को स्पष्ट कर सकेंगे।

शोध परिकल्पना :

परिकल्पना शब्द परि + कल्पना दो शब्दों से मिलकर बना है। परि का अर्थ चारो ओर तथा कल्पना का अर्थ चिन्तन है। इस प्रकार परिकल्पना से तात्पर्य किसी समस्या से सम्बन्धित समस्त सम्भावित समाधान पर विचार करना है।

परिकल्पना किसी भी अनुसन्धान प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी समस्या के विश्लेषण और परिभाषीकरण के पश्चात् उसमें कारणों तथा कार्य कारण सम्बन्ध में पूर्व चिन्तन कर लिया गया है, अर्थात् अमुक समस्या का यह कारण हो सकता है, यह निश्चित करने के पश्चात उसका परीक्षण प्रारम्भ हो जाता है। अनुसंधान कार्य परिकल्पना के निर्माण और उसके परीक्षण के बीच की प्रक्रिया है। परिकल्पना के निर्माण के बिना न तो कोई प्रयोग हो सकता है और न कोई वैज्ञानिक विधि के अनुसन्धान ही सम्भव है। वास्तव में परिकल्पना के अभाव में अनुसंधान कार्य एक उद्देश्यहीन क्रिया है।

3.2 परिकल्पना की परिभाषा :

परिकल्पना की परिभाषा से समझने के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को समझना आवश्यक है। जो निम्न है –

19

"**करलिंगर (Kerlinger) -**

"परिकल्पना को दो या दो से अधिक चरों के मध्य सम्बन्धों का कथन मानते हैं। "

मोले (George G. Mouley) -

"परिकल्पना एक धारणा अथवा तर्कवाक्य है जिसकी स्थिरता की परीक्षा उसकी अनुरूपता, उपयोग, अनुभव–जन्य प्रमाण तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर करना है।"

गुड तथा हैट (Good & Hatt) -

"परिकल्पना इस बात का वर्णन करती है कि हम क्या देखना चाहते है। परिकल्पना भविष्य की ओर देखती है। यह एक तर्कपूर्ण कथन है जिसकी वैद्यता की परीक्षा की जा सकती है। यह सही भी सिद्ध हो सकती है, और गलत भी।"

लुण्डबर्ग (Lundberg) -

"परिकल्पना एक प्रयोग सम्बन्धी सामान्यीकरण है जिसकी वैधता की जॉच होती है। अपने मूलरूप में परिकल्पना एक अनुमान अथवा काल्पनिक विचार हो सकता है जो आगे के अनुसंधान के लिये आधार बनता है।

मैकगुइन (Mc Guigan) -

"परिकल्पना दो या अधिक चरों के कार्यक्षम सम्बन्धों का परीक्षण योग्य कथन है। "

अतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिकल्पना किसी भी समस्या के लिये सुझाया गया वह उत्तर है जिसकी तर्कपूर्ण वैधता की जॉच की जा सकती है। यह दो या अधिक चरों के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध है ये इंगित करता है तथा ये अनुसन्धान के विकास का उद्देश्यपूर्ण आधार भी है।

3.3 परिकल्पना की प्रकृति :

किसी भी परिकल्पना की प्रकषति निम्न रूप में हो सकती है –

1. यह परीक्षण के योग्य होनी चाहिये।
2. इसह शोध को सामान्य से विशिष्ट एवं विस्तृत से सीमित की ओर केन्द्रित करना चाहिए।
3. इससे शोध प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर मिलना चाहिए।
4. यह सत्याभासी एवं तर्कयुक्त होनी चाहिए।
5. यह प्रकषति के ज्ञात नियमों के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए।

3.4 परिकल्पना के स्रोत :

परिकल्पनाओ के मुख्य स्रोत निम्नवत है –

20

3.4.1 समस्या से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन –

समस्या से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करके उपयुक्त परिकल्पना का निर्माण किया जा सकता है।

3.4.2 विज्ञान –

विज्ञान से प्रतिपादित सिद्धान्त परिकल्पनाओं को जन्म देते हैं।

3.4.3 संस्कृति –

संस्कृति परिकल्पना की जननी हो सकती है। प्रत्येक समाज में विभिन्न प्रकार की संस्कृति होती है। प्रत्येक संस्कृति सामाजिक एवं सांस्कषतिक मूल्यों में एक दूसरे से भिन्न होती है ये भिन्नता का आधार अनेक समस्याओं को जन्म देता है और जब इन समस्याओं से सम्बन्धित चिंतन किया जाता है तो परिकल्पनाओं का जन्म होता है।

3.4.4 व्यक्तिगत अनुभव –

व्यक्तिगत अनुभव भी परिकल्पना का आधार होता है, किन्तु नये अनुसंधानकर्ता के लिये इसमें कठिनाई है। किसी भी क्षेत्र में जिनका अनुभव जितना ही सम्पन्न होता है, उन्हें समस्या के ढूँढ़ने तथा परिकल्पना बनाने में उतनी ही सरलता होती है।

3.4.5 रचनात्मक चिंतन –

यह परिकल्पना के निर्माण का बहुत बड़ा आधार है। मुनरो ने इस पर विशेष बल दिया है। उन्होने इसके चार पद बताये हैं – (i) तैयारी (ii) विकास (iii) प्रेरणा और (iv) परीक्षण। अर्थात किसी विचार के आने पर उसका विकास किया, उस पर कार्य करने की प्रेरणा मिली, परिकल्पना निर्माण और परीक्षण किया।

3.4.6 अनुभवी व्यक्तियों से परिचर्चा –

अनुभवी एवं विषय विशेषज्ञों से परिचर्चा एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर उपयुक्त परिकल्पना का निर्माण किया जा सकता है।

3.4.7 पूर्व में हुए अनुसंधान –

सम्बन्धित क्षेत्र के पूर्व अनुसंधानों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि किस प्रकार की परिकल्पना पर कार्य किया गया है। उसी आधार पर नयी परिकल्पना का सष्जन किया जा सकता है।

3.5 उत्तम परिकल्पना की विशेषताएं या कसौटी :

एक उत्तम परिकल्पना की निम्न विशेषतायें होती हैं –

3.5.1 परिकल्पना जाँचनीय हो –

एक अच्छी परिकल्पना की पहचान यह है कि उसका प्रतिपादन इस ढंग से

21

किया जाये कि उसकी जाँच करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सके कि परिकल्पना सही है या गलत । इसके लिये यह आवश्यक है कि परिकल्पना की अभिव्यक्ति विस्तष्त ढ़ंग से न करके विशिष्ट ढ़ंग से की जाये। अतः जाँचनीय परिकल्पना वह परिकल्पना है जिसे विश्वास के साथ कहा जाय कि वह सही है या गलत।

3.5.2 परिकल्पना मितव्ययी हो –

परिकल्पना की मितव्ययिता से तात्पर्य उसके ऐसे स्वरूप से है जिसकी जाँच करने में समय, श्रम एवं धन कम से कम खर्च हो और सुविधा अधिक प्राप्त हो।

3.5.3 परिकल्पना को क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्तों तथा तथ्यों से सम्बन्धित होना चाहिए–

कुछ परिकल्पना ऐसी होती है जिनमें शोध समस्या का उत्तर तभी मिल पाता है जब अन्य कई उप कल्पनायें (Sub-hypothesis) तैयार कर ली जाये। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उनमें तार्किक पूर्णता तथा व्यापकता के आधार के अभाव होते हैं जिसके कारण वे स्वयं कुछ नयी समस्याओं को जन्म दे देते हैं और उनके लिये उपकल्पनायें तथा तदर्थ पूर्वकल्पनायें (adhoc assumptions) तैयार कर लिया जाना आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिति में हम ऐसी अपूर्ण परिकल्पना की जगह तार्किक रूप से पूर्ण एवं व्यापक परिकल्पना का चयन करते हैं।

3.5.4 परिकल्पना को किसी न किसी सिद्धान्त अथवा तथ्य अथवा अनुभव पर आधारित होना चाहिये –

परिकल्पना कपोल कल्पित अथवा केवल रोचक न हो। अर्थात् परिकल्पना ऐसी बातों पर आधारित न हो जिनका कोई सैद्धान्तिक आधार न हो। जैसे – काले रंग के लोग गोरे रंग के लोगों की अपेक्षा अधिक विनम्र होते हैं। इस प्रकार की परिकल्पना आधारहीन परिकल्पना है क्योंकि यह किसी सिद्धान्त या मॉडल पर आधारित नहीं है।

3.5.5 परिकल्पना द्वारा अधिक से अधिक सामान्यीकरण किया जा सके

परिकल्पना का अधिक से अधिक सामान्यीकरण तभी सम्भव है जब परिकल्पना न तो बहुत व्यापक हो और न ही बहुत विशिष्ट हो किसी भी अच्छी परिकल्पना को संकीर्ण (narrow) होना चाहिये ताकि उसके द्वारा किया गया सामान्यीकरण उचित एवं उपयोगी हो।

3.5.6 परिकल्पना को संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए–

संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होने का अर्थ है परिकल्पना व्यवहारिक एवं वस्तुनिष्ठ ढ़ंग से परिभाषित हो तथा उसके अर्थ से अधिकतर लोग सहमत हों। ऐसा न हो कि परिभाषा सिर्फ व्यक्ति की व्यक्गित सोच की उपज हो तथा जिसका अर्थ सिर्फ वही समझता हो।

इस प्रकार हम पाते हैं कि शोध मनोवैज्ञानिक ने शोध परिकल्पना की कुछ ऐसी कसौटियों या विशेषताओं का वर्णन किया है जिसके आधार पर एक अच्छी शोध परिकल्पना की पहचान की जा सकती है।

3.6 परिकल्पना के प्रकार :

मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्र तथा शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्ताओं द्वारा बनायी गयी परिकल्पनाओं के स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसे कई प्रकारों में बाँटा जा सकता है। शोध विशेषज्ञों ने परिकल्पना का वर्गीकरण निम्नांकित तीन आधारों पर किया है –

3.6.1 चरों की संख्या के आधार पर –

(i) **साधारण परिकल्पना** – साधारण परिकल्पना से तात्पर्य उस परिकल्पना से है जिसमें चरों की संख्या मात्र दो होती है और इन्हीं दो चरों के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण स्वरूप बच्चों के सीखने में पुरस्कार का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यहाँ सीखना तथा पुरस्कार दो चर है जिनके बीच एक विशेष सम्बन्ध की चर्चा की है। इस प्रकार परिकल्पना साधारण परिकल्पना कहलाती है।

(ii) **जटिल परिकल्पना** – जटिल परिकल्पना से तात्पर्य उस परिकल्पना से है जिसमें दो से अधिक चरों के बीच आपसी सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। जैसे– अंग्रेजी माध्यम के निम्न उपलब्धि के विद्यार्थियों का व्यक्तित्व हिन्दी माध्यम के उच्च उपलब्धि के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक परिपक्व होता है। इस परिकल्पना में हिन्दी अंग्रेजी माध्यम, निम्न उच्च उपलब्धि स्तर एवं व्यक्तित्व तीन प्रकार के चर सम्मिलित हैं अतः यह एक जटिल परिकल्पना का उदाहरण है।

3.6.2 चरों की विशेष सम्बन्ध के आधार पर –

मैक्यूगन ने (Mc. Guigan, 1990) ने इस कसौटी के आधार पर परिकल्पना के मुख्य दो प्रकार बताये हैं।

(i) **सार्वत्रिक या सार्वभौमिक परिकल्पना** – सार्वत्रिक परिकल्पना से स्वयम् स्पष्ट होता है कि ऐसी परिकल्पना जो हर क्षेत्र और समय में समान रूप से व्याप्त हो अर्थात् परिकल्पना का स्वरूप ऐसा हो जो निहित चरों के सभी तरह के मानों के बीच के सम्बन्ध को हर परिस्थित में हर समय बनाये रखे। उदाहरण स्वरूप– पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिया में तेजी आती है। यह एक ऐसी परिकल्पना है जिसमें बताया गया सम्बन्ध अधिकांश परिस्थितियों में लागू होता है।

(ii) **अस्तित्वात्मक परिकल्पना** – इस प्रकार की परिकल्पना यदि सभी व्यक्तियों या परिस्थितियों के लिये नही तो कम से कम एक व्यक्ति या परिस्थिति के लिये निश्चित्त रूप से सही होती है। जैसे – सीखने की प्रक्रिया में कक्षा में कम से कम एक बालक ऐसा है पुरस्कार की बजाय दण्ड से सीखता है' इस प्रकार की परिकल्पना अस्तित्वात्मक परिकल्पना है।

23

3.6.3 विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर –

विशिष्ट उद्देश्य के आधार पर परिकल्पना के निम्न तीन प्रकार है–

(i) **शोध परिकल्पना** – इसे कार्यरूप परिकल्पना या कार्यात्मक परिकल्पना भी कहते हैं। ये परिकल्पना किसी न किसी सिद्धान्त पर आधारित या प्रेरित होती है। शोधकर्ता इस परिकल्पना की उद्घोषणा बहुत ही विश्वास के साथ करता है तथा उसकी यह अभिलाषा होती है कि उसकी यह परिकल्पना सत्य सिद्ध हो। उदाहरण के लिये – 'करके सीखने' से प्राप्त अधिगम अधिक सुदृढ़ होता है और अधिक समय तक टिकता है।' चूँकि इस परिकल्पना में कथन 'करके सीखने' के सिद्वान्त पर आधारित है अतः ये एक शोध परिकल्पना है।

शोध परिकल्पना दो प्रकार की होती है–दिशात्मक एवं अदिशात्मक। दिशात्मक परिकल्पना में परिकल्पना किसी एक दिशा अथवा दशा की ओर इंगित करती है जब कि अदिशात्मक परिकल्पना में ऐसा नही होता है।

उदाहरण– "विज्ञान वर्ग के छात्रों की बुद्धि एवं कला वर्ग के छात्रों की बुद्धि में अन्तर है।"

उपरोक्त परिकल्पना अदिशात्मक परिकल्पना का उदाहरण है क्योंकि बुद्धि में अन्तर किसका कम या ज्यादा है इस ओर संकेत नहीं किया गया। इसी परिकल्पना को यदि इस प्रकार लिखा जाय कि 'विज्ञान वर्ग के छात्रों की बुद्धि कला वर्ग के छात्रों की अपेक्षा कम होती है अथव कला वर्ग के छात्रों की बुद्धि विज्ञान वर्ग के छात्रों की बुद्धि से कम है तो यह एक दिशात्मक शोध परिकल्पना होगी क्योंकि इसमें कम या अधिक एक दिशा की ओर संकेत किया गया है।

(ii) **शून्य परिकल्पना** – शून्य परिकल्पना शोध परिकल्पना के ठीक विपरीत होती है। इस परिकल्पना के माध्यम से हम चरों के बीच कोई अन्तर नहीं होने के संबंध का उल्लेख करते हैं। उदाहरण स्वरूप उपरोक्त परिकल्पना को नल परिकल्पना के रूप में निम्न रूप से लिखा जा सकता है– 'विज्ञान वर्ग के छात्रों की बुद्धि लब्धि एंव कला वर्ग के छात्रों की बुद्धि लब्धि में कोई अंतर नही है। एक अन्य उदाहरण में यदि शोध परिकल्पना यह है कि, "व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न और भूल की अपेक्षा जल्दी सीखता है" तो इस परिकल्पना की शून्य परिकल्पना यह होगी कि – 'व्यक्ति सूझ द्वारा प्रयत्न और भूल की अपेक्षा जल्दी नहीं सीखता है।" अतः उपरोक्त उदाहरणों के माध्यम से शून्य अथवा नल परिकल्पना को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

(iii) **सांख्यिकीय परिकल्पना** – जब शोध परिकल्पना या शून्य परिकल्पना का सांख्यिकीय पदों में अभिव्यक्त किया जाता है तो इस प्रकार की परिकल्पना सांख्यिकीय परिकल्पना कहलाती है। शोध परिकल्पना अथवा सांख्यिकीय परिकल्पना को सांख्यिकीय पदों में व्यक्त करने के लिये

24

विशेष संकेतों का प्रयोग किया जाता है। शोध परिकल्पना के लिये H_1 तथा शून्य परिकल्पना के लिये H_0 का प्रयोग होता है तथा माध्य के लिये X का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण – यदि शोध परिकल्पना यह है कि समूह 'क' बुद्धिलब्धि में समूह 'ख' से श्रेष्ठ है तो इसकी सांख्यिकीय परिकल्पना H_1 तथा H_0 के पदों में निम्नानुसार होगी –

$$H_1 \quad : \quad X_A > X_B$$

$$H_0 \quad : \quad X_A = X_B$$

यहाँ पर माध्य X का प्रयोग इसलिये किया गया है क्योंकि एक दूसरे से बुद्धि लब्धि की श्रेष्ठता जानने के लिये दोनो समूहों की बुद्धि लब्धि का मध्यमान जानना होगा जिसके आधार पर श्रेष्ठता की माप की जा सकेगी।

इस प्रकार एक अन्य उदाहरण में यदि शोध परिकल्पना यह है कि– 'समूह क' की बुद्धि लब्धि एवं समूह 'ख' की बुद्धि लब्धि में अन्तर है' तो इसकी H_1 एवं H_0 इस प्रकार होगी।

$$H_1 \quad : \quad X_A \text{'''} X_B$$

$$H_0 \quad : \quad X_A = X_B$$

इस प्रकार विभिन्न प्रकार से शोध परिकल्पना का वर्गीकरण किया जा सकता है।

3.7 परिकल्पना के कार्य :

अनुसन्धान कार्य में परिकल्पना के निम्नांकित कार्य है :–

3.7.1 दिशा निर्देश देना –

परिकल्पना अनुसंधानकता को निर्देशित करती है। इससे यह ज्ञात होता है कि अनुसन्धान कार्य में कौन कौन सी क्रियायें करती हैं एवं कैसे करनी है। अतः परिकल्पना के उचित निर्माण से कार्य की स्पष्ट दिशा निश्चित हो जाती है।

3.7.2 प्रमुख तथ्यों का चुनाव करना –

परिकल्पना समस्या को सीमित करती है तथा महत्त्वपूर्ण तथ्यों के चुनाव में सहायता करती है। किसी भी क्षेत्र में कई प्रकार की समस्यायें हो सकती है लेकिन हमें अपने अध्ययन में उन समस्याओं में से किन पर अध्ययन करना है उनका चुनाव और सीमांकन परिकल्पना के माध्यम से ही होता है।

3.7.3 पुनरावृत्ति को सम्भव बनाना –

पुनरावृत्ति अथवा पुनः परीक्षण द्वारा अनुसन्धान के निष्कर्ष की सत्यता का

25

मूल्यांकन किया जाता है। परिकल्पना के अभाव में यह पुनः परीक्षण असम्भव होगा क्यों कि यह ज्ञात ही नही किया जा सकेगा किस विशेष पक्ष पर कार्य किया गया है तथा किसका नियंत्रण करके किसका अवलोकन किया गया है।

3.7.4 निष्कर्ष निकालने एवं नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन करना –

परिकल्पना अनुसंधानकर्ता को एक निश्चित निष्कर्ष तक पहुंचने में सहायता करती है तथा जब कभी कभी मनोवैज्ञानिकों को यह विश्वास के साथ पता होता है कि अमुक घटना के पीछे क्या कारा है तो वह किसी सिद्धान्त की पष्ठभूमि की प्रतीक्षा किये बिना परिकल्पना बनाकर जॉच लेते हैं। परिकल्पना सत्य होने पर फिर वे अपनी पूर्वकल्पनाओं, परिभाषाओं और सम्प्रत्ययों को तार्किक तंत्र में बांधकर एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन कर देते है।

अतः उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम परिकल्पनाओं के क्या मुख्य कार्य है आदि की जानकारी स्पष्ट रूप से प्राप्त कर सकते हैं

3.8 अध्याय सारांश :

किसी भी शोध परिकल्पना से तात्पर्य समस्या समाधान के लिये सुझाया गया वो उत्तर है जो दो या दो से अधिक चरों के बीच क्या और कैसा सम्बन्ध ा है बताता है। शोध परिकल्पना को प्राप्त करने के कई स्रोत है व्यक्ति अपने आस–पास के वातावरण के प्रति सजग रहकर अपनी सूझ द्वारा इसे आसानी से प्राप्त कर सकता है। उत्तम परिकल्पनाओं की विशेषताओ पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। साथ ही परिकल्पनाओं के प्रकार को भी समझाया गया है।

3.9 अध्याय प्रश्न :

1. परिकल्पना के अर्थ एवं प्रकषति को उल्लेख कीजिये ।
2. शोध परिकल्पना के स्रोतों को बताइये।
3. समस्या से सम्बन्धित साहित्य को स्पष्ट कीजिये ।
4. एक उत्तम शोध परिकल्पना की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
5. परिकल्पना क्षेत्र के मौजूदा सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये।
6. परिकल्पना को संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट करें।
7. सामान्यीकरण परिकल्पना क्या ह ?
8. शोध समस्या तथा शोध प्राक्कल्पना में क्या अन्तर है ?
9. परिकल्पना के प्रमुख कायो का संक्षेप में वर्णन करें।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

बेस्ट जॉन डब्लू रिसर्च इन एजूकेशन, नई दिल्ली इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0 प्रिन्टिस हॉल, 1997

भटनागर, आर0पी. : शिक्षा अनुसन्धान, लाल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2005।

27

इकाई –04 : शोध प्रतिचयन एवं आँकड़ो का प्रतिचयन

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 समष्टि की संकल्पना

4.3 जीवसंख्या के प्रकार

- 4.3.1 परिमित जीवसंख्या
- 4.3.2 अपरिमित जीवसंख्या

4.4 न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श

4.5 प्रतिदर्शन के प्रकार

- 4.5.1 संभाविता प्रतिदर्शन
- 4.5.2 असंभाविता प्रतिदर्शन

4.6 प्रतिदर्शन में ध्यान रखने योग्य बातें

- 4.6.1 जीवसंख्या का आकार
- 4.6.2 प्रतिदर्शन की लागत

4.7 प्रतिदर्शन के उपयोग

- 4.7.1 खर्च में कमी
- 4.7.2 दक्षता में वृद्धि
- 4.7.3 परिणाम की शुद्धता

4.8 एक उत्तम प्रतिदर्शन के अपेक्षित गुण

- 4.8.1 प्रतिनिधित्वता
- 4.8.2 पर्याप्तता

4.9 प्रतिदर्शन को दोषपूर्ण बनाने वाले घटक

- 4.9.1 **प्रतिदर्शीय त्रुटि**
- 4.9.2 **अप्रतिदर्शीय त्रुटि**

4.10 अध्याय सारांश

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 प्रस्तावना :

सामाजिक अनुंसन्धान में सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में एवं नगरी क्षेत्रों में मनुष्य एवं उसके सामाजिक समूहों का अध्ययन किया जाता है। निर्दशन विधि

में सम्पूर्ण का एक भाग चुनकर उनके सम्पूर्ण का पूरा अध्ययन किया जाता है। अनुसन्धान में कुछ परिस्थितियां ऐसी आती है जिनके द्वारा हमें सम्पूर्ण का अध्ययन करना पड़ता है केवल निदर्शन से कार्य नही चलता है। संक्षेप में निर्दशन विधि व्यवारिक विज्ञान की विधि है जिससे प्रयोग प्रभुशुद्धता आती है।

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

– समष्टि की संकल्पना की जानकारी को जान सकेंगे।

– समष्टि प्रतिदर्श के अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

– प्रतिदर्शन के प्रकार को जान सकेंगें।

– संभाविता प्रतिदर्शन एवं असंभाविता प्रतिदर्शन का पहचान सकेंगे।

– प्रतिदर्शन के उपयोग को समझ सकेंगे।

– प्रतिदर्शन के उपेक्षित गुण को बता सकेंगें ।

– प्रतिदर्शन के दोषपूर्ण बनाने वाले घटक बता सकेंगें।

शोध प्रतिचयन एवं आँकड़ो का प्रतिचयन

व्यवहार विज्ञानों के क्षेत्र में अनेक ऐसे महत्वपूर्ण अनुसन्धान सम्पन्न होते हैं जो इकाइयों के एक छोटे समूह पर किये जाते हैं, परन्तु उस पर आधारित निष्कर्ष इकाइयों की वृहद समष्टि पर भी लागू माने जाते हैं। अनेक कारणों से वृहद् समष्टि की सभी इकाइयों का अध्ययन करना प्रायः सम्भव नहीं होता। उस स्थिति में इकाइयों के एक छोटे समूह का ही अध्ययन करना पड़ता है। यदि समूची वृहद् समष्टि का अध्ययन करना सम्भव भी हो, तो भी ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं होगी क्योंकि इसमें बहुत अधिक समय, धन एवं शक्ति का व्यय होगा। ऐसी स्थिति में थोड़ी सी त्रुटि के साथ समष्टि के एक छोटे समूह पर प्राप्त परिणामों को यदि पूरी समष्टि पर लागू किया जाय तो यह बेहतर होगा क्योंकि इससे समय, धन एवं श्रम के अधिक व्यय को बचाया जा सकेगा। उपरोक्त बात को इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि एक बोरा दाल खरीदने के लिये उसमें एक एक मुटठी दाल का निरीक्षण करके पूरी दाल का बोरा खरीदना अधिक श्रेयकर होगा अपेक्षाकृत पूरे दाल के बोरे के एक एक दाने को जाँच करके खरीदने के क्योंकि इसमें समय और श्रम अधिक लगेगा जबकि परिणाम लगभग समान होगें। वास्तविक जीवन की अनेक परिस्थितियों में हम ऐसा ही करते हैं।

अनुसन्धान के क्षेत्र की भी अनेक परिस्थितियों में ऐसा ही किया जाता है एवं व्यवहार विज्ञान, विशेषकर, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा के क्षेत्र में, इस प्रकार के अनुसन्धान बहुत अधिक प्रचलित हैं। इसमें इकाइयों की किसी वृहद समष्टि में से कुछ इकाइयों के समूह को लेकर उनका अध्ययन किया जाता है तथा उनके आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है उसे सम्पूर्ण समष्टि के विषय में सही समझा जाता है। उसे समूची समष्टि की विशेषता समझा जाता है। सम्पूर्ण

समष्टि की व्याख्या उसके आधार पर की जाती हैं। इस छोटे समूह को ही समष्टि का न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श (Sample) कहते हैं।

न्यादर्श के अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण समष्टि की विशेषताओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना, समष्टि की व्याख्या करना, उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना, उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना, अनुसंधान की सर्वमान्य वैज्ञानिक प्रक्रिया है। परन्तु यह बात उसी सीमा तक सही है जहाँ तक न्यादर्श का चयन वैज्ञानिक विधियों द्वारा किया गया हो क्योंकि न्यादर्श के आधार पर समष्टि के विषयमें सही–सही निष्कर्ष निकाल पाना तभी सम्भव है जब न्यादर्श समष्टि का सही सही अध्ययन करता हो। अतः इस सन्दर्भ में न्यादर्श एवं उसके प्रतिचयन की विधियों के विषय में विस्तार से जानना आवश्यक है।

4.2 समष्टि की संकल्पना :

समष्टि शब्द अंग्रेजी के Universe का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका बहुत व्यापक अर्थ है। समष्टि का तात्पर्य समस्त ब्रह्माण्ड में उपस्थित समस्त व्यक्तियों, वस्तुओं, जीवों, पेड़–पौधों, धातुओं अर्थात सजीव एवं निर्जीव समस्त भौतिक वस्तुओं आदि की इकाइयों की समस्त जहवसंख्या से है। इसे निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

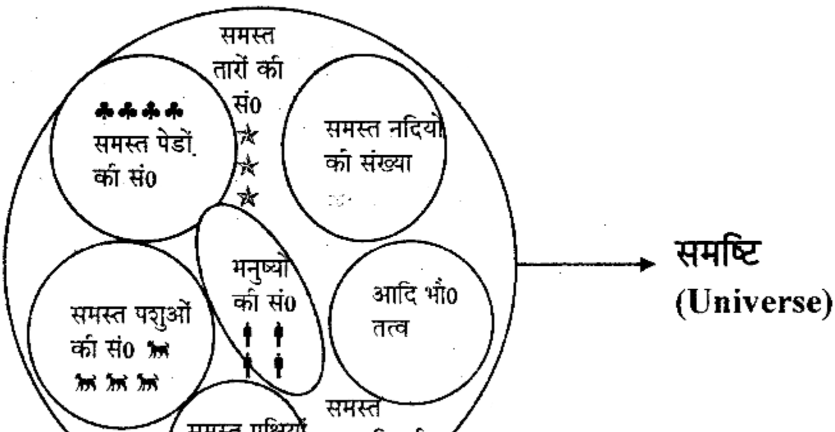

अतः चित्र से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि ब्रह्माण्ड में उपस्थित वे समस्त भौतिक तत्व जिनके अस्तित्व को हम अनुभव कर सकते हैं समष्टि है और इस समष्टि में उपस्थित हर विशेष प्रकार के तत्व की समस्त संख्या को उस तत्व की जीवसंख्या कहेंगे अर्थात् जिस भौतिक तत्व का अध्ययन हम करना चाहते हैं उसकी समस्त इकाइयों की कुल संख्या उस विशेष भौतिक तत्व की जीवसंख्या कहलायेगी। उदाहरण के लिये बिल्लियों पर किये गये किसी भी अध्ययन में बिल्लियों की समस्त संख्या उस अध्ययन की जीवसंख्या (Population) होगी।

स्पष्ट है कि समष्टि एवं जनसंख्या में बड़ा अन्तर है परन्तु व्यवहारिक रूप में अधिक समष्टि एवं जनसंख्या को एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में

प्रयोग किया जाता है जहाँ पर समष्टि का तात्पर्य जनसंख्या अथवा जीवसंख्या से होता है। एक अन्य उदाहरण में यदि 'कानपुर शहर के माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा में भूमिका का अध्ययन' करना है तो इस स्थिति में कानपुर शहर के समस्त माध्यमिक विद्यालय उपरोक्त अध्ययन की जनसंख्या या जीवसंख्या (Population) होगें।

4.3 जीवसंख्या के प्रकार :

सामान्यता जीवसंख्या के दो प्रकार प्रचलित है –

1. परिमित जीवसंख्या (Finite Population)
2. अपरिमित जीवसंख्या (Infinite Population)

परिमित जनसंख्या या जीवसंख्या से तात्पर्य ऐसी जीवसंख्या से है जिसके सदस्यों की गिनती की जा सकती है जबकि अपरिमित जीवसंख्या के सदस्यों की गिनती नहीं की जा सकती है। उदाहरण स्वरूप सभी विश्वविद्यालय शिक्षकों को समूह परमित जीवं संख्या है जबकि समस्त पक्षियों की संख्या अपरिमित जीवसंख्या है।

कुछ विद्वानों को जनसंख्या के दो अन्य प्रकार सम एवं विषम जीवसंख्या भी बताये हैं। सम जीवसंख्या (Homogeneous Population) उसे कहते हैं जिसकी सभी इकाइयो के बीच उनकी विशेषताओं के दृष्टिकोण से पर्याप्त समानता होती है। परंतु जब इकाइयों के समूह विभिन्न दृष्टिकोणों से पर्याप्त भिन्नता रखते हुये जीवसंख्या में समाये रहते हैं तो उसे विषम जीवसंख्या (Heterogeneous Population) कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कभी कभी लक्ष्यगत समष्टि की सभी इकाइयाँ अनुसन्धान हेतु उपलब्ध नहीं हो पाती तथा उनके विषय शोध–ऑकड़े (data) एकत्र करना सम्भव नहीं हो पाता ऐसी स्थिति में उन इकाइयों को अध्ययन में सम्मिलित किया जाता है जो शोध हेतु उपलब्ध हो जाती है। इसे अभिगम्य अथवा प्राप्य समष्टि (Accessible Population) कहते हैं। इस प्रकार लक्ष्यगत समष्टि एवं अभिगम्य समष्टि के बीच अन्तर किया गया है। परंतु यदि किसी शोध में लक्ष्यगत समष्टि की सभी इकाइयों के बारे में जानकारी प्राप्त करना सम्भव हो तो वही लक्ष्यगत एवं वही अभिगम्य समष्टि होगी, दोनो मे कोई अन्तर नहीं होगा।

समष्टि अथवा जनसंख्या अथवा जीवसंख्या के सबसे छोटे भाग अथवा अंग को इकाई (Unit) कहते हैं। अतः जीवसंख्या इन इकाइयों अथवा व्यक्तियों का सामूहिक रूप होता है।

4.4 न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श (Sample) :

जीवसंख्या की समस्त इकाइयों में से अध्ययन हेतु कुछ इकाइयों को एक निश्चित विधि द्वारा चुन लिया जाता है। उन संकलित इकाइयों के समूह को न्यादर्श कहते है। इस न्यादर्श के आधार पर ही अध्ययनगत निष्कर्ष घटित होते

31

हैं तथा इन्हीं न्यादर्श आधारित निष्कर्षो के आधार पर जीवसंख्या अथवा समष्टि के विषय में उददेश्यों के अनुरूप सामान्यीकरण किया जाता है। इसके पीछे अवधारणा यह रहती है कि जो कुछ न्यादर्श के विषय में पाया गया है वो उस जीवसंख्या पर भी समान रूप से लागू होगा। परन्तु यह बात सदैव सही नहीं होती यह तभी सम्भव है जब न्यादर्श का चयन वैज्ञानिक विधि से किया गया हो क्योंकि तभी चयनित न्यादर्श पूर्णरूप से प्रतिनिधि न्यादर्श (Representative Sample) होंगे। यदि इस विधि से न्यादर्श का चयन नहीं किया गया है तो वह जीवसंख्या का प्रतिनिधित्व नहीं करेगा और उस स्थिति में जो अध्ययनगत निष्कर्ष निकलेगा वह जीवसंख्या के विषय में सही नहीं होगा और ऐसा न्यादर्श अभिनत्यात्मक न्यादर्श (Biased Sample) कहा जाता है।

अभिनत्यात्मक न्यादर्श की स्थिति में जो सांख्यिकीय न्यादर्श प्राप्त होता है वह उस सांख्यिकीय मान से बहुत भिन्न होता है, जो सम्पूर्ण जीवसंख्या के अध्ययन पर उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिये यदि कोई अध्ययन उत्तर प्रदेश के माध्यमिक स्तर में पढ़ने वाले छात्रों पर किया जाय और न्यादर्श के रूप में सिर्फ उन्हीं विद्यालयों को लिया जाय जो सिर्फ शहरों में स्थित है अर्थात गॉव एवं कस्बे के विद्यालयों को न लिया जाय, तो ऐसा न्यादर्श अभिनत्यात्मक न्यादर्श (biased sample) कहलायेगा और ऐसे प्रतिदर्श से प्राप्त निष्कर्ष को उत्तर प्रदेश के सभी माध्यमिक स्तर के विद्यालयों पर समान रूप से लागू नहीं किया जा सकेगा क्योंकि इन पर आधारित मापांकों में स्थायी (fixed) अथवा स्थिर (Constant) त्रुटि (error) का समावेश रहता है।

प्रतिनिधि–न्यादर्श वह न्यादर्श होता है जिसमें समष्टि का प्रतिरूप अथवा उसकी प्रतिकषति से सम्बन्धित सभी लक्षणों, गुणों एवं विशेषताओं आदि का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश हो। यदि न्यादर्श का चयन समसम्भाविक विधि (Random Method) से किया जाता है तो उससे प्राप्त न्यादर्श प्रतिनिधि न्यादर्श होता है और ऐसे न्यादर्श पर आधारित जीवसंख्या से सम्बन्धित सांख्यिकीय मान का पूर्वानुमान (Prediction) अधिक सही सही किया जा सकता है । उसमें यदि त्रुटि की सम्भावना होती भी है तो उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

4.5 प्रतिदर्श के प्रकार (Types of Sampling) :

व्यवहारपरक शोधों में प्रयुक्त होने वाले प्रतिदर्शन या न्यादर्शन (Sampling) को मूलतः दो विस्तृत भागों में बॅाटा जाता है–

(अ) संभाविता प्रतिदर्शन (Probability Sampling)

(ब) असंभाविता प्रतिदर्शन (Non Probability Sampling)

इन दोनों तरह के प्रतिदर्शन परियोजनाओं (Sampling Plans) का वर्णन निम्नांकित है–

4.5.1 संभावविता प्रतिदर्शन (Probability Sampling)

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है संभावित प्रतिदर्शन वैसें प्रतिदर्शन परियोजना (Sampling Plan) को कहा जाता है जिसमें जीवसंख्या (Population के सदस्यों का प्रतिदर्शन (Sampling) में सम्मिलित किये जाने की संभावना (Probability) ज्ञात होती है। आदर्शतः (ideally) संभाविता प्रतिदर्शन में शोधकर्ता (researcher) निम्नांकित शर्तों से संतुष्ट होना आवश्यक है –

(i) जीवसंख्या जिससे प्रतिदर्श का चयन किया जाने वाला है, उसका आकार अवश्य ही ज्ञात होना चाहिये।

(ii) प्रतिदर्श की वांछित संख्या निर्दिष्ट हो तथा

(iii) जीवसंख्य के प्रत्येक सदस्य का प्रतिदर्श में सम्मिलित किये जाने की संभावना (Probability) हो।

उपरोक्त तीन शर्तो में से पहली और तीसरी शर्त कुछ ऐसी है कि कभी कभी शोधकर्ता उसे ठीक ढ़ंग से पूर्ण नही कर पाता है। फिर भी संभाविता प्रतिदर्शन का एक धनात्मक गुण यह है कि इससे प्राप्त होने वाले प्रतिदर्श प्रतिनिधित्व (representative) होते हैं। फलस्वरूप इने मिलने वाले निष्कर्ष (Conclusion) को काफी विश्वास के साथ उस जीवसंख्या (Population) जिससे प्रतिदर्श का चयन किया गया है तथा उस तरह की समान जीवसंख्या (Similar Population) पर लागू किया जा सकता है।

संभाविता प्रतिदर्श के निम्नाकित तीन प्रमुख प्रकार है–

(i) साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Simple random sampling)

(ii) स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Stratified random sampling)

(iii) क्षेत्र या गुच्छ प्रतिदर्शन (Area or cluster sampling)

4.5.2 असंभावविता प्रतिदर्शन (Non Probability Sampling)

असंभावित प्रतिदर्शन वैसी प्रतिदर्शन परियोजना है जिसमें जीवसंख्या के सदस्यों को प्रतिदर्श (Sample) में सम्मिलित किये जाने की संभावना ज्ञात नही होती है। इसके अलावा इस तरह के प्रतिदर्शन में शोधकर्ता जीवसंख्या को स्पष्ट पहचान करने की चिन्ता नहीं करता है और उसे अपनी आवश्यकतानुसार एवं इच्छानुसार कुछ सदस्यों को चयन कर प्रतिदर्शन में शामिल कर लेता है।

असंभाविता प्रतिदर्शन का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसे कम समय, धन एवं श्रम के साथ सरलतापूर्वक तैयार किया जा सकता है। इसकी सबसे प्रमुख परिसीमा यह है कि इस प्रकार प्राप्त प्रतिदर्श अपनी जीवसंख्या का सही सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते हैं। फलस्वरूप, इससे प्राप्त निष्कर्ष का सामान्यीकरण

33

उस सम्पूण जीवसंख्या या उससे मिलती जुलती जीवसंख्या की इकाइयों के लिये सही–सही ढ़ंग से नहीं किया जा सकता है।

असंभाविता प्रतिदर्शन के मुख्य रूप से निम्नांकित प्रकार हैं –

(i) कोटा प्रतिदर्शन (Quota sampling)

(ii) आकस्मिक प्रतिदर्शन (Accidental or incidental sampling)

(iii) उद्देश्यपूर्ण प्रतिदशन (Purposive sampling)

(iv) क्रमबढ़ प्रतिदर्शन (Systematic sampling)

(v) हिमकंदुक प्रतिदर्शन (Snowball sampling)

(अ) संभावविता प्रतिदर्शन (Probability Sampling)

(i) साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Simple random sampling)

साधारण यादषच्छिक प्रतिदर्शन संभाविता प्रतिदर्शन का एक प्रमुख प्रकार है। इसमें जीवसंख्या घ्के प्रत्येक सदस्य के प्रतिदर्श (Sample) में सम्मिलित किये जाने की संभावना बराबर होती है तथा किसी एक सदस्य का चयन दूसरे सदस्य के चयन को बाधित या प्रभावित नहीं करता है।

साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्शन चूँकि सम्भाव्यता या संभाविता प्रतिदर्शन है। अतः इसमें न्यादर्श के चयन में मानव विवेक का स्थान नही होता है। अतः इस विधि में इकाइयों का चयन कुछ यांत्रिक या संयोगिक क्रिया द्वारा किया जाता है। साधारण यादषच्छिक प्रतिदर्शन की मुख्यतः दो विधियां है –

(1) **लॉटरी विधि** – इस विधि में एक ही आकार की उतनी ही गोलियाँ या पर्चियाँ होती है जितनी जीवसंख्या में इकाइयाँ है और प्रत्येक गोली या पर्ची पर ढ़ाँचे (frame) के अनुसार क्रमांक लिखे होते हैं। इन्न गोलियों या पर्चियों को फिर एक अर्ध–गोलाकार बर्तन (bowl) में रखकर उसे अच्छी तरह हिला दिया जाता है अब इसमे से यादष्छया किसी भी एक गोली/पर्ची का चयन किया जाता है और फिर उस गोली पर ढ़ाँचे की सहायता से लिखे गये क्रमांक की इकाई को न्यादर्श में सम्मिलित कर लिया जाता है और फिर बर्तन को हिला दिया जाता है इसी प्रकार से न्यादर्श के अनुसार, वांछित इकाइयों का चयन कर लिया जाता है।

(2) यादृच्छिकी संख्या_सारिणी विधि – इस समसंभाविका संख्या तालिका भी कहते हैं इस विधि का प्रयोग वहाँ अधिक होता है जहाँ समष्टि का विस्तार अधिक हो तथा चयनित न्यादर्श का आकार भी बड़ा हो। इसके लिये एक तालिका का प्रयोग करते हैं जो प्रायः सांख्यिकी की सभी पुस्तकों में उपलब्ध होती है। इस तालिका में जो संख्याएँ लिखी होती है उन्हें समसभाविक विधि द्वारा तैयार

किया जाता है। वे अभिनतिमुक्त (free from bias) होती है । ये संख्याएँ स्तम्भों में लिखी रहती है परंतु इन्हें पंक्तिवार, स्तम्भवार किसी प्रकार से भी प्रयोग में लाया जा सकता है। नीचे तालिका के एक छोटे अंश को प्रस्तुत किया गया है –

72824	30207	96587	15278
91514	21648	77803	96856
37283	50919	19833	88297
48225	09256	89958	74982
56506	14882	06565	82511
08292	31215	63369	14613
48137	98662	82950	98973
77625	72032	11515	18206

तालिका का प्रयोग इस प्रकार से है। माना जीवसंख्या में कुल इकाइयों की संख्या 500 है जो सूचीबद्ध एवं क्रमांकित है। अब यदि इन 500 इकाइयों में से 12 इकाइयॉ चुननी है तो इसके लिये सबसे पहले ऑख बंद करके किसी भी संख्या पर उंगली रख देते हैं। माना कि यह संख्या उपरोक्त तालिका के तीसरे स्तम्भ की तीसरी संख्या 19833 आयी ।हम इसे छोड़ देंगे क्योंकि इसके अंतिम तीन अंक 500 से ऊपर है।(यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि हम तालिका संख्याओं के अन्तिम तीन अंकों का ही प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि हमारी समष्टि संख्या भी तीन अंको की ही है। यूकि 833 अंक 500 से ऊपर है अतः हम इसका त्याग कर देगे। अब आगे चलते हैं तो क्रमशः 833, 958 और 565 अंक मिलते हैं इन्हें भी छोड़ देगें। इनके आगे चलने पर अगला अंक 369 मिलता है चूँकि यह 500 से कम है। अतः इसे नोट कर लेगे। इस प्रकार हमें 369, 278, 297, 206, 283, 225, 292, 137, 207 256, 215, 32 से 12 संख्याये मिलेगी। इन क्रमसंख्याओं वाली इकाइयों को हम सूची में से छॉटकर न्यादर्श तैयार कर लेंगे।

(ii) स्तरित यादृच्छिक प्रतिदर्शन (Simple random sampling)

किसी भी न्यादर्श को जीवसंख्या का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप से करना चाहिए। पर्याप्तता के लिये यह आवश्यक है कि न्यादर्श का मानक विचलन या अन्य विचलन कम हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तथा अन्य कई कारणों से जीवसंख्या को कभी कभी कमवायी स्तरों में विभाजित कर दिया जाता है। इसके लिये प्रत्येक स्तर में पड़ने वाली इकाइयों का ढ़ाँचा तैयार करते हैं और उन भिन्न स्तरों के ढ़ाँचे मे से इकाइयों को यादषच्छिकी न्यादर्शन विधि से चुन लेते हैं। इस विधि को स्तरीकष्त यादषच्छिक प्रतिदर्शन कहते है।

अब इस प्रतिदर्शन में स्तरीकरण करने की आवश्यकता क्यों और क्या यह जानना भी आवश्यक है। जीवसंख्या को स्तरीकष्त करने के चार मुख्य कारण है :

35

(1) कभी कभी भिन्न–भिन्न स्तर की जीवसंख्याओं के लिये समष्टियों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये, बुद्धि मापन में हम पुरूषों एवं स्त्रियों या शहरी / ग्रामीण क्षेत्र के लिये अलग–अलग माध्य बुद्धि–लब्धि ज्ञात करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण जीवसंख्या को स्त्री–पुरूष एवं ग्रामीण शहरी चार स्तरों में विभाजित कर देंगे, जैसे–

	शहरी	ग्रामीण
स्त्री	शहरी स्त्री	ग्रामीण स्त्री
पुरूष	शहरी पुरूष	ग्रामीण पुरूष

(2) प्रशासनिक सुविधा के लिए भी स्तरीकरण किया जाता है। जब स्तर समवायी होते हैं तो उनका सर्वेक्षण करने के लिये उचित व्यक्तियों को ढूँढ़ा जा सकता है। उदाहरण के लिये, एक ही व्यक्ति नगर के धनी–वर्ग और गाँव की सामान्य जनता का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। भाषा, संस्कृति, पष्ठभूमि एवं अनुभव विचार विनमय में बाधक होते हैं।

(3) न्यादर्श में प्रतिनिधित्व होने की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है।

(4) न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श की इकाइयों के मान का प्रसार (dispersion) कम हो जाता है जिससे मानक त्रुटि कम हो जाती है और छोटे न्यादर्श से अनुमान में वही दक्षता प्राप्त होती है जो सरल यादृच्छिकी प्रतिदर्शन में बड़े न्यादर्श से । यह स्तरीकरण का सबसे बड़ा उपयोग है। क्योंकि यदि स्तरीकरण से जनसंख्या समवायी उपसमूहों में विभक्त नहीं होता है तो स्तरीकरण करना निरर्थक होता है।

स्तरीकरण का आधार – स्तरीकरण का मुख्य उद्देश्य जनसंख्या को ऐसे उपसमूहों में विभाजित करना है कि प्रत्येक उपसमूह में चर का प्रसार कम हो अथात इकाइयाँ समवायी हों। अब हमें चर के मान का वितरण पहले से ज्ञात नहीं होता है। ऐसी अवस्था में स्तरीकरण हमे किसी दूसरे ऐसे चर के आधार पर करना चाहिए जो अभीष्ट चर से सम्बन्धित हो। उदाहरण के लिये–बालकों की उपलब्धि का परीक्षण उनकी बुद्धिलब्धि के स्तरीकरण के आधार पर किया जा सकता है क्योंकि उपलब्धि एवं बुद्धि लब्धि में उच्च सहसम्बन्ध होता है। कभी कभी दो चरों जैसे– ग्रामीण / शहरी, स्त्री / पुरूष आदि के आधार पर भी किया जा सकता है।

स्तरीकृत यादृच्छिकी प्रतिदर्शन के निम्न तीन प्रकार है –

(अ) **समानुपाती (Proportionate)** – इसमें किसी स्तर से लिये गये प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या उसी अनुपात में होती है जिसमें उस स्तर में जीवसंख्या की कुल इकाइयाँ। जैसे यदि किसी जीवसंख्या के स्तर क, ख, ग में क्रमशः 400,

36

500, 600 इकाइयाँ है तो न्यादर्श में तीन स्तरों से इकाइयाँ क्रमशः 4:5:6 के अनुपात में होगी।

(ब) असमानुपाती (Disproportionate) – इसमें इकाइयाँ निश्चित अनुपात में नहीं होती है किंतु उचित सांख्यिकीय सूत्रों की सहायता से शुद्ध परिणाम निकालने का प्रयास किया जाता है।

(स) महत्तम विभाजन (Maximum Allocation) – इसमें प्रत्येक स्तर से चुनी गयी इकाइयों की संख्या उस स्तर में जनसंख्या की संख्या और उस स्तर के मानक विचलन पर निर्भर होती है। यही सबसे उपयुक्त विधि है।

(iii) क्षेत्र या गुच्छ प्रतिदर्शन (Area or Cluster Sampling)

कभी–कभी प्रतिदर्श की इकाइयाँ चर की प्राकषतिक इकाइयाँ न होकर उनके स्वभाविक समूह या गुच्छे (Cluster) होते हैं। प्रतिदर्शन की इस विधि में गुच्छों का ही ढाँचा बनाया जाता है और इस ढाँचे में से यादषच्छिकी प्रतिदर्श चुना जाता है। तत्पश्चात गुच्छों में पड़ने वाली प्रत्येक इकाई का अध्ययन किया जाता है यदि इकाइयाँ आवश्यकता से अधिक हैं तो आवश्यक इकाइयों का चयन यादषच्छिकी विधि द्वारा कर लिया जाता है। इसे उपप्रतिदर्शन (Sub-sampling) कहते है।

उदाहरण के लिये यदि किसी नगर के कक्षा 10 में पढ़ने वाले विद्यार्थियों पर कोई अध्ययन किया जाना है तो कक्षा 10 तक के सभी विद्यालय इस अध्ययन की इकाई अथवा जीवसंख्या होगें। अब इन सभी विद्यालयों में से कुछ विद्यालयों का यदृच्छया चयन करके उनकी कक्षा 10 की क्लासों का भी यदष्च्छया चयन कर लिया जायेगा अब प्राप्त कक्षायें जो कि अलग–अलग गुच्छ के रूप में होगी, में इन सभी गुच्छों के समस्त छात्रों को अध्ययन के लिये प्रतिदर्श के रूप में चुन लिया जायेगा। और यदि ये प्रतिदर्श अपेक्षित प्रतिदर्श से अधिक है तो इन्हीं गुच्छो में से पुनः यादृच्छिक रूप से वाक्षित प्रतिदर्श प्राप्त कर लिया जायेगा।

प्रतिदर्शन की यह विधि तब अधिक लाभदायक है जब इकाई तक पहुँचने का व्यय अधिक एवं इकाई के अध्ययन का व्यय कम होता है।

(ब) असंभावविता प्रतिदर्शन (Non Probability Sampling)

(i) कोटा प्रतिदर्शन /प्रतिचयन – (Quota Sampling)

कोटा प्रतिदर्शन जिसे अंश न्यादर्शन भी कहते हैं, में जीवसंख्या का स्तरीकरण उसी प्रकार किया जाता है, जैसे कि स्तरीकृत यादृच्छिकी प्रतिदर्शन (Straitified Random Sampling) में, किन्तु इस विधि में शोधकर्ता प्रत्येक स्तर से कोटा अथवा अंश में इकाइयों का चयन अपने विवेक से करता है।

(ii) आकास्मिक प्रातदर्शन / प्रतिचयन– (Accidental or Incidental Sampling)

आकस्मिक प्रतिदर्शन में जीवसंख्या से सम्बन्धित जो कोई भी इकाई सुविधापूर्वक उपलब्ध होती है, उसका प्रतिचयन कर लिया जाता है। यहाँ शोधकर्ता की सुविधा को ध्यान में रखा जाता है।

(iii) उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन /प्रतिचयन – (Purposive Sampling)

उद्देश्यपूर्ण अथवा सोद्देश्य प्रतिदर्शन में शोधकर्ता जीवसंख्या के उस समूह की इकाइयों का चयन करता है जिसे वह पूर्वज्ञान के आधार पर उस जीवसंख्या का प्रतिनिधि समझता है।

(iv) क्रमबद्ध प्रतिदर्शन /प्रतिचयन – (Systematic Sampling)

क्रमबद्ध प्रतिदर्शन (Systematic Sampling) एक ऐसी प्रतिदर्शन परियोजना है जिसमें यादषच्छिकीकरण (Ramdomness) का कुछ गुण, होता है और साथ ही साथ इसमें असंभाविता गुण (Non-probability trait) भी होते हैं। ब्लैक तथा चैम्पियन (Black and Champion 1977) के अनुसार– "एक ऐसी प्रतिदर्शन परियोजना जिसमें यादष्च्छीकरण के गुण हो तथा साथ ही साथ असंभाविता शीलगुण भी उनमें मौजूद हो, उसे क्रमबद्ध प्रतिदर्शन परियोजना कहा जाता है। क्रमबद्ध प्रतिदर्शन व्यक्तियों की पूर्वनिर्धारित सूची से प्रत्येक (n^{th}) nवाँ व्यक्ति को चयन करते हुए उनका एक समूह तैयार करने की प्रक्रिया को कहा जाता है।"

उदाहरण के लिये यदि किसी फैक्ट्री में कार्यरत 1000 कर्मचारियों पर कोई सर्वेक्षण करना हे तो इन कर्मचारियों की एक सूची प्राप्त कर ली जायेगी और इसमें किसी भी एक कर्मचारी का यदष्च्छया चयन कर लिया जायेगा माना ये कर्मचारी सूची क्रम में 7वाँ है तो प्रतिदर्श में इसका चयन करने बाद हर 5वाँ या 10वाँ व्यक्ति शामिल कर वांछित न्यादर्श प्राप्त कर लिया जायेगा ।

(v) हिमकंदुक प्रतिदर्शन /प्रतिचयन – (Snowball Sampling)

हिमकंदुक प्रतिदर्शन एक ऐसा असंभाविता प्रतिदर्शन है जिसका प्रयोग शोधकर्ता उस परिस्थिति में करता है जब वह व्यक्तियों के बीच अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना चाहता है। हिमकंदुक प्रतिदर्शन को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह प्रतिदर्शन की एक ऐसी विधि हे जिसमें किसी सीमित समूह या संगठन में सभी सदस्यों को अपने अपने दोस्तों एवं साथियों (associates) की पहचान करने को कहा जाता है और इस प्रकार से शोधककर्ता के समक्ष परिचितों का एक समूह उभर कर सामने आता है जिससे उसे उस समूह के पूर्व सामाजिक पैटर्न (तरीकों/प्रारूप) का पता चल

जाता है। इस तरह के प्रतिदर्शन में कुछ खास खास व्यवहार को जैसे दोस्ताना सम्बन्ध को आधार बनाया जाता है। मूलतः हिमकंदुक प्रतिदर्शन का स्वरूप समाजमितीय पर आधारित होता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को यह बताना अनिवार्य होता है कि वो सम्बन्धित जानकारी /सूचना को कहाँ से प्राप्त करते हैं ? इससे शोधकर्ता को एक परस्पर अन्तः क्रिया का पैटर्न पता चल जाता है।

4.6 प्रतिदर्श में ध्यान रखने योग्य बातें :

जब कोई शोधकर्ता यह निर्णय करने की स्थिति मे होता है कि उसे अपने अध्ययन के लिये प्रतिदर्श का चयन करना है तो उसे निम्न कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिये–

4.6.1 जीवसंख्या का आकार –

यदि जीवसंख्या का आकार छोटा है तो ऐसी स्थिति में शोधकर्ता सभी सदस्यों को अपने अध्ययन में शामिल कर सकता है। परंतु यदि जीवसंख्या का आकार बड़ा है तो जैसे उसके सदस्यों की संख्या 10,000 या उससे अधिक है तो शोधकर्ता उस जीवसंख्या से अपने अध्ययन के लिये एक उपयुक्त (appropriate) आकार का प्रतिदर्श का चयन कर ले ये एक बेहतर विकल्प है। अतः स्पष्ट है कि जब जीवसंख्या का आकार बड़ा होता है केवल तभी प्रतिदर्शन की आवश्यकता होती है।

4.6.2 प्रतिदर्शन की लागत (Cost of Sampling) –

प्रतिदर्शन किया जाय या नहीं या फिर यदि किया जाय तो प्रतिदर्श में कितने सदस्य होगें, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि इन सभी प्रक्रियाओं का खर्च कितना आयेगा और वह शोधकर्ता के बजट के अनुरूप है या नहीं। परन्तु यदि ऐसा नहीं है, तो शोधकर्ता को उसी के अनुसार प्रतिदर्शन परियोजना (Sampling Plan) में परिवर्तन करना पड़ता है।

3. जीवसंख्या के सदस्यों की उपलब्धता (Accessibility of Members of Population) –

प्रतिदर्शन में सम्मिलित प्रतिदर्श को जीवसंख्या से आसानी से प्राप्त किया जा सके इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। यदि वे शोधकर्ता के लिये दुर्लभ है, तो वैसी परिस्थितिमें उन्हें प्रतिदर्श में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है और ऐसी स्थिति में शोधकर्ता को अपनी विशेष परियोजना (Planning) में परिवर्तन करना पड़ता है।

स्पष्ट है कि प्रतिदर्शन करते समय यदि उपरोक्त बातों को ध्यान में रखा जाए, तो इससे प्रतिदर्शन का स्वरूप अधिक शोधनीय (researchable) होगा।

39

4.7 प्रतिदर्श के उपयोग (Use of Sampling) :

प्रतिदर्शन की आवश्यकता अथवा उपयोग के कुछ मुख्य कारण निम्नवत है

4.7.1 खर्च में कमी –

प्रतिदर्श का उपयोग सर्वेक्षणों में अधिक होता है। जहाँ सीमित, धन,समय, व्यक्तियों एव साधनों से एक जनसंख्या के विषय में किसी चर का मान प्रस्तुत करना पड़ता है, वहाँ यदि सभी इकाइयों का सर्वेक्षण किया जाये तो सीमित साधान से सीमित समय में काम सम्पन्न नहीं होगा।

4.7.2 दक्षता में वृद्धि –

परिणाम एवं उनको प्राप्त करने के लिये किये गये व्यय के अनुपात को दक्षता कहते हैं। यदि सभी इकाइयों का अध्ययन न करने से परिणाम में कुछ त्रुटि रह गयी तो भी व्यय में अधिक कमी हो जाने के कारण सर्वेक्षण की दक्षता बढ़ जाती है।

4.7.3 परिणाम की शुद्धता –

परिणाम की शुद्धता परिणाम प्राप्त करने में लगी हुई जनशक्ति की कुशलता पर निर्भर है। सभी इकाइयों का अध्ययन करने के लिये अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होगी जिन्हें सीमित साधनों से प्राप्त नही किया जा सकता और यदि सर्वेक्षण दोषपूर्ण हुआ तो अधिक इकाइयों के अध्ययन से त्रुटि में विस्तार ही होगा।

4.8 एक उत्तम प्रतिदर्श के अपेक्षित गुण (Requisites of a Good Sampling Method) :

किसी प्रतिदर्शन विधि को एक उत्तम प्रतिदर्शन विधि कहलाने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें अन्य बातों के अलावा निम्न दो गुण अवश्य हो –

4.8.1 प्रतिनिधित्वता (Representativeness) –

किसी भी प्रतिदर्शन प्रविधि का एक प्रमुख अपेक्षित गुण यह है कि उससे तैयार किया गया प्रतिदर्श का स्वरूप प्रतिनिधिक (reprsentative) हो। एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श से तात्पर्य वैसे प्रतिदश से होता है जिनमें उन सभी गुण या विशेषताओं की झलक मिलती है तो उस जीवसंख्या में होते हैं जिनमें उनका चयन किया गया था।

2. पर्याप्तता –

एक उत्ततम प्रतिदर्शन की एक विशेषता यह भी है कि उसका आकार (size) पर्याप्त हो। आकार पर्याप्त (adequate) होने से तात्पर्य यह है कि उसमें विशेषताओं की संख्या यथासम्भव अधिक हो। प्रतिदर्श का आकार बड़ा रहने से

प्रतिदर्श त्रुटि (Sample Error) की सभावना कम हो जाती है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि प्रतिदर्श के आकार तथा प्रतिदर्शन त्रुटि में नकारात्मक सम्बन्ध (Negative Relationship)होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जैसे जैसे प्रतिदर्श का आकार बढ़ता जाता है वैसे वैसे त्रुटि की संख्या कम होती जाती है।

4.9 प्रतिदर्श को दोषपूर्ण बनाने वाले घटक (Factors Making Defective Sample) :

प्रतिदर्श से प्राप्त वर्णनात्मक सांख्यिकी (descriptive statistic) का समष्टिज (Parameter) से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न होना दोष है। इस दोष के दो कारण होते हैं :

(अ) प्रतिदर्शीय त्रुटि (Sampling Error) और

(ब) अप्रतिदर्शीय त्रुटि (Non Sampling Error)

4.9.1 प्रतिदर्शीय त्रुटि (Sampling Error) -

यह त्रुटि प्रतिदर्शन के कारण उत्पन्न होती हैं। संभाव्यता प्रतिदर्शन (Probability Sampling) में इसे सांख्यिकी की सहायता से अनुमानित किया जा सकता है। अतः यह त्रुटि चिन्ताजनक नहीं है।

4.9.2 अप्रतिदर्शीय त्रुटि (Non-Sampling Error) –

यह त्रुटि पक्षपात पूर्ण प्रतिदर्शन (biased Sampling) के कारण उत्पन्न होती है। दूसरे स्थान पर अप्रतिदर्शीय त्रुटि का कारण मापन में की जाने वाली त्रुटि से है। यह त्रुटि मापने के लिये प्रयुक्त उपकरण में विश्वसनीयता एवं वैद्यता की कमी के कारण हो सकती है। इसके अतिरिक्त अप्रतिदर्शीय त्रुटि का तीसरा कारण–ऑकड़ों को लिखने व्यवस्थित करने एवं विश्लेषित करने में हुयी त्रुटि एवं कमी से है। कभी –कभी हम ऑकड़ो का ठीक से सम्पादन नहीं कर पाते जिससे परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि अनुसन्धान में प्रतिदर्शन बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है। क्योंकि इसी प्रक्रिया पर शोध के परिणाम की शुद्धता एवं व्यापकता निर्भर होती है । अतः इसे अत्यन्त सावधानी के साथ किया जाना परमावश्यक है।

4.10 अध्याय सारांश :

जीवसंख्या से तात्पर्य व्यक्तियों की ऐसी संख्याओं के संग्रहण से होता है जिसे किसी विशेषता या गुण के आधार परिभाषित किया गया हो। यह परिमित भी हो सकती है एवं अपरिमित भी। पूरी जीवसंख्या के अध्ययन से प्राप्त मान को प्राचल (Parameter) कहा जाता है। शोधकर्ता सामान्यतः पूरी जनसंख्या का

अध्ययन नहीं करता बल्कि उससे कुछ इकाइयों का चयन करके उनका ही अध्ययन करता है। चयनित इकाइयों के प्रतिदर्श एवं चयन की इस प्रक्रिया को प्रतिदर्शन कहते हैं । प्रतिदर्श के आधार पर प्राप्त मान को सांख्यिकी (Statistics) कहा जाता है।

प्रतिदर्शन के मुख्य दो प्रकार हैं –

संभाविता प्रतिदर्शन एवं असंभाविता प्रतिदर्शन ।

संभाविता प्रतिदर्शन के मुख्य तीन प्रकार है– साधारण यादषच्छिक प्रतिदर्शन, गुच्छ प्रतिदर्शन, एवं स्तरित यादषच्छिक प्रतिदर्शन।

असंभाविता प्रतिदर्शन के भी कई प्रकार है, जिसमें कोटा प्रतिदर्शन, उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन, क्रमबद्ध प्रतिदर्शन, आदि प्रमुख है।

प्रतिदर्शन में ध्यान रखने योग्य बातें जैसे जीवसंख्या का आकार, प्रतिदर्शन की लागत, एवं जीवसंख्या में सदस्यों की उपलब्धता के साथ साथ प्रतिदर्शन के उपयोग यथा खर्च में कमी, दक्षता में वषद्धि, परिणाम की शुद्धता पर भी चर्चा की गयी है।

एक उत्तम प्रतिदर्शन के अपेक्षित गुण प्रतिनिधित्वा एंव पर्याप्तता पर भी प्रकाश डाला गया है और प्रतिदर्श को दोषपूर्ण बनाने वाले घटक प्रतिदर्शीय एवं अप्रतिदर्शीय त्रुटि के बारे में भी समुचित जानकारी दी गयी है।

4.11 अध्याय प्रश्न :

1. प्रतिदर्श से आप क्या समझते हैं ?
2. जीवसंख्या तथा प्रतिदर्शन में क्या अंतर है ? बतलाइये ।
3. प्रतिदर्शन करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिये?
4. शोध में प्रतिदर्शन क्यों आवश्यक है ?
5. प्रतिदर्शन के प्रकार का वर्णन करें ।
6. न्यादर्श तथा प्रतिदर्श में अन्तर बतलाइये ।
7. प्रतिदर्शन के चयन में ध्यान रखने योग्य बातें बतलाइये ।
8. एक उत्तम प्रतिदर्शन के कौन–कौन से अपेक्षित गुण हैं ?
9. संभाविता प्रतिदर्शन क्या है ?
10. प्रतिदर्शन को दोषपूर्ण बनाने वाले घटक को स्पष्ट करें।
11. **शोध में प्रतिदर्शन क्यों आवश्यक है ?**

42

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

बेस्ट, जॉन डब्लू	रिसर्च इन एजूकेशन, प्रिन्टिस हॉल आफ इण्डिया प्रा0लि0, नई दिल्ली, 1995।
भटनागर, आर0पी0	शिक्षा अनुसन्धान, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2003।
कौल लोकेश	शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2005।
सिंह, अरूण कुमार	मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ 2002, मोतीलाल बनारसी दास , दिल्ली, 2002।

http://en.wikipedia.org/wiki/population.

http://en.wikipedia.org/wiki/universe.

43

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University

MSW-105

शोध विधियां तथा सांख्यिकी

खण्ड

2

अनुसन्धान के प्रकार

इकाई– 5

ऐतिहासिक अनुसन्धान 49

इकाई– 6

वर्णनात्मक अनुसन्धान 57

इकाई– 7

प्रयोगात्मक अनुसन्धान 67

इकाई– 8

गुणात्मक अनुसन्धान 84

परामर्श समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता -कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 एस0 सी0 अग्रवाल	शिक्षाशास्त्र विभाग, सी0एस0जे0एम0, विश्वविद्यालय, कानपुर

लेखक

डॉ0 प्रदीप कुमार पाण्डेय	उपनिदेशक/ उपाचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक–कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

शोध विधियाँ तथा सांख्यिकी

खण्ड-1 शोध का अर्थ, आवश्यकता, समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इकाई-01 शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता

इकाई-02 शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

इकाई-03 शोध परिकल्पना

इकाई-04 शोध प्रतिचयन एवं आंकड़ों का प्रतिचयन

खण्ड-2 अनुसन्धान के प्रकार

इकाई-05 ऐतिहासिक अनुसन्धान

इकाई-06 वर्णनात्मक अनुसन्धान

इकाई-07 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

इकाई-08 गुणात्मक अनुसन्धान

खण्ड-3 आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

इकाई-09 परीक्षण

इकाई-10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ

इकाई-11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति-अध्ययन विधि

इकाई-12 समाजमिति प्रविधि

खण्ड-4 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इकाई-13 केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें

इकाई-14 सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र

इकाई-15 सांख्यिकी अनुमान का आधार, टी-परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

इकाई-16 अप्राचलिक सांख्यिकी

खण्ड- परिचय -2 : अनुसन्धान के प्रकार

खण्ड-2 में अनुसन्धानों के विभिन्न प्रकारों को चार इकाइयों में स्पष्ट किया गया है। इकाई-05 में ऐतिहासिक अनुसन्धान, इकाई-06 में वर्णनात्मक अनुसन्धान, इकाई-07 में प्रयोगात्मक अनुसन्धान तथा इकाई-08 में गुणात्मक अनुसन्धान की चर्चा की गई है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान में ऐतिहासिक समस्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। इस अनुसन्धान का मूल उद्देश्य अतीत के आधार पर वर्तमान को समझना तथा तदनुसार भविष्य को बनाना होता है। ऐतिहासिक अनुसन्धान में ऐतिहासिक साक्ष्यों की आवश्यकता पड़ती है, जो मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं - प्राथमिक स्रोत एवं गौण स्रोत। इस खण्ड की पंचन इकाई में ऐतिहासिक अनुसन्धान के उद्देश्य, पद, स्रोत क्षेत्र एवं महत्व आदि का विवेचन किया गया है।

इस खण्ड की षष्ठ इकाई में वर्णनात्मक अनुसन्धान के अर्थ, उद्देश्य, पद एवं विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गयी है। वर्णनात्मक अनुसन्धान में वर्तमान घटनाक्रमों का अध्ययन किया जाता है। वर्णनात्मक अनुसन्धान की तीन भागों में बाँटा जा सकता है- सर्वेक्षण अध्ययन, अन्तर सम्बन्धों का अध्ययन तथा विकासात्मक अध्ययन।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान की एक प्रमुख विधि है। इस प्रकार के अनुसन्धान में कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान में नियन्त्रण, जोड़-तोड़, अवलोकन तथा पुनरावृत्ति प्रमुख विशेषतायें होती हैं। इस प्रकार के अनुसन्धान में प्रायोगिक अभिकल्प का चुनाव एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। खण्ड-2 की सप्तम इकाई में प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषतायें, उनमें प्रयुक्त होने वाले चर, विभिन्न प्रकार के अभिकल्प, अभिकल्प चयन की कसौटियों आदि का वर्णन किया गया है।

इस खण्ड की अष्टम इकाई में गुणात्मक अनुसन्धान का अर्थ, विशेषतायें, उद्देश्य, प्रसंग, महत्व प्रदत्त संग्रह के उपकरण एवं गुणात्मक प्रदत्त विश्लेषण की तकनीकों की विवेचना की गई है। गुणात्मक अनुसन्धान के लिये विभिन्न पदों का प्रयोग किया जाता है, जैसे-नृ-शास्त्र शोध, व्यक्ति अध्ययन शोध, घटना-क्रिया विज्ञान पर शोध, संरचनावाद तथा सहभागी प्रेक्षण आदि। यह गहनतापूर्वक किया जाने वाला एक ऐसा व्यवस्थित प्रक्रियाओं वाला अनुसन्धान है जिसमें गुणात्मक प्रदत्त संकलन की विधियों का प्रयोग क परिकल्पनात्मक निष्कर्षों को मात्रात्मक या गुणात्मक रूप में प्राप्त किया जाता है तथा जिसका सम्बन्ध वर्तमान गोचर से होता है।

इकाई –05 ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 ऐतिहासिक अनुसन्धान के उद्देश्य

- 5.3.1 ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रद
- 5.3.2 ऐतिहासिक साक्ष्यों के स्रोत
- 5.3.3 प्राथमिक स्रोत
- 5.3.4 गौण स्रोत

5.4 ऐतिहासिक साक्ष्यों की आलोचना

- (i) वाहय आलोचना
- (ii) आन्तरिक आलोचना

5.5 ऐतिहासिक अनुसन्धान का क्षेत्र

5.6 ऐतिहासिक अनुसन्धान का महत्व

- 5.6.1 अतीत के आधार पर वर्तमान का ज्ञान
- 5.6.2 पारिवर्तन की प्रकृति को समझने में सहायक
- 5.6.3 अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन
- 5.6.4 व्यवहारिक उपयोगिता

5.7 ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमायें और समस्यायें

5.8 अभ्यास प्रश्न

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

व्यापक एवं अपेक्षाकृत सामान्य पक्षों को दृष्टिगत रखकर ऐतिहासिक मानव जाति के अतीत का विश्वसनीय एवं अर्थपूर्ण अभिलेख है। सुदृढ़ एवं निकट अतीत के संदर्भ में शैक्षिक घटनाओं, संगठनों एवं आन्दोलनों की व्याख्या हेतु ऐतिहासिक विधि के उपयोग में सत्यों एवं सामान्यीकरण तक पहुचने के लिए एक विशेष प्रकार की प्रणाली को जन्म दिया । यह विधि अपने स्वरूप एवं प्रक्रियात्मक विलक्षणताओं के कारण अन्य सभी विधियों से भिन्नता रखती है। इसके तहत जिन सत्यों / तथ्यों का अन्वेषण मुख्य मुददा होता है वे अतीत से जुड़े होने के कारण अत्यन्त अमूर्त एवं चुनौती पूर्ण संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। ऐतिहासिक विधि के सफल अनुप्रयोग में शोधकर्ता की कल्पनाशीलता तथा धैर्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती

है। वैसे तो जीवन्त गोचर के रूप में घटनायें हमारी आंखों के सामने घटित होती है लेकिन उनके बारे में हमारा बोध एवं विशुद्ध रूप में व्याख्या कर सकने की सम्भावना पर्याप्त जोखिम पूर्ण रहती है। यह व्याख्या ऐतिहासिक अनुसन्धान में अत्यन्त सरल तथ्यों के आधार पर सम्भावित की जाती है। इस इकाई में हम लोग ऐतिहासिक अनुसन्धान के उद्देश्य, प्रक्रिया, क्षेत्र, महत्व, सीमायें एवं समस्यायें आदि का अध्ययन करेंगें।

5.2 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि के बारे में जान सकेंगे।
2. ऐतिहासिक अनुसन्धान के विभिन्न पदों से अवगत हो सकेंगे।
3. ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र को बता सकेंगे।
4. ऐतिहासिक अनुसन्धान के महत्व को जान सकेंगें।
5. ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमायें और समस्याओं को समझ सकेंगे।

ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि

ऐतिहासिक अनुसन्धान का सम्बन्ध भूतकाल से हैं। यह भविष्य को समझने के लिये भूत का विश्लेषण करता है।

जॉन डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार "ऐतिहासिक अनुसन्धान का सम्बन्ध ऐतिहासिक समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण से है। इसके विभिन्न पद भूत के सम्बन्ध में एक नयी सूझ पैदा करते है, जिसका सम्बन्ध वर्तमान और भविष्य से होता है।"

करलिंगर के अनुसार, " ऐतिहासिक अनुसन्धान का तर्क संगत अन्वेषण है। इसके द्वारा अतीत की सूचनाओं एवं सूचना सूत्रों के सम्बन्ध में प्रमाणों की वैधता का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाता है और परीक्षा किये गये प्रमाणों की सावधानीपूर्वक व्याख्या की जाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम ऐतिहासिक अनुसन्धान को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं –

"ऐतिहासिक अनुसन्धान अतीत की घटनाओं, विकास क्रमों तथा विगत अनुभूतियों का वैज्ञानिक अध्ययन या अन्वेषण है। इसके अन्तर्गत उन बातों या नियमों की खोज की जाती है जिन्होंने वर्तमान को एक विशेष रूप प्रदान किया है।"

5.3 ऐतिहासिक अनुसन्धान के उद्देश्य

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान का मूल उद्देश्य भूत के आधार पर वर्तमान को समझना एवं भविष्य के लिये सतर्क होना है।

2. ऐतिहासिक अनुसन्धान का उद्देश्य अतीत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध स्थापित कर वैज्ञानिकों की जिज्ञासा को शान्त करना है।

3. ऐतिहासिक अनुसन्धान का उद्देश्य अतीत के परिपेक्ष्य में वर्तमान घटनाक्रमों का अध्ययन कर भविष्य में इनकी सार्थकता को ज्ञात करना है।

5.3.1 ऐतिहासिक अनुसन्धान के पद

ऐतिहासिक अनुसन्धान जब वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जाता है तो उसमें निम्नलिखित पद सम्मिलित होते हैं –

1. समस्या का चुनाव और समस्या का सीमा निर्धारण।
2. परिकल्पना या परिकल्पनाओं का निर्माण।
3. तथ्यों का संग्रह और संग्रहित तथ्यों की प्रामाणिकता की जाँच।
4. तथ्य विश्लेषण के आधार पर परिकल्पनाओं की जाँच।
5. परिणामों की व्याख्या और विवेचना।

5.3.2 ऐतिहासिक साक्ष्यों के स्रोत

ऐतिहासिक साक्ष्यों के स्रोत मुख्यतः दो श्रेणियों में वर्गीकृत किये जाते है–

1. प्राथमिक स्रोत
2. गौण स्रोत

1. **प्राथमिक स्रोत** :– जब कोई अनुसन्धानकर्ता अध्ययन क्षेत्र में जाकर अध्ययन इकाईयों से स्वयं या अपने सहयोगी अनुसन्धानकर्ताओं के द्वारा सम्पर्क करके तथ्यों का संकलन करता है तो यह तथ्य संकलन का प्राथमिक स्रोत कहलाता है।

मौलिक अभिलेख जो किसी घटना या तथ्य के प्रंथम साक्षी होते हैं 'प्राथमिक स्रोत' कहलाते हैं। ये किसी भी ऐतिहासिक अनुसन्धान के ठोस आधार होते हैं।

प्राथमिक स्रोत किसी एक महत्वपूर्ण अवसर का मौलिक अभिलेख होता है, या एक प्रत्यक्षदर्शी द्वारा एक घटना का विवरण होता है या फिर किसी किसी संगठन की बैठक का विस्तृत विवरण होता है।

प्राथमिक स्रोत के उदाहरण – न्यायालयों के निर्णय, अधिकार पत्र, अनुमति पत्र, घोषणा पत्र, आत्म चरित्र वर्णन, दैनन्दिनी, कार्यालय सम्बन्धी अभिलेख, इश्तिहार, विज्ञापन पत्र, रसीदें, समाचार पत्र एवं पत्रिकायें आदि।

2. **गौण स्रोत** :– जब साक्ष्यो के प्रमुख स्रोत उपलब्ध नहीं होते है तब कुछ ऐतिहासिक अनुसन्धान अध्ययनों को आरम्भ करने एवं विधिवत ढ़ंग से कार्य करने के लिये इन साक्ष्यों की आवश्यकता होती है।

गौण स्रोत का लेखक घटना के समय उपस्थित नहीं होता है बल्कि वह केवल जो व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, उन्होनें क्या कहा? या क्या लिखा ? इसका उल्लेख व विवेचन करता है।

एक व्यक्ति जो ऐतिहासिक तथ्य के विषय में तात्कालिक घटना से सम्बन्धित व्यक्ति के मुँह से सुने–सुनाये वर्णन को अपने शब्दों में व्यक्त करता है ऐसे वर्णन को गौण स्रोत कहा जायेगा। इनमें यद्यपि सत्य का अंश रहता है किन्तु प्रथम साक्षी से द्वितीय श्रोता तक पहुॅचते –पहुॅचते वास्तविकता में कुछ परिवर्तन आ जाता है जिससे उसके दोषयुक्त होने की सम्भावना रहती है।

अधिकांश ऐतिहासिक पुस्तकें और विधाचक्रकोश गौण स्रोतों का उदाहरण है।

बोध प्रश्न –

1. ऐतिहासिक साक्ष्यों के दो स्रोत के नाम लिखिए ।

....

....

2. प्राथमिक स्रोत से क्या तात्पर्य है ?

....

....

5.4 ऐतिहासिक साक्ष्यों आलोचना (Critisimin of Historical)

ऐतिहासिक विधि में हम निरीक्षण की प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग नहीं कर सकते हैं क्योंकि जो हो चुका उसे दोहराया नही जा सकता है। अतः हमें साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। ऐतिहासिक अनुसन्धान में साक्ष्यों के संग्रह के साथ उसकी आलोचना या मूल्यांकन भी आवश्यक होता है जिससे यह पता चले कि किसे तथ्य माना जाये, किसे सम्भावित माना जाये और किस साक्ष्य को भ्रमपूर्ण माना जाये इस दृष्टि से हमें ऐतिहासिक व्रिधि में साक्ष्यों की आलोचना या मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। अतः साक्ष्यों की आलोचना का मूल्याकन स्रोत की सत्यता की पुष्टि तथा इसके तथ्यों की प्रामाणिकता की दोहरी विधि से सम्बन्धित है। ये क्रमशः (1). वाह्य आलोचना और (2) आन्तरिक आलोचना कहलाती है।

(1) वाह्य आलोचना (External Critiscism) :– वाह्य आलोचना का उद्देश्य साक्ष्यों के स्रोत की सत्यता की परख करना होता है कि आँकड़ों का स्रोत विश्वसनीय है या नहीं। इसका सम्बन्ध साक्ष्यों की मौलिकता निश्चित करने से है। वाह्य आलोचना के अंतर्गत साक्ष्यों के रूप, रंग, समय, स्थान तथा परिणाम की दृष्टि से यथार्थता की जाँच करते हैं। हम इसके अन्तर्गत यह देखते हैं कि जब साक्ष्य लिखा गया, जिस स्याही से लिखा गया, लिखने में जिस शैली का प्रयोग किया गया या जिस प्रकार की भाषा, लिपिं, हस्ताक्षर आदि प्रयुक्त हुए है, वे सभी तथ्य मौलिक घटना के समय उपस्थित थे या नहीं। यदि उपस्थित नही

थे, तो साक्ष्य नकली माना जायेगा।

उपरोक्त बातों के परीक्षण के लिये हम निम्न प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करते हैं –

1. लेखक कौन था तथा उसका चरित्र व व्यक्तित्व कैसा था ?
2. लेखक की सामान्य रिपोर्टर के रूप में योग्यता क्या पर्याप्त थी ?
3. सम्बन्धित घटना में उसकी रूचि कैसी थी ?
4. घटना का निरीक्षण उसने किस मनस्थिति से किया ?
5. घटना के कितने समय बाद प्रमाण लिखा गया ?
6. प्रमाण किसी प्रकार लिखा गया – स्मरण द्वारा, परामर्श द्वारा, देखकर या पूर्व–ड्राफ्टों को मिलाकर ?
7. लिखित प्रमाण अन्य प्रमाणों से कहाँ तक मिलता है ?

(2) **आन्तरिक आलोचना** – आन्तरिक आलोचना के अन्तर्गत हम स्रोत में निहित तथ्य या सूचना का मूल्यॉकन करते हैं। आन्तरिक आलोचना का उद्देश्य साक्ष्य ऑकड़ों की सत्यता या महत्व को सुनिश्चित करना होता है। अतः आन्तरिक आलोचना के अन्तर्गत हम विषय वस्तु की प्रमाणिकता व सत्यता की परख करते हैं। इसके लिये हम निम्न प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

1. क्या लेखक ने वर्णित घटना स्वयं देखी थी ?
2. क्या लेखक घटना के विश्वसनीय निरीक्षण हेतु सक्षम था ?
3. घटना के कितने दिन बाद लेखक ने उसे लिखा ?
4. क्या लेखक ऐसी स्थिति में तो नहीं था जिसमें उसे सत्य को छिपाना पड़ा हो ?
5. क्या लेखक धर्मिक, राजनैतिक, व जातीय पूर्व–धारणा से तो प्रभावित नहीं था ?
6. उसके लेख व अन्य लेखों में कितनी समानता है ?
7. क्या लेखक को तथ्य की जानकारी हेतु पर्याप्त अवसर मिला था ?
8. क्या लेखक ने साहित्य प्रवाह में सत्य को छिपाया तो नहीं है ?

इन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर ऐतिहासिक ऑकड़ो की आन्तरिक आलोचना के पश्चात ही अनुसन्धानकर्ता किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है।

5.5 ऐतिहासिक अनुसन्धान का क्षेत्र

वैसे तो ऐतिहासिक अनुसन्धान का क्षेत्र बहुत व्यापक है किन्तु संक्षेप में इसके क्षेत्र में निम्नलिखित को सम्मिलित कर सकते हैं –

1. बड़े शिक्षा शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के विचार ।
2. संस्थाओं द्वारा किये गये कार्य।
3. विभिन्न कालों में शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक विचारों के विकास की स्थिति।
4. एक विशेष प्रकार की विचारधारा का प्रभाव एव उसके स्रोत का अध्ययन।
5. शिक्षा के लिये संवैधानिक व्यवस्था का अध्ययन।

5.6 ऐतिहासिक अनुसन्धान का महत्व

जब कोई अनुसन्धानकर्ता अपनी अनुसन्धान समस्या का अध्ययन अतीत की घटनाओं के आधार पर करके यह जानना चाहता है कि समस्या का विकास किस प्रकार और क्यों हुआ है ? तब ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक अनुसन्धान के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं –

5.6.1 अतीत के आधार पर वर्तमान का ज्ञान –

ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर सामाजिक मूल्यों, अभिवृत्तियों और व्यवहार प्रतिमानों का अध्ययन करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि इनसे सम्बन्धित समस्यों अतीत से किस प्रकार जुड़ी है तथा यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि इनसे सम्बन्धित समस्याओं का विकास कैसे–कैसे और क्यों हुआ था ?

5.6.2 परिवर्तन की प्रकृति के समझने में सहायक –

समाजशास्त्र और समाज मनोविज्ञान में अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनमें परिवर्तन की प्रकृति को समझना आवश्यक होता है। जैसे सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन, औद्योगीकरण, नगरीकरण से सम्बन्धित समस्याओं की प्रकृति की विशेष रूप से परिवर्तन की प्रकृति को ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रयोग द्वारा ही समझा जा सकता है।

5.6.3 अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन –

व्यवहारपरक विज्ञानों में व्यवहार से सम्बन्धित अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनका क्रमिक विकास हुआ है। इन समस्याओं के वर्तमान स्वरूप पर अतीत का क्या प्रभाव पड़ा है ? इसका अध्ययन ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि द्वारा ही किया जा सकता है।

5.6.4 व्यवहारिक उपयोगिता –

यदि कोई अनुसन्धानकर्ता सामाजिक जीवन में सुधार से सम्बन्धित कोई कार्यक्रम या योजना लागू करना चाहता है तो वह ऐसी समस्याओं का ऐतिहासिक अनुसन्धान के आधार पर अध्ययन कर अतीत में की गयी गलतियों को सुधारा जा सकता है और वर्तमान में सुधार कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी ढ़ंग से लागू करने का प्रयास कर सकता है।

5.7 ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमायें और समस्यायें

वर्तमान वैज्ञानिक युग में ऐतिहासिक अनसुन्धान का महत्व सीमित ही है। आधुनिक युग में किसी समस्या के अध्ययन में कार्यकारण सम्बन्ध पर अधिक जोर दिया जाता है जिसका अध्ययन ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि द्वारा अधिक सशक्त ढ़ंग से नहीं किया जा सकता है केवल इसके द्वारा समस्या के संदर्भ में तथ्य एकत्रित करके कुछ विवेचना ही की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमाओं को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं–

1. **बिखरे तथ्य** – यह ऐतिहासिक अनुसन्धान की एक बड़ी समस्या है कि समस्या से सम्बन्धित साक्ष्य या तथ्य एक स्थान पर प्राप्त नहीं होते हैं इसके लिये अनुसन्धानकर्ता को दर्जनों संस्थाओं और पुस्तकालयों में जाना पड़ता है। कभी–कभी समस्या से सम्बन्धित पुस्तकें, लेख, शोधपत्र–पत्रिकायें, बहुत पुरानी होने पर इसके कुछ भाग नष्ट हो जाने के कारण ये सभी आशिक रूप से ही उपलब्ध हो पाते हैं ।

2. **प्रलेखों का त्रुटिपूर्ण रखरखाव** – पुस्तकालयों तथा अनेक संस्थाओं में कभी प्रलेख क्रम में नही होते है तो कभी प्रलेख दीमक व चूहो के कारण कटे–फटे मिलते हैं ऐसे में ऐतिहासिक अनुसन्धानकर्ता को बहुत कठिनाई होती है।

3. **वस्तुनिष्ठता की समस्या** – ऐतिहासिक अनुसन्धान में तथ्यों और साक्ष्यों, का संग्रह अध्ययनकर्ता के पक्षपातों, अभिवृत्तियों, मतों और व्यक्तिगत विचारधाराओं से प्रभावित हो जाता है जिससे परिणामों की विश्वसनीयता और वैधता संदेह के घेरे में रहती है।

4. **सीमित उपयोग** – ऐतिहासिक अनुसन्धान का प्रयोग उन्हीं समस्याओं के अध्ययन मे हो सकता हैं जिनके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित प्रलेख, पाण्डुलिपियाँ अथवा ऑकड़ो, या तथ्यों से सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध हो। अन्यथा की स्थिति में ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता है।

बोध प्रश्न –

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमाओ के नाम लिखिये ।

....

....

....

....

....

5.8 अभ्यास प्रश्न

प्र0– ऐतिहासिक अनुसन्धान से आप क्या समझते हैं ? ऐतिहासिक अनुसन्ध ाान के पद को स्पष्ट कीजिए ।

प्र0– ऐतिहासिक साक्ष्यों के स्रोत की विवेचना कीजिए।

प्र0– प्राथमिक स्रोत एवं गौण स्रोत के अनतर को स्पष्ट कीजिए।

प्र0– ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र को बताइयें।

प्र0– ऐतिहासिक अनुसन्धान की उपयोगिता क्या है ?

प्र0– ऐतिहासिक आलोचना की विवेचना कीजिए।

प्र0– ऐतिहासिक अनुसन्धान की सीमाएं और समस्याएं समझायें।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेस्ट, जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल, नई दिल्ली, 1997।

सिंह, अरूण कुमार : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली– 2007।

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, 2005।

भटनागर, आर0पी0 : शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

राय, पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, नवरंग ऑफसेट प्रिन्टर्स, आगरा, 2002

इकाई –06 वर्णनात्मक अनुसंधान

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 वर्णनात्मक अनुसन्धान

6.4 वर्णनात्मक अनुसन्धान के उद्देश्य

6.5 वर्णनात्मक अनुसन्धान के पद

6.6 वर्णनात्मक अनुसन्धान के प्रकार

6.7 सर्वेक्षण अध्ययन के प्रकार

6.8 अन्तर सम्बन्धों का अध्ययन

6.9 विकासात्मक अध्ययन

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

शैक्षिक शोध के अन्तर्गत वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का बहुतायत से प्रयोग होता है। इसे मानवीय सर्वेक्षण के नाम से भी पुकारा जाता है। इनका प्रमुख मुद्दा वर्तमान घटनाक्रमों का अध्ययन करना है। अर्थात वर्तमान घटनाक्रमों के विभिन्न पक्षों का विवरण देना इस प्रकार के शोधों को पूरा करने का निहित उद्देश्य है। उपलब्ध परिस्थितियों या दशाओं की प्रकृति का पता लगाना या वर्तमान परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से मानकों को निश्चित करना या विशेष प्रकार की घटनाओं, गोचरों के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों को निर्धारित करना इस विधि के क्षेत्र में ही आता है। इस विधि में यह ध्यान देना होगा कि वर्णनात्मक सर्वेक्षण की विधि अपनी जटिलता की स्तर की दृष्टि से अन्य शोध विधियों से भिन्नता रखती है तथा इसके तहत साधारण आवृत्ति या परिगणना से लेकर अत्यन्त अर्न्तनिहित सम्बन्धात्मक विश्लेषणों से युक्त अध्ययन सम्पन्न होते है। इस विधि का अनुप्रयोग ऐसी परिस्थिति में किया जाता है जिसमें समस्या समाधान प्राप्त करना मुख्य ध्येय होता है। इस इकाई के अन्तर्गत वर्णनात्मक अनुसन्धान की प्रक्रिया उद्देश्य, प्रकार एवं अन्तर सम्बन्धों आदि का अध्ययन किया जा सकेगा।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से अधिगमकर्त्ता

1. वर्णनात्मक अनुसन्धान उद्देश्य के बारे में जान सकेंगे।
2. वर्णनात्मक अनुसन्धान के विभिन्न पदों से अवगत हो सकेंगे।

3. वर्णनात्मक अनुसन्धान के प्रकार को बता सकेंगे।
4. अन्तर सम्बन्धों के अध्ययन को समझ सकेंगे।

6.3 वर्णनात्मक अनुसन्धान

शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में वर्णनात्मक अनुसन्धान का महत्व बहुत अधिक है इस विधि का प्रयोग शिक्षा व मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यापक रूप से होता है।

जॉन डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार "वर्णनात्मक अनुसन्धान 'क्या है' का वर्णन एवं विश्लेषण करता है। परिस्थितियाँ अथवा सम्बन्ध जो वास्तव में वर्तमान है, अभ्यास जो चालू है, विश्वास, विचारधारा अथवा अभिवृत्तियाँ जो पायी जा रहीं है, प्रक्रियायें जो चल रही है, अनुभव जो प्राप्त किये जा रहे हैं अथवा नयी दिशायें जो विकसित हो रही है, उन्हीं से इसका सम्बन्ध है।"

वर्णनात्मक अनुसन्धान का प्रयोग निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने में होता है-- वर्तमान स्थिति क्या है ? इस विषय की वर्तमान स्थिति क्या है?

वर्णनात्मक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य वर्तमान दशाओं, क्रियाओं, अभिवृत्तियों तथा स्थिति के विषय को ज्ञान प्राप्त करना है। वर्णनात्मक अनुसन्धानकर्ता समस्या से सम्बन्धित केवल तथ्यों को एकत्र ही नहीं करता है बल्कि वह समस्या से सम्बन्धित विभिन्न चरों में आपसी सम्बन्ध ढूँढ़ने का प्रयास करता है साथ ही भविष्यवाणी भी करता है।

6.4 वर्णनात्मक अनुसन्धान के उद्देश्य

1. वर्तमान स्थिति का स्पष्टीकरण करना तथा भावी नियोजन एवं सम्बन्धित परिवर्तन में सहायता करना।
2. भावी अनुसन्धान के प्राथमिक अध्ययन में सहायता करना जिससे अनुसन्धान को अधिक नियंत्रित, वस्तुनिष्ठ एवं प्रभावी बनाया जा सके।

6.5 वर्णनात्मक अनुसन्धान के पद

डेविड फोक्स के अनुसार वर्णनात्मक अनुसन्धान के निम्न लिखित पद है :

1. अनुसन्धान--समस्या के कथन को स्पष्ट करना।
2. यह सुनिश्चित करना कि समस्या सर्वेक्षण अनुसन्धान के उपयुक्त है।
3. उचित प्रकार की सर्वेक्षण विधि का चुनाव करना।
4. उद्देश्यों को निर्धारित करना।
5. यह सुनिश्चित करना कि --
   1 ऑकड़े प्राप्त करने के उपकरण उपलब्ध है।

2. यह उपकरण समय पर तैयार या उपलब्ध हो सकते हैं।

3. यह उपकरण न तो है और न ही तैयार किये जा सकते हैं।

6 प्रस्तावित सर्वेक्षण की सफलता का पूर्वानुमान लगाना।

7 अनुसन्धान के प्रतिनिधिकारी न्यायदर्श का चुनाव करना।

8. न्यायदर्श, उपकरण आदि को ध्यान में रखते हुए सर्वेक्षण की सफलता का अन्तिम पूर्वानुमान लगाना।

9. ऑकड़े प्राप्त करने का अभिकल्प तैयार करना।

10. आँकड़ों का संग्रह करना।

11. आँकड़ों का विश्लेषण करना।

12. प्रतिवेदन तैयार करना –

1. वर्णनात्मक पक्ष

2. तुलनात्मक अथवा मूल्यांकन पक्ष

3. निष्कर्ष।

6.6 वर्णनात्मक अनुसन्धान के प्रकार

विभिन्न लेखकों ने वर्णनात्मक अनुसन्धान को कई प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है जिसमें वान डैलेन द्वारा दिया गया वर्गीकरण अधिक मान्य हैं उनके अनुसार वर्णनात्मक अनुसन्धान को निम्नलिखित 3 मुख्य भागों में बॉटा गया है :–

1. सर्वेक्षण अध्ययन

2. अन्तर सम्बन्धों का अध्ययन

3. विकासात्मक अध्ययन

1. सर्वेक्षण अध्ययन– शब्द सर्वेक्षण (Servey) की उत्पत्ति शब्दों 'Sur' या 'Sor' तथा Veeir या 'Veior' से हुई है जिसका अर्थ क्रमश 'ऊपर से' और 'देखना' होता है। सामान्यतः सर्वेक्षण 'वर्तमान में क्या रूप है?' इससे सम्बन्धित है वर्तमान में क्या स्वरूप है ? इसकी व्याख्या एवं विवेचना करता है इसका सम्बन्ध परिस्थितियां या सम्बन्ध जो वास्तव में वर्तमान है, कार्य जो रहा है प्रक्रिया जो चल रही है, से होता है।

सर्वेक्षण अध्ययन के द्वारा हम तीन प्रकार की सूचनाएं प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

1. वर्तमान स्थिति क्या है ? अथवा वर्तमान स्तर का निर्धारण,

2. हम क्या चाहते हैं? अथवा वर्तमान स्तर और मान्य स्तर में तुलना,

3. हम उन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? अथवा वर्तमान स्तर का विकास करना।

6.7 सर्वेक्षण अध्ययन के प्रकार

सर्वेक्षण अध्ययन अनेक प्रकार का हो सकता है जिनके मुख्य प्रकार निम्नलिखित है :–

1. विद्यालय सर्वेक्षण
2. कार्य विश्लेषण
3. प्रलेखी विश्लेषण
4. जनमत सर्वेक्षण
5. समुदाय सर्वेक्षण

1. विद्यालय सर्वेक्षण – इसके अन्तर्गत प्राप्त सूचना के आधार पर विद्यालयों की क्षमता और प्रभावशीलता का विकास करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में निम्नलिखित प्रमुख उपकरणों का प्रयोग किया जाता है–

1. निरीक्षण 2. प्रश्नावली 3. साक्षात्कार

4. मानक परीक्षण 5. प्राप्तांक पत्र 6. मूल्यांकन मापदण्ड

इनसे प्राप्त ऑकड़ो के आधार पर अनेक प्रशासकीय, आर्थिक तथा पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुधार किये जाते हैं ।

2. कार्य विश्लेषण :– कार्य विश्लेषण द्वारा :

1. कार्यकर्ताओं की कार्य–पद्धति, कमजोरियों व अक्षमताओं को पहचाना जाता है।
2. मानवशक्ति के सर्वोत्तम सदुपयोग की दृष्टि से कार्य–वितरण समुचित ढ़ंग से किया जाता है।
3. विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व तथा कौशल हेतु वेतन तथा भत्ते को निर्धारण किया जाता है।
4. सेवाकालीन एवं भावी कार्यकर्ताओं के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम व शैक्षिक सामग्री का निर्माण किया जाता है।
5. प्रशासनिक संगठन व क्रिया के बेहतर संचालन के लिये आवश्यक रूप रेखा का निर्माण किया जाता है।

अतः कार्य–विश्लेषण द्वारा कार्यकर्ताओं की सेवाओ में उनकी वर्तमान स्थिति को तथा उनकी कमजोरियों को जानकर उसे सुधारने का प्रयास किया जाता है।

3. प्रलेखी विश्लेषण – प्रलेखी विश्लेषण अनुसन्धानकर्ता के लिये ऑकड़े प्राप्त करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसे कभी–कभी विषय वस्तु विश्लेषण, क्रिया अथवा सूचनात्मक विश्लेषण भी कहा जाता है।

प्रलेखी विश्लेषण के अंतर्गत भूतकालीन व वर्तमान अभिलेखों का विश्लेषण

किया जाता है। यह प्रलेख लेख कहानी, उपन्यास, कविता, टी0वी0कथानक आदि कुछ भी हो सकता है।

प्रलेखी विश्लेषण के द्वारा व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक दशाओं, मूल्यों, रूचियों, अभिवृत्तियों, तथा पक्षपातों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा प्रलेखी विश्लेषण द्वारा विद्यालय, व्यक्ति व समाज की कमजोरियों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह विद्यालय तथा समाज की विशिष्ट अवस्थाओं तथा क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होता है।

4. जनमत सर्वेक्षण – औद्योगिक, राजनीतिक, शैक्षिक, तथा अन्य क्षेत्र में सफल होने के लिये नेताओं को अनेक निर्णय लेने होते हैं। ये नेता किसी अनुमान अथवा दबाव में आकर निर्णय लेने की जगह जनमत को ध्यान में रखकर निर्णय लेना पसन्द करते हैं। जनमत संग्रह के द्वारा राजनैतिक नेता यह जानने का प्रयास करते हैं कि किसी कार्यक्रम विशेष के प्रति जनता का रूख क्या है? इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में जनमत संग्रह के द्वारा विद्यालय की क्रियाओं के प्रति जनता के रूख में जानने का प्रयास किया जाता है। जनमत सर्वेक्षण में उपकरण के रूप में प्रायः प्रश्नावली तथा साक्षात्कार का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। जनमत सर्वेक्षण के परिणाम विश्वसनीय व वैध होने के लिये न्यायदर्श का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिये। यह जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिये। साथ ही संख्या में पर्याप्त व इसे व्यापक रूप से चुना होना चाहिये तथा इसका चुनाव पक्षपता रहित ढंग से होना चाहिये। तभी विभिन्न क्षेत्रों मे चल रहे कार्यकमों की कमियों को पहचान कर उसे प्रभावी ढ़ंग से लागू किया जा सकता है।

5. समुदाय सर्वेक्षण – इसे सामाजिक सर्वेक्षण या क्षेत्रीय सर्वेक्षण भी कहा जाता है। यह किसी विशेष अवस्था का सर्वेक्षण हो सकता है जैसे स्वास्थ–सेवाओं का सर्वेक्षण, काल–अपराध का सर्वेक्षण आदि इसके अलावा यह समाज के किसी विशेष अंग से सम्बन्धित हो सकता है। जैसे हरिजनों, पिछड़ी जातियों की समस्याओं से सम्बन्धित सर्वेक्षण /समुदाय सर्वेक्षण के द्वारा समुदाय के सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तथ्यों का अध्ययन किया जाता है । जैसे–

(1) इतिहास – किसी समुदाय विशेष के उदय व विकास की कहानी क्या है ? तथा किन परिस्थितियों में , किसके नेतृत्व में किसी प्रकार व किन कारणों से क्या–क्या परिवर्तन आये हैं यह जानने का प्रयास किया जाता है।

(2) भौगोलिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ – इसके अन्तर्गत हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि किस प्रकार विभिन्न भौगोलिक व आर्थिक परिस्थितयां समाज को प्रभावित कर रही हैं।

(3) सरकार व कानून – इसके द्वारा हम देखते हैं कि किस प्रकार राजकीय व्यवस्था व कानून किस रूप में समाज को प्रभावित कर रहे हैं ?

(4) जनसंख्या – आयु, लिंग, जाति, रंग, शिक्षा, पेशा, भाषा आदि की दृष्टि से जनसंख्या कैसी है, कितनी है, जन्म व मृत्यु दर क्या है तथा यह किस प्रकार समाज को तथा किन रूपों में प्रभावित कर रही है ?

समुदाय–सर्वेक्षण में उपकरण के रूप में प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा प्रत्यक्ष निरीक्षण एवं सांख्यिकी विधियों का प्रयोग कर विभिन्न अधिकारियों, सामाजिक संस्थाओं, बालकों, शिक्षकों तथा विभिन्न अभिलेखों से आंकड़े प्राप्त किये जाते हैं।

बोध प्रश्न –

1. विद्यालय सर्वेक्षण से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

2. समुदाय सर्वेक्षण को प्रभावित करने वाले कौन–कौन से कारण है ?

....

....

....

6.8 अन्तर सम्बन्धों का अध्ययन

इसमें अनुसन्धानकर्ता केवल वर्तमान स्थिति का सर्वेक्षण ही नहीं करता है बल्कि उन तत्वों को ढूंढने का प्रयास भी करता है जो घटनाओं के सम्बन्ध के विषय में सूझ प्रदान कर सके।

अन्तर–सम्बन्धों के अध्ययन मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं :–

1. व्यक्ति अध्ययन (Case Study)
2. कार्य–कारण तुलनात्मक अध्ययन (Causal - Comparative Study)
3. सह–सम्बन्धात्मक अध्ययन (Correlational Study)

1. व्यक्ति अध्ययन (Case Study) –

इसके अन्तर्गत किसी सामाजिक इकाई एक व्यक्ति, परिवार समूह, सामाजिक संस्था अथवा समुदाय का गहन अध्ययन किया जाता है। इसमें किसी सामाजिक इकाई को प्रभावित करने वाली भूतकालीन घटनाओं अथवा अनुभूतियों, वर्तमान स्थिति एवं वातावरण के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्र किये जाते हैं। व्यक्ति अध्ययन सामाजिक कार्यकर्ता या अनुसन्धानकर्ता किसी विशेष परिस्थिति का निदान करने व उसके उपचार का सुझाव देने की दृष्टि से किया जाता है। इसके अन्तर्गत सामान्य की अपेक्षा असामान्य व्यक्ति अथवा इकाई के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। व्यक्ति अध्ययन में प्रायः निम्नलिखित स्रोतों का प्रयोग किया जाता है–

क. व्यक्तिगत आलेख – आत्मकथायें, डायरी व पत्र व स्वीकारोक्तियाँ आदि ।

ख. सम्बन्धित व्यक्ति – माता–पिता, पड़ोसी, मित्र, अध्यापक, रिश्ते–नातेदार आदि।

ग. जीवनवृत्त आलेख (Life History)– यह व्यक्ति के जीवन की उन घटनाओं का आलेख होता है जो उससे सीधे सम्बन्धित होते हैं।

घ. राजकीय आलेख – विद्यालय प्रमाण, पुलिस व न्यायालय रिकार्ड आदि।

व्यक्ति अध्ययन में प्रयुक्त कुछ प्रमुख उपकरण निम्नलिखित है–

1. निरीक्षण विधि 2. साक्षात्कार विधि 3. साक्षात्कार अनुसूची
4. प्रश्नावली विधि 5. मनोवैज्ञानिक परीक्षण 6. मुक्त साहचर्य
7. वैयक्तिक अध्ययन तथ्य प्रपत्र आदि।

2. कार्य–कारण तुलनात्मक अध्ययन (Causal- Comparative Study) -

इसे कार्योत्तर या घटनोत्तर अनुसन्धान के नाम से भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान को उसके कार्यकारण सम्बन्ध के आधार पर ढूँढते है तथा यह जानने का प्रयास करते हैं कि विशेष व्यवहार, परिस्थिति अथवा घटना के घटित होने से सम्बन्धित कारक कौन–कौन से हैं ?

कार्य–कारण तुलनात्मक अध्ययन विधि का प्रयोग उन शोध कार्यो के होता है जहाँ पर परीक्षण नहीं हो सकता है या नहीं किया जाना चाहिये। जैसे किशोरों के अपराधवृत्ति का अध्ययन, मोटर दुर्घटना का अध्ययन आदि।

यह विधि मुख्य रूप से इस धारणा पर आधारित है कि किसी घटना अथवा परिस्थिति के उत्पन्न होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है । यदि कारण उपस्थित है तो घटना अवश्य घटित होगी तथा यदि वह कारण अनुपस्थित है तो वह घटना नहीं घटेगी। इस धारणा को आधार बनाकर घटित घटना के निष्कर्ष को आधार बनाकर विश्लेषणात्मक एंव तुलनात्मक विधि से पीछे की ओर चलते हैं और कारणों को ज्ञात करते हैं।

3. सह–सम्बन्धात्मक अध्ययन – (Correlational Study) –

मोले के अनुसार–"सहसम्बन्ध दो चरों में सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए उनके विषय में भविष्य कथन भी करता है।" अतः यह दो या दो से अधिक चरों, घटनाओं या वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध के अध्ययन से सम्बन्धित है। कार्यकारण सम्बन्ध को समझने की दृष्टि से इस विधि का प्रयोग किया जाता है। जैसे यदि अनुसन्धानकर्ता शारीरिक और मानसिक विकास के सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहता है। तो वह सहसम्बन्ध शोध का प्रयोग करेगा। जब दो चरों में एक चर के बढ़ने से दूसरे चर में वृद्धि या घटाव हो तथा एक चर के घटाव से दूसरे चर में वृद्धि या घटाव हो, हम कहते है कि दोनो चरों में सह सम्बन्ध है।

सह सम्बन्ध मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं –

1. धनात्मक सहसम्बन्ध – जब एक चर के बढ़ने से दूसरे चर में भी वृद्धि हो अथवा एक चर के घटने से दूसरे चर में भी घटाव हो तो इस प्रकार का सहसम्बन्ध धनात्मक सहसम्बन्ध कहलाता है।

2. ऋणात्मक सहसम्बन्ध – जब एक चर में वृद्धि होने पर दूसरे चर में घटाव हो या एक चर में घटाव होने पर दूसरे चर में वृद्धि हो, तो इस प्रकार का सहसम्बन्ध ऋणात्मक सहसम्बन्ध कहलाता है।

3. शून्य सहसम्बन्ध – जब एक चर के घटाव या वृद्धि का दूसरे चर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, तो इसे शून्य सहसम्बन्ध कहा जाता है।

सह सम्बन्ध की मात्रा – सह सम्बन्ध का मान ± 1के मध्य ही होता है। शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में इसका मान पूर्ण धनात्मक (+1) या पूर्ण ऋणात्मक (–1) सामान्यतः प्राप्त नही होता है।

सह सम्बन्ध का प्रयोग अनुसन्धान में उपकरणों को तैयार करने, उसकी विश्वसनीयता तथा वैधता ज्ञान करने के लिये किया जाता है। इसके अलावा यह उपलब्ध ऑकड़ों के आधार पर यह शैक्षणिक सफलता की भविष्यवाणी किसी समूह के लिये करने में सक्षम है।

6.9 विकासात्मक अध्ययन

विकासात्मक अध्ययन केवल वर्तमान स्थिति एंव पारिस्परिक सम्बन्ध को ही स्पष्ट नहीं करता है बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि समय व्यतीत होने के साथ इनमें क्या परिवर्तन आये हैं ? इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता महीनों एवं वर्षो तक चरों के विकास का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत दो प्रकार के अध्ययन शामिल है–

(1) विकासात्मक अध्ययन

(2) उपनति अध्ययन

(1) विकासात्मक अध्ययन– यह अध्ययन मुख्यतः दो प्रकार से किया जा सकता है।

क. अनुदैर्घ्य अध्ययन

ख. प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन

क. अनुदैर्घ्य अध्ययन (Longitudinal Study) – इस प्रकार के अध्ययन में बालकों के विकास की स्थिति का अध्ययन थोड़े–थोड़े समय के अन्तर पर करते हैं। जैसे– एक समूह के बालकों का अनेक चरों से सहसम्बन्ध का अध्ययन 12, 13, 14, 15 और 16 वर्ष की आयु में करके रेखाचित प्रस्तुत करना।

ख. प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन (Cross-Sectional Study) – इसमें एक ही बालक अथवा समूह का वर्षों तक अध्ययन करने की जगह एक ही समय में विभिन्न आयु के बालकों का अध्ययन एक साथ करते हैं। जैसे–किसी चर के

सम्बन्ध में अध्ययन करने के लिये एक ही समय में एक साथ 12, 13, 14 और 15 वर्ष की आयु के बालकों को लेना।

वास्तव में अनुदैर्घ्य अध्ययन ही विकासात्मक अध्ययन की सर्वोत्तम विधि ा है किन्तु समय और श्रम की बचत के कारण प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन का प्रेयोग बहुतायत से होता है। इससे अनुसन्धानकर्ता अल्प समय में ही आवश्यक ऑकड़े जुटा सकने में सक्षम होता है।

(2) उपनति अध्ययन (Trend Study) – यह वास्तव में ऐतिहासिक अध्ययन अभिलेखी अध्ययन और सवेर्क्षण अनुसन्धान का मिश्रण है। इसके द्वारा –

क. सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ऑकड़ो की प्राप्ति की जाती है।

ख. इन ऑकड़ों के विश्लेषण द्वारा वर्तमान उपनति की व्याख्या और वर्णन किया जाता है।

ग. इसके आधार पर भविष्य में क्या होने वाला है। इसकी भविष्यवाणी की जाती है।

किसी भी नई नीति का निर्धारण करने व उसके नियोजन से पूर्व उपनति अध्ययन अवश्य करनी चाहिये। इसके अभाव में नीति की प्रभावशीलता घट सकती है। व्यक्तियों का रूझान किस ओर है? वर्तमान परिस्थितियॉ समाज को किधर ले जायेगी ? अगले 10 वर्ष में विधालयों में छात्रों की संख्या कितनी हो जायेगी ? इस प्रकार के अध्ययन उपनति अध्ययन कहे जाते हैं ।

अतः वर्णनात्मक अनुसन्धान में वर्तमान हालातों को रिकार्ड किया जाता है। साथ ही उनका वणंन व विश्लेषण भी किया जाता है तथा समुचित व्याख्या भी की जाती है। इस प्रकार के शोध अपरिचलित चरों (non-manipulation variable) के बीच के सम्बन्धों का साधारण का सामान्य परिस्थिति में विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार का शोध मुख्यतः 'क्या है' से सम्बन्धित है। यह इसी क्या है का वर्णन और व्याख्या करता है।

बोध प्रश्न –

1. सह सम्बन्ध के प्रकार बताइये।

....

....

....

2. शून्य सम्बन्ध से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

....

3. विकासात्मक अध्ययन के प्रकार के नाम लिखिए।

....

....

....

....

6.10 अभ्यास प्रश्न

प्र0 – वर्णनात्मक अनुसन्धान से आप क्या समझते हैं ?

प्र0 – वर्णनात्मक अनुसन्धान के पद की उपयोगिता बताइये।

प्र0 – वर्णनात्मक अनुसन्धान के प्रकार की विवेचना कीजिए।

प्र0 – सर्वेक्षण अध्ययन से आप क्या समझते हैं ?

प्र0 – अन्तर सम्बन्धों के अध्ययन एवं महत्व को बताइये।

प्र0 – विकासात्मक अध्ययन के प्रकार स्पष्ट कीजिए।

6.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेस्ट, जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल, नई दिल्ली, 1997।

सिंह, अरूण कु0 : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, 2007।

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, 2005।

भटनागर, आर0पी0 : शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

राय, पारसनाथ : अनुसंधान परिचय, नवरंग ऑफसेट प्रिन्टर्स, आगरा, 2002।

गुप्ता, एस0पी0 : आधुनिक मापन और मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010।

इकाई – 07 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

7.3.1 स्वतन्त्र चर

7.3.2 आश्रित चर

7.3.3 समाकलित चर

7.3.4 प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह

7.4 प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषताएं

7.4.1 नियन्त्रण

7.4.2 जोड़–तोड़

7.4.3 अवलोकन

7.4.4 पुनरावृत्ति

7.5 प्रयोगात्मक अभिकल्प

7.5.1 प्रयोगात्मक अभिकल्प प्रसरण नियन्त्रण प्रणाली के रूप में

7.5.2 प्रयोगात्मक प्रसरण को उच्चतम करना

7.5.3 त्रुटि प्रसरण को निम्नवत करना

7.5.4 वाहय चरों को नियन्त्रित करना

7.6 एक अच्छे प्रायोगिक अभिकल्प की कसौटी

7.6.1 उपयुक्तता

7.6.2 प्रर्याप्त नियन्त्रण

7.6.3 वैधता

7.6.4 आन्तरिक वैधता

7.7 प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकार

7.7.1 पूर्व–प्रायोगिक अभिकल्प

7.7.2 प्रायोगिक अभिकल्प

7.7.3 वास्तविक प्रायोगिक अभिकल्प

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्रश्नों का व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ एवं तार्किक दृष्टि से उत्तर प्राप्त करने का वह प्रयास है जिससे यह पता लग सके कि X चर में सावधानीपूर्वक नियन्त्रित परिस्थिति के संदर्भ में हेर–फेर लाया जाए तो चर Y पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस विधि को प्रायोगिक विधि के नाम से भी पुकारा जा सकता है। इसके अन्तर्गत दो चर निहित होते है। एक चर को निराश्रित चर अर्थात 'X' कहा जाता है जिससे उसमें शोधकर्ता हेर–फेर लाने के लिए स्वतन्त्र होता है, दूसरे चर को आश्रित चर अर्थात 'Y' कहा जाता है। जिसके जरिए निराश्रित चर में हेरफेर के प्रभाव का प्रेक्षण एवं मापन किया जाता है। यह सुनिश्चित करने के लिए चर X के अतिरिक्त अन्य कोई चर Y पर पड़े प्रभाव को दूषित न कर पाये तथा पूरी परिस्थिति को पर्याप्त नियन्यण में रखा जाता है। इस इकाई में प्रायोगिक अनुसन्धान विधि की प्रक्रिया, विशेषताओं, अभिकल्प एवं अभिकल्पों के प्रकारों का वर्णन किया गया है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. प्रयोगात्मक अनुसन्धान का अर्थ, चर एवं उनके प्रकारों के विषय में जान सकेंगे।
2. प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषताएं को समझ सकेंगे।
3. प्रयोगात्मक अभिकल्प के बारे में बता सकेंगे।
4. एक अच्छे प्रायोगिक अभिकल्प की कसौटी से अवगत हो सकेगे।
5. प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकार को जान सकेंगे।

7.3 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

प्रयोगात्मक अनुसन्धान, अनुसन्धान की एक प्रमुख विधि है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान में कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करने के लिये दो स्थित्तियों को संतुष्ट करना होता है। पहले तो यह सिद्ध करना होता है कि यदि कारण है तो उसका प्रभाव होगा। यह स्थिति आवश्यक है लेकिन पर्याप्त नहीं है। दूसरा हमें यह भी सिद्ध करना होता हैकि यदि कारण नहीं है तो प्रभाव भी नहीं होगा। यदि वही कारण न हो फिर भी प्रभाव हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रभाव का वह कारण नहीं है जो हम अपेक्षा कर रहे थे। प्रयोगात्मक अनुसन्धान में कारण की उपस्थिति प्रभाव को दिखाती है तथा कारण की अनुपस्थिति प्रभाव को नहीं दिखाती है। इन्ही दो स्थितियों को सन्तुष्ट करने के बाद हम सही कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं ।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान, जान स्टुआर्ट के "एकल चर के नियम" (Law of Single Variable) पर आधारित है। प्रयोगात्मक अनूसन्धान का आधार

"अन्तर की विधि (Method of Difference) है। इस विधि के अनुसार –

" यदि दो परिस्थितियां सभी दृष्टियों से समान है तथा यदि किसी चर को एक परिस्थिति में जोड़ दिया जाए तथा दूसरी स्थिति में नहीं जोड़ा जाए और यदि पहली परिस्थिति में कोई परिवर्तन दिखाई पड़े तो वह परिवर्तन उस चर के जोड़ने के कारण होगा। यदि किसी एक परिस्थिति में एक चर हटा लिया तथा दूसरी परिस्थिति में उस चर को न हटाए तब यदि पहली परिस्थिति में कोई परिवर्तन होगा तो वह उस चर के हटा लेने के कारण होगा।"

चर – प्रयोगात्मक अनुसन्धान में निम्नलिखित चरों का वर्णन किया जाता है–

7.3.1 स्वतन्त्र चर (Independent Variable) -

जिस चर में प्रयोगकर्ता परिवर्तन या जोड़–तोड़ करता है, उसे स्वतन्त्र चर कहा जाता है। स्वतन्त्र चर को 'कारण चर' (cause variable) भी कहा जाता है। इसे 'प्रभावित करने वाला चर' (Influencing variable) कहा जाता है क्योकि यह किसी दूसरे चर को प्रभावित करता है।

उदाहरण – पढ़ाने का तरीका, बुद्धि, अभिवृत्ति, व्यक्तित्व, प्रेरणा, आयु ।

स्वतन्त्र चर दो प्रकार के होते हैं –

1. संचालित चर (Treatment variable)
2. जैविक चर (organismic variable)

जिन चरों में शोधकर्ता द्वारा जोड़–तोड़ करना सम्भव होता है उसे संचालित चर कहते हैं, जैसे – पढ़ाने का तरीका, दण्ड, पुरस्कार आदि।

जिन चरों में शोधकर्ता द्वारा परिवर्तन सम्भव नहीं होता है उन्हें जैविक चर कहते हैं जैसे –बुद्धि, प्रजाति, आयु आदि।

7.3.2 आश्रित चर (Dependent Variable) –

स्वतन्त्र चर में जोड़–तोड़ के बाद उसका प्रभाव जिस चर पर देखा जाता है उसे आश्रित चर कहा जाता है। इसी कारण आश्रित चर को 'प्रभाव चर' (Effect Variable) कहा जाता है। आश्रित चर के अवलोकन के बाद उसकी रिकार्डिंग शोधकर्ता द्वारा की जाती है।

यदि पढ़ाने की विधि के प्रभाव का अध्ययन हम शैक्षिक उपस्थित पर करना चाहते हैं तथा दो या तीन भिन्न–भिन्न विधियों से बच्चों को पढ़ाया जाए तथा इसका प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर देखा जाए तो इस अध्ययन में 'पढ़ाने की विधि' एक स्वतन्त्र चर है तथा 'शैक्षिक उपलब्धि' एक आश्रित चर है।

7.3.3 समाकलित चर (Confounding Variable) -

किसी भी अध्ययन में स्वतन्‍ चर के अतिरिक्त ऐसे कुछ चर होते हैं तो आश्रित चर को प्रभावित करते हैं। स्ंवतन्त्र चर का प्रभाव हमें आश्रित चर पर

देखना होता है। चयनित स्वतन्त्र चर के अतिरिक्त सभी चर भी आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। इन चरों को समाकलित चर कहा जाता है। समाकलित चर दो प्रकार के होते हैं –

क. हस्तक्षेपी चर (Intervening Variable) – कुछ चर ऐसे होते हैं जिन्हें हम सीधे नियंत्रित नहीं कर सकते और न ही उनका मापन कर सकते हैं लेकिन उनकी उपस्थिति का आश्रित चर पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के चरों का उदाहरण –दुश्चिन्ता, प्रेरणा तथा थकान आदि है। इन चरों का अवलोकन तथा संक्रियात्मक परिभाषीकरण करना भी मुश्किल होता है लेकिन इनको अनदेखा नहीं किया जा सकता। उपयुक्त शोध–डिजाइन के प्रयोग द्वारा इन्हें हम नियन्त्रित कर सकते हैं।

ख. वाह्य चर (Extraneous Variable) – स्वतन्त्र चर का प्रभाव हम आश्रित चर पर देखते हैं। ऐसे चर जिनका अध्ययन हमे नहीं करना होता या शोध ाकर्ता जिनमें कोई जोड़–तोड़ नहीं करना उनका प्रभाव भी आश्रित चर पर पड़ता है। इसलिये ऐसे चरों को नियन्त्रित करना आवश्यक होता है। इन्हे ही वाह्य चर कहते हैं। वाह्य चरों पर नियन्त्रण कई विधियों से किया जाता है। वाहय चर अध ययन के परिणाम को प्रभावित करते हैं तथा यह स्वतन्त्र चर तथा आश्रित चर दोनो से सहसम्बन्धित होते हैं।

स्वतन्त्र चर – अध्यापक

आश्रित चर – परीक्षा परिणाम

वाहय चर – विद्यालय का वातावरण

7.3.4 प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह (Experimental Group and Control Group) –

कार्य–कारण सम्बन्धों को स्थापित करने के लिये हमें दो पारिस्थितियों को संतुष्ट करना होता है। पहली परिस्थिति मे में यह देखना होता है यदि कारण है तो प्रभाव होगा तथा दूसरी परिस्थिति में हमें यह देखना होता है कि यदि कारण नहीं है तो प्रभाव भी नहीं होगा। इसी कारण प्रयोगात्मक अनुसन्धान में दो समूह होते हैं – एक प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियन्त्रित समूह।

प्रयोगात्मक समूह – इस समूह में शोधकर्ता द्वारा स्वतन्त्र चर में जोड़–तोड़ किया जाता है। यह सिद्ध किया जाता है कि यदि कारण है तो इसका प्रभाव होगा। जोड़–तोड़ का प्रभाव आश्रित चर पर देखा जाता है।

नियन्त्रित समूह – इस समूह में शोधकर्ता द्वारा स्वतन्त्र चर में कोई जोड़–तोड़ नहीं किया जाता है। यह सिद्ध किया जाता है कि यदि कारण नहीं है तो इसक प्रभाव भी नहीं है।

7.4 प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषताएं :

प्रयोगात्मक अनुसन्धान की चार प्रमुख विशेषताएं होती है ।

1. नियन्त्रण (Control)
2. जोड–तोड़ (Manipulation)
3. अवलोकन (Observation)
4. पुनरावृत्ति (Replication)

7.4.1 नियन्त्रण (Control) :–

नियन्त्रण प्रयोगात्मक अनुसन्धान की एक प्रमुख विशेषता है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान में हमें स्वतन्त्र चर का प्रभाव आश्रित चर पर देखना होता है। विश्वसनीय परिणाम पाने के लिये वाहय चरों का नियन्त्रण अतिआवश्यक होता है। नियन्त्रण कई विधियो से किया जा सकता है।

(क) विलोपन (Elimination) :– वाहय चरों को नियन्त्रित करने का सबसे आसान तरीका है कि इन चरो को अध्ययन से निष्कासित कर दिया जाए ताकि आश्रित चर पर उसके प्रभाव को विलोपित किया जा सके। यदि बुद्धि वाहय चर है तो दोनों समूहों में समान बुद्धिलब्धि (IQ) के प्रयोज्यों को रखकर इस चर को नियन्त्रित किया जा सकता है। यदि आयु वाहय चर है तो एक समान आयु के प्रयोज्यों पर अध्ययन करके आयु को नियन्त्रित किया जा सकता है। परन्तु इस विधि से नियन्त्रण करने के बाद अध्ययन का सामान्यीकरण केवल उन प्रयोज्यों पर ही किया जा सकता है जिनको अध्ययन में शामिल किया गया है। अध्ययन के परिणाम में हम उसी आयु वर्ग में सामान्यीकृत किया जा सकेगा।

(ख) यादृच्छिकीकरण (Randomization) :– यादृच्छिकीकरण केवल एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सभी वाहय चरों समूह तथा नियन्त्रित समूह असमतुल्य हो सकते है लेकिन फिर भी उनके समान होने की प्रायिकता बहुत अधिक होती है। जहां तक सम्भव हो प्रयोगात्मक समूह में यादृच्छिक ढ़ंग से प्रयोज्यों को आबंटित किया जाना चाहिए तथा यादृच्छिक ढ़ंग से आबंटित स्थितियों को प्रयोगात्मक समूह को दिया जाना चाहिए।

(ग) वाह्मय चर को स्वतन्त्र चर के रूप में बदलना (To convert the Extraneous variable into a independent variable) :– वाह्य चरों को नियन्त्रित करने का एक तरीका यह भी है कि जिस वाहय चर को हमें नियन्त्रित करना है उसका हम अपने अध्ययन में शामिल कर लें। यदि आयु या बुद्धि हमारे अध्ययन में वाहय चर है तो हम इन चरों को भी अपने अध्ययन में शामिल कर लें। इन चरों (बुद्धि और आयु) का प्रभाव आश्रित चर पर देंखेगे तथा इन चरों की आपस में अन्तक्रिया का प्रभाव क्या होगा ? यह भी अध्ययन किया जाएगा।

(घ) प्रयोज्यों को सुमेलित करना (Matching Cases) :– इस विधि में वाह्य चरों को नियन्त्रित करने में ऐसे प्रयोज्यों को लिया जाता है जो एक समान विशेषताएं रखते हैं तथा इनमें से कुछ को प्रयोगात्मक समूह में तथा कुछ को नियन्त्रित समूह में रखा जाता है।

इस विधि की अपनी कुछ सीमाएं है जैसे एक से अधिक चरों के आधार पर प्रयोज्यों को सुमेलित करना एक कठिन कार्य है। बहुत से प्रयोज्यों को अध्ययन से अलग करना पड़ता है क्योंकि वह सुमेलित नहीं हो पाते ।

(ड़) **समूहों को सुमेलित करना (Group Matching)** :– इस विधि से वाह्य चरों को नियन्त्रित करने में प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह में प्रयोज्यों को इस प्रकार आबंटित किया जाता है कि जहां तक सम्भव होता है दोनों समूहों का मध्यमान तथा प्रसरण लगभगसमान हो।

(च) **सह प्रसरण विश्लेषण (Analysis of covariance)** :– वाहय चरों के आधार पर प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह में होने वाले प्रारम्भिक अन्तर को सांख्यिकीय विधि से दूर किया जाता है।

7.4.2 जोड़–तोड (Manipulation) :-

प्रयोगात्मक अनुसन्धान की प्रमुख विशेषता है – स्वतंत्र चर में जोड़–तोड़ करना। स्वतन्त्र चर में जोड़–तोड़ करके उसके प्रभाव को आश्रित चर पर देखा जाता है। स्वतन्त्र चर के उदाहरण है–आयु, सामाजिक–आर्थिक स्तर, कक्षा का वातावरण, व्यक्तित्व की विशेषता आदि। इनमें से कुछ चरों में शोधकर्ता के द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। जैसे–शिक्षण विधि तथा पढ़ाने का विषय आदि। कुछ चरों में सीधे परिवर्तन न करके चयन द्वारा परिवर्तन किया जाता है जैसे–आयु, बुद्धि, आदि। शोधकर्ता एक समय में एक या एक से अधिक स्वतन्त्र चरों में जोड़–तोड़ कर सकता है।

7.4.3 अवलोकन (Observation) :-

प्रयोगात्मक अनुसन्धान में स्वतन्त्र चर मे जोड़–तोड़ करके उसके प्रभाव को आश्रित चर पर देखा जाता है। आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभाव को सीधे नहीं देखा जा सकता। शैक्षिक उपलब्धि तथा अधिगम यदि आश्रित चर है तो इनको सीधे नहीं देखा जा सकता है। शैक्षिक उपलब्धि को परीक्षा में प्राप्त अंकों के अवलोकन के आधार पर देखा जाएगा।

7.4.4 पुनरावृत्ति (Replication) :-

प्रयोगात्मक अनुसन्धान में यदि सभी वाहय चरों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया तथा प्रयोज्यों को आबंटन यादृच्छिक विधि से किया जाए तब भी ऐसे बहुत से कारक हो सकते हैं जो अध्ययन के परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं। पुनरावृत्ति के द्वारा इस तरह के समस्या का समाधान किया जा सकता हैं । यदि किसी प्रयोग में 15–15 प्रयोज्य प्रयोगात्मक तथा नियन्त्रित समूह में है तथा उनका आबंटन यादृच्छिक विधि से किया गया है तो यह एक प्रयोग न होकर 15 समानान्तर प्रयोग होते हैं। प्रत्येक जोड़े को अपने आप में एक प्रयोग माना जाता है।

बोध प्रश्न –

1. वाहय चर से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

....

2. प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषताओं के नाम लिखिए।

....

....

....

7.5 प्रयोगात्मक अभिकल्प :

जिस प्रकार कोई वास्तुकार किसी भवन के निर्माण के लिये पहले एक ब्लूप्रिन्ट तैयार करता है, उसी प्रकार एक शोधकर्ता शोध कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए एक प्रयोगात्मक अभिकल्प (Research Design) तैयार करता है। प्रायोगिक अभिकल्प में उन चरों का वर्णन किया जाता है जिनका हमें अध्ययन करना होता है, चरों को मापने के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाएगा उसका वर्णन किया जाता है, न्यादर्श जिसका हमें अध्ययन करना है उसका वर्णन किया जाता है, ऑकड़ों को इकट्ठा करने की विधि तथा आंकड़ो को विश्लेषित करने की सांख्यिकीय विधियों के बारे में बताया जाता है।

7.5.1 प्रयोगात्मक अभिकल्प प्रसरण नियन्त्रण प्रणाली के रूप में (Experimental Design as Variance Control Mechasnism) :-

शोध अभिकल्प को प्रसरण नियन्त्रण प्रणाली के रूप में देखा जाता है। इसमें प्रसरण को नियन्त्रित किया जाता है। प्रयोगात्मक प्रसरण (Experimental variance) या क्रमबद्ध प्रसरण (Systematic variance) को उच्चतम किया जाता है, त्रुटि प्रसरण (Error variance) को निम्नवत किया जाता है तथा वाहय चरों (Extraneous variables) का नियन्त्रण किया जाता है। प्रायोगात्मक अभिकल्प के द्वारा प्रसरण को नियन्त्रित करने के सांख्यिकीय सिद्धान्त को "अधिकतम–न्यूनतम–नियन्त्रण सिद्धान्त" (Principal of Max-Min-Con) कहा जा सकता है।

7.5.2 प्रयोगात्मक प्रसरण को अधिकतम करना (Maximize Experimental Variance) –

प्रयोगात्मक प्रसरण का अर्थ है– आश्रित चर में उत्पन्न प्रसरण जो कि शोधकर्ता द्वारा स्वतन्त्र चर मे जोड़–तोड़ करके किया जाता है। शोध अभिकल्प का तकनीकी उददेश्य होता है कि प्रयोगात्मक प्रसरण को अधिकतम किया जाए।

शोध अभिकल्प ऐसा हो जिसमें जहां तक सम्भव हो प्रयोगात्मक अवस्थाएं (Experimental Conditions) एक दूसरे से अधिक से अधिक अन्तर रखती हों। प्रयोगात्मक अवस्थाएं जितनी अधिक से अधिक भिन्न होगी, आश्रित चर पर उतना ही अधिक प्रयोगात्मक प्रसरण देखा जा सकेगा।

7.5.3 त्रुटि प्रसरण को निम्नतम करना (Minimize Error Variance) -

प्रयोगात्मक अभिकल्प का उद्देश्य है त्रुटि प्रसरणको निम्नतम करना। किसीभी प्रयोग में त्रुटि प्रसरण को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए। त्रुटि प्रसरण वैसे प्रसरण को कहा जाता है जो शोध में ऐसे कारकों से उत्पन्न होता है जो शोधकर्ता के नियन्त्रण से बाहर होता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण त्रुटि प्रसरण होता है जो शोधकर्ता के नियन्त्रण से बाहर होता है।

त्रुटि प्रसरण का दूसरा कारक मापन त्रुटियों से सम्बन्धित होता है। ऐसे कारकों में एक प्रयास से दूसरे प्रयास में होने वाली अनुक्रियाों में भिन्नता, प्रयोज्यों द्वारा अनुमान लगाना तथा थकान आदि है।

त्रुटि प्रसरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक एक दूसरे से अन्तक्रिया करके एक–दूसरे से प्रभाव को समाप्त करने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण त्रुटि प्रसरण को आत्मपूरक (Self-Compensating) कहा जाता है। त्रुटि प्रसरण यादृच्छिक त्रुटियों पर आधारित होता है इसलिये यह अपूर्वकथनीय (Unpredictable) होता है।

त्रुटि प्रसरण को दो विधियों से कम किया जा सकता है।

(i) नियन्त्रित दशाओं में यदि प्रयोग किया जाए तो त्रुटि प्रसरण को कम किया जा सकता है।

(ii) मापन की विश्वसनीयता को बढ़ाकर त्रुटि प्रसरण को निम्नतम किय जा सकता है।

7.5.4 वाह्य चरों को नियन्त्रित्त करना (To Control Extraneous Variable) :-

वाह्य चरों का जहां तक सम्भव हो नियन्त्रण किया जाना चाहिये। वाह्य चरों का नियन्त्रण कई विधियों से किया जा सकता है, जैसे– विलोपन, यादृच्छिकीकरण, वाहय चर को स्वतन्त्र चर के रूप में बदलकर, प्रयोज्यो को सुमेलित करके, समूहों को सुमेलित करके तथा सह प्रसरण विश्लेषण।

7.6 एक अच्छे प्रायोगिक अभिकल्प की कसौटी :

7.6.1 उपयुक्तता (Appropriateness) –

प्रायोगिक अभिकल्प को उपयुक्त होना चाहिए तभी प्रयोग के विश्वसनीय परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रायोगिक अभिकल्प जटिल या सरल न होकर उपयक्त होनी चाहिये। उपयक्त अभिकल्प के चयन द्वारा शोधकर्ता अध्ययन की

आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वस्तुनिष्ठ विधि से प्रयोगात्मक अवस्थाएं व्यवस्थित करता है।

7.6.2 पर्याप्त नियन्त्रण (Adequacy of Control) –

प्रायोगिक अभिकल्प ऐसा होना चाहिए जिसमें वाह्य चरों पर पर्याप्त नियन्त्रण किया जा सके। वाह्य चरों पर पर्याप्त नियन्त्रण से ही शोध के विश्वसनीय परिणाम प्राप्त किये जा सकते है। वाह्य चरों का नियन्त्रण कई विधियों से किया जाता है परन्तु यादृच्छिकीकरण के द्वारा सभी वाह्य चरों का नियन्त्रण किया जा सकता है।

7.6.3 वैधता (Validity) –

किसी भी प्रायोगिक अभिकल्प के लिये तीसरी कसौटी है– वैधता। प्रायोगिक अभिकल्प को वैध होना चाहिए। वैधता दो प्रकार की होती है–आन्तरिक वैधता तथा वाहय वैधता।

7.6.4 आन्तरिक वैधता –

प्रयोगात्मक अनुसन्धान का उद्देश्य है कि स्वतन्त्र चर का प्रभाव आश्रित चर देखा जाए, इसके लिये सभी वाहय चरों पर नियन्त्रण किया जाए। किसी भी प्रयोगात्मक अभिकल्प में इस उद्देश्य को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है, उसकी आन्तरिक वैधता को बताता है। आन्तरिक वैधता मूलरूप से नियन्त्रण की समस्या से सम्बन्धित है।

कैम्पबेल तथा स्टैनले के अनुसार आठ प्रकार के वाह्य चर किसी भी प्रायोगिक अभिकल्प की आन्तरिक वैधता को प्रभावित करते हैं।

(i) **इतिहास (History) :-** इतिहास का अर्थ है कुछ अप्रत्याशित घटनाएं जो प्रयोग के समय सकारात्मक रूप से या नकारात्मक रूप से आश्रित चर को प्रभावित करती हैं।

यदि किसी शिक्षक को प्रयोग के लिए प्रशिक्षित किया जाए लेकिन प्रयोग पूरा होने से पहले उसका स्थानान्तरण हो जाए तो प्रयोग का परिणाम प्रभावित होगा।

यदि किसी राजनीतिक कारण से अप्रत्याशित रूप से स्कूल बन्द हो जाए प्रयोग के बीच में या छात्रों के द्वारा हड़ताल कर दी जाए तो यह सभी कारण प्रयोग के पारिणाम को प्रभावित करेंगे । इन कारकों का प्रभाव भी आश्रित चर पर पड़ेगा।

(ii) **परिपक्वता (Maturity) :-** लम्बे समय तक चलने वाले प्रयोगों में यह देखा जाता है कि प्रयोग की अवधि में प्रयोज्यों में परिवर्तन, परिपक्वता की वजह से हो जाते हैं। उक्त सभी आश्रित चर में होने वाले परिवर्तन के कारण हो सकते हैं तथा प्रयोग के परिणाम को प्रभावित करते हैं।

यदि किसी प्रशिक्षण का प्रभाव हमें शैक्षिक उपलब्धि पर देखना है तथा प्रशिक्षण एव वर्ष का हो तो शैक्षिक उपलब्धि में होने वाला परिवर्तन केवल प्रशिक्षण का प्रभाव नही हो सकता। एक वर्ष में छात्रों की मानसिक योग्यता का विकास अधिक हो सकता है, उसके कारण भी शैक्षिक उपलब्धि बढ़ सकती है।

(iii) **पूर्व–परीक्षण (Pre-testing)** :– बहुत से प्रयोगात्मक अनुसन्धान में पूर्व – परीक्षण किये जाते हैं तथा फिर उपचार देने के बाद (स्वतन्त्र चर में जोड़–तोड़ करने के बाद) उसी परीक्षण को उन्हीं प्रयोज्यों पर पुनः प्रशासित किया जाता है। सामान्य रूप से यह देखने को मिलता है कि पूर्व–परीक्षण अभ्यास का कार्य करता है। पश्च–परीक्षण में जो प्राप्तांक आते हैं वह केवल उपचार के कारण न होकर पूर्व–परीक्षण का अभ्यास के रूप में कार्य करने के कारण भी हो सकता है तथा आन्तरिक वैधता को प्रभावित करते हैं।

(iv) **मापन त्रुटि (Measurement Error)** :– किसी चर का मापन करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। यदि प्रयोग मे लाए गये उपकरण विश्वसनीय नहीं है तो प्रयोग की आन्तरिक वैधता प्रभावित होती है।

शोधकर्ता यदि उपकरण का सही तरीके से प्रयोग नहीं कर पाता तथा यदि परीक्षण को प्रशासित करने के लिए प्रशिक्षण नहीं दिया गया तो चर के मापन में त्रुटि हो सकती है।

(v) **सांख्यिकीय प्रतिगमन (Statistical Regression)** :– कुछ प्रयोगों में पूर्व–परीक्षण तथा पश्च–परीक्षण दोनों करना आवश्यक होता है। यदि शोधकर्ता किसी ऐसे प्रयोज्य का चयन कर लेता है जो अपने गुणों में या तो अति श्रेष्ठ है या निकृष्ट (Extreme cases) तो सामान्य रूप से ऐसा देखा जाता है कि जो प्रयोज्य पूर्व –परीक्षण पर निम्न अंक प्राप्त करते हैं वह पश्च–परीक्षण पर उच्च अंक प्राप्त करते हैं। जो प्रयोज्य पूर्व–परीक्षण पर उच्च अंक प्राप्त करते हैं वह पश्र्च–परीक्षण पर निम्न अंक प्राप्त करते हैं इसे ही सांख्यिकीय प्रतिगमन कहते हैं। पश्च–परीक्षण पर प्राप्त अंक उपचार के कारण न होकर सांख्यिकीय प्रतिगमन के कारण हो सकते है। इस घटना से प्रयोग की आन्तरिक वैधता प्रभावित होती है।

(vi) **प्रायोगिक नश्वरता (Experimental Martality)** :– जो प्रयोग लम्बे समय तक चलते हैं उनमें सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि प्रयोग की अवधि में ही कुछ प्रयोज्यों की अनुपलब्धता हो जाती है। प्रयोगकर्ता प्रायोगिक समूह तथा नियन्त्रित समूह में यादृच्छिकीकरण विधि से प्रयोज्यों को आबंटित करता है लेकिन बीच में कुछ प्रयोज्यों को छोड़ देने से प्रयोग के अन्तिम परिणाम प्रभावित होते हैं।

(vii) **चयन पूर्वाग्रह (Selection Bias)** :– न्यादर्श को जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधियों के प्रयोग से ऐसा न्यादर्श चुना जा सकता है। यदि शोधकर्ता ने यादृच्छिक विधि से न्यादर्श चयन नही किया है या प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह को समतुल्य नहीं बनाया गया तो न्यादर्श का चयन सही नहीं होगा। इस कारण सही परिणाम नहीं प्राप्त हो सकेंगे।

(viii) **चयन तथा परिपक्वता की अन्तःक्रिया (Interaction Effect)** :– न्यादर्श का चयन तथा परिपक्वता का प्रभाव प्रयोग की आन्तरिक वैधता को प्रभावित करता है लेकिन इन दोनों की अन्तर्क्रिया का प्रभाव भी आन्तरिक वैधता पर पड़ता है। इस तरह की अन्तर्क्रिया का प्रभाव उस स्थिति में पड़ता है जब उपचार को यादृच्छिक ढ़ंग से न आंबटित करके प्रयोज्य स्वयं किसी एक प्रकार के उपचार का चयन कर लेते हैं। किसी विशेष प्रकार के उपचार के चयन का कारण आश्रित चर को प्रभावित कर सकता है।

यदि दो विधियों से किसी एक प्रकरण को पढ़ाया जाए तथा इन विधियों की प्रभावशीलता का अध्यन किया जाए, तथा समूह का चयन ऐसे किया कि एक समूह में अधिक परिपक्व प्रयोज्य हो तो दोनों विधियों की प्रभावशीलता का सही आंकलन नहीं किया जा सकता।

(ख) वाहय वैधता (External validity) :– किसी भी प्रयोगके परिणामों को कितनी अधिक जनसंख्या में सामान्यीकृत किया जा सकता है यह उस प्रयोग की वाहय वैधता होती है। परिणामों को जितनी अधिक जनंसख्या पर सामान्यीकृत किया जा सकता है उस प्रयोग की वाहय वैधता उतनी ही अधिक होती है। वाहय वैधता को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं।

(i) **पूर्व–उपचार (Pre- treatment)** :– जब एक ही समूह नियन्त्रित तथा प्रयोगात्मक दोनों रूपों में कार्य करता है तो पूर्व–उपचार का प्रभाव वाहय वैधता पर पड़ता है। एक ही समूह को बारी–बारी से नियन्त्रित समूह तथा प्रयोगात्मक समूह बनाया जाता है तो पूर्व–उपचार के प्रभाव को पूरी तरह से समाप्त नहीं किया जा सकता। इस स्थिति में उन प्रयोज्यों पर परिणामों को सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता जिन पर पूर्व उपचार नहीं किया गया है।

(ii) **प्रयोग की कृत्रिम परिस्थिति (Artificiality of Experimental Setting)**:– प्रयोगशाला अनुसन्धान (Laboratory Experiment) में लगभग सभी वाहय चरों को नियन्त्रित करने का प्रयास किया जाता है और यही नियन्त्रण प्रयोग को कृत्रिम बनाता है। वास्तविक जीवन की स्थितियों में इस प्रकार की कृत्रिमता नहीं होती और न ही यह सम्भव है कि कृत्रिम स्थितियों को उत्पन्न किया जा सके। इसी कारण इन कृत्रिम परिस्थितियों में किए गये अनुसन्धान के परिणामों को सामान्यीकृत

करने की बहुत सीमाएं होती है। इन परिस्थितियों में किए गये अनुसन्धानों की वाहय वैधता बहुत कम होती है।

7.7 प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकार :

प्रायोगिक अभिकल्प विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें अन्तर उनकी जटिलता तथा नियन्त्रण की पर्याप्तता का होता है। किसी भी प्रायोगिक अभिकल्प का चुनाव कुछ कारकों पर निर्भर करता है जैसे – प्रयोग के उद्देश्य तथा प्रकृति में, चरों के प्रकार पर जिन्हें संचालित(Monipulates) करना है प्रयोग की सुविधा तथा प्रयोग की परिस्थितियों पर तथा शोधकर्ता की कार्यकुशलता पर। अभिकल्प रचना में सामान्यतः समूह के अक्षर G से, RG यादृच्छिक चयनित समूह, MG समेल समूह, T उपचार, C नियन्त्रण तथा O प्रेक्षण या निरीक्षण के लिये उपुयक्त किये जाते हैं।

प्रायोगिक अभिकल्प को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है–

(1) पूर्व–प्रायोगिक अभिकल्प (Pre-experimental design)

(2) अर्ध प्रयोगिक अभिकल्प (Quasi-experimental design)

(3) वास्तविक प्रायोगिक अभिकल्प (True-experimental design)

7.7.1 पूर्व–प्रायोगिक अभिकल्प (Pre-experimental design)

पूर्व प्रायोगिक अभिकल्प में वाहय चरों पर नियन्त्रण बहुत कम या बिल्कुल नहीं होता है। इसमें या तो नियन्त्रित समूह होता ही नही है और यदि होता भी है तो नियन्त्रित तथा प्रायोगिक समूह को समतुल्य नहीं बनाया जाता है । इस प्रकार के अभिकल्प सबसे कम प्रभावशाली होते हैं। यह तीन प्रकार के अभिकल्प होते हैं।

(i) एकल प्रयास अध्ययन (One shot case study) :- इस प्रकार के अभिकल्प में शोधकर्ता द्वारा एक समूह का चयन किया जाता है तथा उसको उपचार दिया जाता है तथा उस समूह पर पश्च–परीक्षण किया जाता है तथा परिणाम को उपचार का कारण माना जाता है । इस अभिकल्प से प्राप्त परिणामों को सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है तथा इसमें आन्तरिक वैधता की कमी पायी जाती है।

G: TO

(ii) एकल समूह पूर्व परीक्षण–पश्च परीक्षण अभिकल्प (The Single group Pre-test treatment Post-test design) :- इस प्रकार के अभिकल्प में एक समूह का चयन किया जाता है उस पर पूर्व परीक्षण किया जाता है तथा आश्रित चर का मापन किया जाता है। इसके बाद उस समूह को उपचार (Treatment) दिया जाता है। उपचार के बाद पश्च–परीक्षण किया जाता है तथा

फिर से आश्रित चर का मापन किया जाता है। पूर्व–परीक्षण के बाद तथा पश्च–परीक्षण के बाद आश्रित चर के मानों के अन्तर को उपचार का प्रभाव माना जाता है।

इस अभिकल्प में वाहय चरों पर कोई नियन्त्रण नहीं किया जाता तथा इनमें कोई नियन्त्रित समूह नही होता है इसलिए प्रयोगात्मक अनुसन्धान की दूसरी शर्त कि यदि "कारण नही है तो प्रभाव भी नहीं" को सत्यापित नहीं किया जा सकता।

G : पूर्व परीक्षण O
G : T पश्च परीक्षण O

(iii) **स्थिर समूह अभिकल्प (Static group comparision)** :- इस प्रकार के अभिकल्प में दो समूहों का चयन किया जाता है तथा एक समूह को उपचार दिया जाता है तथा दूसरे समूह को किसी भी प्रकार का उपचार नहीं दिया जाता है। पश्च–परीक्षण दोनो समूहों का किया जाता है। दोनो समूहों के पश्च–परीक्षण के परिणामों में अन्तर उपचार का प्रभाव होता है, ऐसा माना जाता है।

यद्यपि इस अभिकल्प में एक नियन्त्रित समूह होता है लेकिन नियन्त्रित तथा प्रयोगात्मक समूह को समतुल्य नहीं बनाया जाता। यदि दोनों समूह में शुरू से ही आश्रित चर पर अन्तर होता है तो पश्च–परीक्षण के परिणामों में अन्तर को पूरी तरह से उपचार का प्रभाव नहीं माना जा सकता। इस प्रकार के अभिकल्प में आन्तरिक वैधता की कमी पायी जाती है।

G_1 : P_{RT} T O P_{OT}
G_2 : P_{RT} T O P_{OT}

7.7.2 प्रयोगिक कल्प अभिकल्प (Quasi-experimental design)

प्रायोगिक कल्प अभिकल्प में जहां तक सम्भव होता है वाहय चरों को नियन्त्रित किया जाता है। प्रयोग में दो समूह होते हैं प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूह, लेकिन प्रयोगात्मक समूह तथा नियन्त्रित समूहों में प्रयोज्यों का आबंटन यादृच्छिक तरीके से न हो पाने के कारण दोनों समूहों को समतुल्य नहीं बनाया जा पाता। बहुत सी ऐसी परिस्थितियां होती है जब यादृच्छिकीकरण से न्यादर्श का चयन नहीं हो सकता तथा यादृच्छिक आबंटन की अनुमति भी नहीं मिल पाती। इन परिस्थितियों में केवल प्रयोगिक कल्प अभिकल्प का ही प्रयोग किया जा सकता है।

(i) **असमतुल्य पूर्व परीक्षण–पश्च परीक्षण अभिकल्प (Non Equivalent Pretest –Posttest design)** :- कभी –कभी व्यवहारिक रूप से यह सम्भव नहीं होता है कि स्कूलों में या किसी स्कूल के दो वर्गो में यादृच्छिक आबंटन द्वारा दो समूह का निर्माण किया जा सके। इन परिस्थितियों में स्कूलों को या किसी एक स्कूल के दो वर्गो को यादृच्छिक रूप से एक स्कूल या एक वर्ग को प्रयोगात्मक समूह या दूसरे स्कूल या दूसरे वर्ग को नियन्त्रित समूह मान लिया जाता है।

पूर्व–परीक्षण दोनों समूहों का किया जाता है जबकि उपचार केवल प्रायोगिक समूह को दिया जाता है। पश्च–परीक्षण दोनों समूहों का किया जाता है। प्रयोगात्मक समूह के पूर्व–परीक्षण तथा पश्च–परीक्षण के बीच अन्तर ज्ञात किया जाता है तथा इसी प्रकार नियन्त्रित समूह के पूर्व–परीक्षण तथा पश्च–परीक्षण के अन्तर को ज्ञात किया जाता है। यदि इन दोनों के बीच का अन्तर सार्थक होता है तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उपचार प्रभावी है।

जब यादृच्छिक आबंटन सम्भव नहीं होता है तब इस अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है। इस अभिकल्प की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यदि दोनो समूहों में पूर्व–परीक्षण में आश्रित चर के मान में कोई अन्तर नहीं आता है तब तो ठीक है लेकिन यदि प्रारम्भिक अवस्था में दोनों समूहों में अन्तर आता है तो हम इस अन्तर को सांख्यिकीय रूप से सह प्रसरण विश्लेषण प्रविधि के द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयास करते हैं।

(ii) **प्रति सन्तुलित अभिकल्प (Counter Balanced Design)** :- जब हम समूहों को यादृच्छिक रूप से आबंटित नही कर सकते हैं तथा हमें दो या तीन प्रकार के उपचार देने होते हैं तो इस प्रकार के अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है। इस अभिकल्प में सभी समूहों को सभी तरह के उपचार यादृच्छिक रूप से दिये जाते है। प्रत्येक समूह को प्रत्येक तरह का उपचार क्रम बदल–बदल कर दिया जाता है। प्रयोग के शुरूआत में सभी समूहों पर पूर्व–परीक्षण किया जाता है तथा प्रत्येक समय अन्तराल के बाद पश्च–परीक्षण किया जाता है तथा अन्त में एक पश्च –परीक्षण सभी समूहों का किया जाता है।

Time Sequence

Group		1st	2nd	3rd	4th	P
A	PrT	T_1	T_2	T_3	T_4	P_0T_5
B	PrT	T_3	T_4	T_2	T_1	P_0T_5
C	PrT	T_2	T_1	T_4	T_3	P_0T_5
D	PrT	T_4	T_3	T_1	T_2	P_0T_5

यदि चार प्रकार के उपचार है तो हमें चार समूह लेगे। इस अभिकल्प में उपचारों की संख्या तथा समूहों की संख्या को संतुलित किया जाता है इसलिये इसे प्रतिसंतुलित अभिकल्प कहा जाता है। इस अभिकल्प में उच्च कोटि की आन्तरिक वैधता होती है।

7.7.3 वास्तविक प्रायोगिक अभिकल्प (True-experimental design)

वास्तविक प्रायोगिक अभिकल्प में प्रायोगिक समूह तथा नियन्त्रित समूह को यादृच्छिक आबंटन के द्वारा समतुल्य बनाया जाता है। इसी कारण इस अभिकल्प में आन्तरिक वैधता के सभी कारकों को नियन्त्रित किया जाता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में वास्तविक प्रायोगिक अभिकल्प का प्रयोग एक कठिन कार्य है क्योंकि इन परिस्थितियों में सभी चरों का नियन्त्रण सम्भव

नहीं होता तथा यादृच्छिक आबंटन भी सम्भव नहीं हो पाता। इस अभिकल्प का प्रयोग एक कठिन कार्य है लेकिन जहाँ तक सम्भव हो इसी प्रकार के अभिकल्प का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें प्रयोगात्मक अनुसन्धान के सभी सिद्धान्तों का पालन किया जाता है।

वास्तविक प्रयोगिक अभिकल्प कई प्रकार के होते हैं :–

(i) **केवल पश्च समतुल्य समूह अभिकल्प (The Post test only, Equivalent Groups Design)** :- इस अभिकल्प में यादृच्छिक आबंटन के द्वारा दो समतुल्य समूह बनाए जाते हैं। किसी एक समूह को यादृच्छिक रूप से उपचार दिया जाता है तथा उसे प्रायोगिक समूह मान लिया जाता है तथा दूसरे समूह को नियन्त्रित समूह मान लिया जाता है। उपचार केवल प्रायोगिक समूह को दिया जाता है लेकिन आश्रित चर का मापान दोनों समूहों के लियें किया जाता है। दोनों समूहों में आने वाला अन्तर उपचार का प्रभाव माना जाता है। इस अभिकल्प में समूहों का निर्माण यादृच्छिक आबंटन के द्वारा होता है इसलिये इन दोनों समूहों में समतुल्यता होती है। इस कारण आश्रित चर में आने वाला अन्तर उपचार का प्रभाव ही माना जाता है।

$$Gr_1\ (E_R)\ T\ P_{0T}$$
$$Gr_2\ (C_R)\ P_{0T}$$

(ii) **पूर्व परीक्षण पश्च समतुल्य समूह अभिकल्प (The Pre-test - Post Test Equivalent Groups Design)** :- यह अभिकल्प पहले वाले अभिकल्प से केवल इसमें अन्तर रखता है कि इसमें पूर्व परीक्षण भी किया जाता है। इस अभिकल्प में यादृच्छिक आबंटन के द्वारा प्रायोगिक समूह तथा नियन्त्रित समूह में प्रयोज्यों को रखा जाता है तथा दोनों समूहों का पूर्व–परीक्षण किया जाता है। इसके बाद शोधकर्ता केवल प्रायोगिक समूह को उपचार देता है। प्रयोग के अन्त में दोनों समूहों पर पश्च–परीक्षण किया जाता है । आश्रित चर का मापन किया जाता है। पूर्व–परीक्षण तथा पश्च–परीक्षण के बीच आने वाले अन्तर को उपयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियों के द्वारा ज्ञात किया जाता है। यदि दोनों के बीच सार्थक अन्तर आता है तो इसे उपचार का प्रभाव माना जाता है।

$$Gr_1\ (E_R)\ Pr_T\ T\ P_{0T}$$
$$Gr_2\ (C_R)\ Pr_T\ -\ P_{0T}$$

(iii) **सोलोमन चार समूह अभिकल्प (Soloman Four Groups Design)** :- कभी–कभी पूर्व परीक्षण का प्रभाव उपचार के प्रभाव को प्रभावित करता है। पूर्व–परीक्षण के प्रभाव को ज्ञात करने के लिये इस अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है। इस अभिकल्प में चार समूह होते हैं। दो प्रायोगिक समूह होते हैं जिसमें एक पर पूर्व–परीक्षण किया जाता है तथा दूसरे समूह पर कोई पूर्व परीक्षण नहीं किया जाता है। इसी प्रकार दो नियन्त्रित समूह होते हैं एक में पूर्व–परीक्षण किया जाता है तथा दूसरे में कोई पूर्व–परीक्षण नहीं किया जाता है। इन सभी समूहों में प्रयोज्यों की आबंटन यादृच्छिक विधि से किया जाता है। पश्च परीक्षण चारों

समूहों पर किया जाता है।

Gr_1	E_R	$P_r T_1$	T	$P_0 T_1$
Gr_2	C_R	$P_r T_2$	–	$P_0 T_2$
Gr_3	E_R	–	T	$P_0 T_3$
Gr_4	C_R	–	–	$P_0 T_4$

बोध प्रश्न : –

1. प्रयोगात्मक अभिकल्प का क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

2. एक अच्छे प्रायोगिक अभिकल्प की तीन कसौटियों के नाम लिखिये ।

....

....

....

7.8 अभ्यास प्रश्न

प्र0 – प्रयोगात्मक अनुसन्धान से आप क्या समझते हैं ?

प्र0– प्रयोगात्मक अनुसन्धान के चर को स्पष्ट कीजिए।

प्र0– प्रयोगात्मक अनुसन्धान की विशेषताएं बताइये ।

प्र0– प्रयोगात्मक अभिकल्प के रूप को स्पष्ट कीजिए।

प्र0– प्रायोगिक अभिकल्प की कसौटी की व्याख्या कीजिए।

प्र0– प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकार को बताइये।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेस्ट, जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल, 1997।

सिंह, अरूण कुमार : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 2007।

कौल, लोकेश	:	शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, 2005।
भटनागर, आर0पी0	:	शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।
राय, पारसनाथ	:	अनुसंधान परिचय, नवरंग ऑफसेट प्रिन्टर्स, आगरा, 2002 ।
गुप्ता, एस0पी0	:	आधुनिक मापन और मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010।

इकाई –08 गुणात्मक अनुसन्धान

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 गुणात्मक अनुसन्धान अर्थ एवं विशेषतायें

8.4 गुणात्मक अनुसन्धान के उद्देश्य एवं प्रसंग

8.5 गुणात्मक अनुसन्धान का महत्व

8.6 गुणात्मक अनुसन्धान के प्रकार

8.7 गुणात्मक अनुसन्धान में प्रदत्त संग्रह के उपकरण

8.8 गुणात्मक प्रदत्त विश्लेषण की तकनीकें

8.9 सारांश

8.10 अभ्यास प्रश्न

8.11 चर्चा के बिन्दु

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

जैसा कि पूर्व इकाईयों में स्पष्ट हो चुका हे कि शोध विधि किसी समस्या के अध्ययन की एक विशेष प्रक्रिया है। शोधकर्त्ता या शोधकर्ती द्वारा शोध हेतु चुने गये प्रकरण की प्रकृति अनुसन्धान की विधि एवं प्रदत्त संकलन की विधि को निर्धारित करती है तथा प्राप्त सूचनाओं या प्रदत्तों की प्रकृति यह निर्धारित करती है कि अनुसन्धान मूलतः मात्रात्मक अनुसन्धान है या गुणात्मक अनुसन्धान। यह इकाई पूर्व इकाई के क्रम में है जिसमें भावी अनुसन्धान तथा शोध के सन्दर्भों की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं नवीन अनुसन्धान के रूप गुणात्मक अनुसन्धान के बारे में हम लोग चर्चा करेंगें। इस इकाई में हम लोग गुणात्मक अनुसन्धान के अर्थ के साथ–साथ उसकी प्रक्रिया आदि को भी समझने का प्रयास करेंगें।

8.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन से तुम लोग निम्न योग्यतायें अर्जित कर सकोगे–

1. गुणात्मक अनुसन्धान के प्रत्यय एवं उसकी विशेषताओं को समझ सकोगे।
2. गुणात्मक अनुसन्धान के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकोगे।
3. गुणात्मक अनुसन्धान के विभिन्न प्रकारों एवं उसके महत्व के बारे में अवबोध विकसित हो सकेगा।
4. गुणात्मक अनुसन्धान के प्रदत्तों के संग्रह के उपकरणों को जान कर उनका प्रयोग कर सकेंगे।

5. गुणात्मक अनुसन्धान के प्रदत्तों की विश्लेषण की तकनाका का समझ सकेंगे तथा विश्लेषण कर अनुसन्धान के निष्कर्षो को प्राप्त करने के योग्य हो सकेंगे।

8.3 गुणात्मक अनुसन्धान– अर्थ एवं विशेषतायें :

अनुसन्धान विधियों को मुख्यतः दो रूपों में बॉटा जा सकता है– तार्किक प्रत्यक्षवाद (Logical Positivism) तथा गोचर खोज (Phenomenological Inquiry) । शैक्षिक शोधों में पहला रूप ज्यादा प्रयुक्त हुआ है। परन्तु विगत एक दशक से शैक्षिक परिस्थितियों से सम्बन्धित समस्याओं, समाधान प्रक्रियाओं एवं व्यवस्थाओं से मुद्दों को स्पष्ट एवं उजागर करने के लिये गोचर खोज उपागम पर ज्यादा बल दिया जा रहा है। शोध के इन्हीं उपागमों के आधार पर शोध को तीन भॉगों में बॉटा जा सकता है– मात्रात्मक शोध, गुणात्मक शोध एवं क्रियात्मक शोध । वास्तव में शोध के मात्रात्मक तथा गुणात्मक शोधों मे न तो कोई स्पष्ट अन्तर है और न ही दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों शोधों में मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रदत्तों का प्रयोग हो सकता है। इसीलिये अब तक गुणात्मक शोध की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन सकी है। गुणात्मक अनुसन्धान के विषय में जॉन डब्ल्यू बेस्ट तथा जेम्स वी कान ने कहा है–

"क्या है ? का वर्णन करने के लिए गुणात्मक विवरणात्मक अनुसन्धान अमात्रात्मक विधियों का प्रयोग करता है। गुणात्मक विवरणात्मक शोध प्रत्यक्ष चरों के मध्य के अमात्रात्मक सम्बन्धों को जानने के लिये व्यवस्थित प्रक्रियाओं का प्रयोग करता है।"

गुणात्मक अनुसन्धान के लिये व्यवहार में कई पद प्रयुक्त किये जाते हैं, जैसे – नृ–शास्त्र शोध (Enthnographic Research) व्यष्टि अध्ययन शोध (Case Study Research), घटना–क्रिया विज्ञानपरक शोध (Phenomenological Research) तथा संरचनावाद (Constructivism), सहभागी प्रेक्षण (Participant Observation) आदि।

गुणात्मक अनुसन्धान में जब नृः शास्त्रीय शोध शब्द का प्रयोग होता है, तब घटित घटनाओं के स्थान पर वर्तमान की घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें शोधकर्ता या शोधकर्ती का दृष्टिकोण खोज के गोचर (Phenomena) के प्रति अधिक व्यैक्तिक तथा मृदु होता है। वह व्यक्तियों की अभिवृत्तियों, पसन्दों या व्यवहारों के कारणों तथा अभिप्रेरणाओं के प्रति समझ पैदा करने के लिये व्यैक्तिक लेखों, असंरचित साक्षात्कारों, तथा सहभागी प्रेक्षण विधियों का प्रयोग करता है। इस प्रकार के अनुसन्धान में संकलित प्रदत्तों का उपयोग परिकल्पनाओं की जॉच के स्थान पर परिकल्पनाओं के निर्माण में किया जाता है।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि गुणात्मक अनुसन्धान गहनतापूर्वक किया जाने वाला एक ऐसा व्यस्थित प्रकियाओं वाला अनुसन्धान है जिसमें

गुणात्मक प्रदत्त संकलन की विधियों का प्रयोग कर परिकल्पनात्मक निष्कर्षों को मात्रात्मक या गुणात्मक रूप में प्राप्त किया जाता है तथा जिसका सम्बन्ध वर्तमान गोचर से होता है।

गुणात्मक अनुसन्धान की विशेषतायें :–

गुणात्मक अनुसन्धान के सम्बन्ध में उपरोक्त बातों से उसकी विशेषताओं को सरलता से जाना जा सकता है। प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

1. गुणात्मक अनुसन्धान में आगमनात्मक (Inductive) उपागम का प्रयोग होता है।
2. इसमें शोधकर्ता या शोधकर्ती की अहं भूमिका होती है।
3. गुणात्मक अनुसन्धान का केन्द्र बिन्दु विशिष्ट परिस्थिति, संस्थायें, समुदाय या मानव समूह होता है।
4. यह मात्रात्मक प्राप्ताको, मापन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण के स्थान पर निहित कारणों, व्याख्याओं और निहित अर्थों पर बल देता है।
5. यह संरचित उपकरणों के स्थान पर व्यैक्तिक अनुभवों को ज्यादा बल देता है।
6. यह कम घटनाओं या कम समूह या कम सदस्य संख्या पर आधारित होता है।
7. इसकी आधार सामाग्रियॉ साक्षात्कार, प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा लिखित अभिलेख होते हैं।
8. इसमें संगठनात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
9. मात्रात्मक अनुसन्धान में जहॉ सार्वभौमिक सामान्यीकरण किया जाता है वहीं गुणात्मक अनुसन्धान विशिष्ट सन्दर्भ के साथ केन्द्रित रहता है।
10. गुणात्मक अनुसन्धान ज्ञान के विशिष्ट, सही या सत्य के मार्ग पर विश्वास नहीं करता बल्कि परिस्थितिजन्य ज्ञान पर बल देता है।

बोध प्रश्न :–

1. गुणात्मक अनुसन्धान की किन्हीं पॉच विशेषताओं को लिखिये।

   ....

   ....

   ....

2. गुणात्मक अनुसन्धान के लिये किन–किन पदों को प्रयुक्त किया जाता है?

   ....

   ....

8.4 गुणात्मक अनुसन्धान के उद्देश्य एवं प्रसंग (Objective and Theme of Qualitative Research)

गुणात्मक अनुसन्धान के उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है–

1. अभिवृत्ति, पूर्वाग्रह, पसंद, संगठनात्मक वातावरण आदि जैसे विस्तृत अर्थ वाले पदो के लिए गहन समझ विकसित करना।
2. ऐसे सन्दर्भों (Context) को समझना जिसमें कुछ व्यवहार अभिव्यक्त होते हैं या कुछ घटनायें घटित होती है।
3. एक प्रत्याशित घटना की पहचान करना।
4. किसी प्रक्रिया का समझना।
5. निमित्तीय (causal) व्याख्या विकसित करना।
6. विशिष्ट प्रकार के व्यवहार या विशिष्ट घटना को बढ़ाने वाले जिम्मेदार कारकों को जानने के लिये गहन अध्ययन करना।
7. किसी घटना या व्यवहार के लिये जिम्मेदार विभिन्न कारकों के मध्य के अन्र्तसम्बन्धों का अध्ययन करना।

गुणात्मक अनुसन्धान के इन उद्देश्यों को फ्रायड द्वारा विकसित मनोविश्लेषण के सिद्धान्त तथा पियाजे द्वारा विकसित संज्ञात्मक विकास सिद्धान्त द्वारा समझा जा सकता है जिसमें उन्होंने गुणात्मक अनुसन्धान का प्रयोग किया था।

गुणात्मक अनुसन्धान की विशेताओं तथा उद्देश्यों के आधार पर गुणात्मक अनुसन्धान के प्रसंगो (Themes) को निर्धारित किया जा सकता है।

गुणात्मक अनुसन्धान के प्रसंग (Theme of the Qulitative Research)

गुणात्मक अनुसन्धान के प्रसंगों को पैटन (Patton) ने दस प्रसंगों के रूप में इंगित किया है। पैटन द्वारा बताये गये प्रसंग निम्नवत है–

1. नैसर्गिक अध्ययन (Naturalistic Inquiry)

अर्थात पूर्व निर्धारित नियमों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों के बिना, बिना किसी नियन्त्रण या बाधा के, बिना किसी हस्तक्षेप के, वास्तविक सांसारिक परिस्थितियों में अनसुलझी प्रकृतिजन्य परिस्थितियों में अध्ययन।

2. आगमनात्मक विश्लेषण (Inductive Analysis)

अर्थात सैद्धान्तिक आधार पर परिकल्पनाओं के निर्माण एवं जॉच के स्थान पर खोज के लिये प्राप्त विस्तृत तथा विशिष्ट प्रदत्तों के महत्त्वपूर्ण वर्गों, विभागों तथा अन्र्तसम्बन्धों को समझना।

3. समग्र परिप्रेक्ष्य (Holistic Perspective)

अर्थात किसी घटना के अंशों या विवृत चरों के रेखीय या कार्यकारण सम्बन्धों के स्थान पर अध्ययन विषय की सम्पूर्ण घटना (Whole phenomenon) को जटिल व्यवस्था के रूप में अध्ययन।

4. गुणात्मक प्रदत्त (Qualitiative Data)

अर्थात मानव के व्यैक्तिक लेखों, अनुभवों, प्रत्यक्ष भाषणों, व्याख्याओं आदि का विस्तृत एवं गहन अध्ययन।

5. व्यक्तिगत सम्पर्क एवं अर्न्तदृष्टि (Personal contact and Insight)

अर्थात शोधार्थी, व्यक्तियों या घटनाओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहकर व्यैक्तिक अनुभव एवं अर्न्तदृष्टि के आधार पर व्यक्तियों के व्यवहारों या घटना के प्रति समझ विकसित करता है।

6. अभिकल्पगत नम्यता (Design Flexibility)

अर्थात शोधार्थी के लिए शोध अभिकल्प का चुनाव करने में नम्यता रहती है। वह परिस्थिति के अनुसार अभिकल्पों का निर्माण एवं उनमें परिवर्तन कर सकता है।

7. तदनुभूतिजन्य तटस्थता (Empathic Neutrality)

विषय वस्तु की आवश्यकतानुरूप शोधार्थी अपने व्यैक्तिक अनुभव एवं अर्न्तदृष्टि का प्रयोग अध्ययन में करता है परन्तु वह व्यैक्तिक पूर्वाग्रहों या पूर्व निर्धारित धारणाओं को उससे अलग रखते हुए घटना का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है।

8. सन्दर्भगत सूक्ष्म ग्राहिता (Context Sensivity)

अर्थात् शोधार्थी स्थान एवं समय की दृष्टि से घटना या परिस्थितियें के सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रति सन्वेदनशील होता है।

9. विशिष्ट व्यष्टि अभिमुखीकरण (Unique case Orientation)

अर्थात् शोधार्थी व्यक्तिगत अध्ययन से शोध की तुलना कर प्रत्येक व्यष्टि को विशिष्ट तथा अद्वितीय मानता है।

10. <u>गतिशील व्यवस्थायें (Dynamic System)</u>

अर्थात शोधार्थी प्रक्रिया के प्रति सावधान रहता है तथा सम्पूर्ण संस्कृति या एक व्यक्ति पर केन्द्रित रहते हुए परिवर्तनों को स्थिर मानकर

कार्य करता है।

बोध प्रश्न –

1. गुणात्मक अनुसन्धान के किन्हीं तीन प्रमुख उद्देश्यों को लिखिये ।

....

....

....

2. गुणात्मक अनुसन्धान के किन्हीं पॉच प्रसंगों को लिखिये।

....

....

....

8.5 गुणात्मक अनुसन्धान का महत्व

गुणात्मक अनुसन्धान का शोध में महत्वपूर्ण स्थान है। भले ही शैक्षिक अनुसन्धान में गुणात्मक अनुसन्धान अब तक उपेक्षित रहा हो, लेकिन पिछले दशक से विद्धानों ने शोध की इस विधा पर जोर देना प्रारम्भ कर दिया है। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में गुणात्मक अनुसन्धान का प्रयोग तो बहुत पहले से ही होता रहा है। गुणात्मक अनुसन्धान की विशेषतायें एवं उद्देश्य से इसके महत्व को आंका जा सकता है।

गुणात्मक अनुसन्धान के मूलतः तीन व्यावहारिक उपयोग हैं –

1. ग्राह या समझने योग्य सिद्धान्तों की स्थापना करने में।
2. मूल्यांकित किये जा रहे किसी उत्पाद या किसी कार्यक्रम की उपयोगिता को सामान्य रूप से आंकलित करने के स्थान पर वर्तमान के अभ्यास या प्रयासों को सुधारने की ओर अग्रसर संरचनात्मक मूल्यांकन के संचालन में।
3. शोधार्थियों के साथ सहयोगात्मक शोधों (Collaborative Research) में संलग्नता।

इन व्यवहारिक उपयोग से भी गुणात्मक अनुसन्धान की महत्ता और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार से गुणात्मक अनुसन्धान के महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

1. सामाजिक एवं शैक्षिक क्षेत्र के लिए सिद्धान्तों के निरूपण की दृष्टि से।
2. शोधार्थियों में शोध के प्रति गहनता बढ़ाने की दृष्टि से।
3. सांख्यिकीय जटिलताओं के स्थान पर शोधार्थियों के अनुभव एवं अर्न्तदृष्टि के विकास की दृष्टि से।

4. किसी घटना के वास्तविक चित्रण की दृष्टि से।
5. अभिवृत्ति, पसंद तथा व्यवहारों को विस्तृत एवं स्पष्ट रूप प्रदान करने की दृष्टि से।
6. भावी अनुसन्धानों को दृष्टि प्रदान करने की दृष्टि से।
7. परिकल्पनाओं के निर्माण की दृष्टि से।
8. शोधार्थियों में आत्मविश्वास एवं उसकी विश्वसनीयता बढ़ाने में।
9. शोध में यान्त्रिकता को न्यून करने की दृष्टि से।
10. विभिन्न समस्याओं के समाधान एवं कार्यक्रमों को सफल बनाने की दृष्टि से।
11. किसी कार्यक्रम के संरचनात्मक मूल्यांकन की दृष्टि से।
12. परस्पर सम्बद्ध शोधों में संलग्नता की दृष्टि से।

शैक्षिक क्षेत्र में गुणात्मक अनुसन्धान के शोध विषयक उदाहरण

शिक्षा क्षेत्र में गुणात्मक अनुसन्धान के शोध विषयों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार के हो सकते हैं :–

- Ø मध्यान्ह भोजन योजना अन्य राज्यों के सापेक्ष तमिलनाडु में सुचारू रूप से क्यों चल रही है ?
- Ø शैक्षिक नीतियों को प्रभावित करने के लिये शिक्षक संगठन क्या युक्तियाँ प्रयोग में लाते है ?
- Ø शैक्षिक गुणवत्ता उन्नयन की दृष्टि से शिक्षक–अभिभावक सहयोग को कैसे बढ़ाया जा सकता है ?
- Ø विद्यालयों के प्रधानाचार्य किन कार्यों में अपना समय अधिक व्यतीत करते हैं ?
- Ø परीक्षाओं के बारे में क्या सोचते हैं ?
- Ø प्रधानाचार्यो की भूमिका के विषय में शिक्षक वर्ग क्या धारणायें रखते हें?
- Ø प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक अध्ययन–अध्यापन को प्रभावी बनाने के लिये क्या प्रयास करते हैं ? आदि।

बोध प्रश्न :–

1. गुणमत्मक अनुसन्धान के महत्व को रेखांकित करने वाले तीन उपयोग लिखिये।

....

....

....

2. गुणात्मक अनुसन्धान के शैक्षिक क्षेत्र की किसी समस्या को लिखिये ।

....

....

8.6 गुणात्मक अनुसन्धान के प्रकार

गुणात्मक अनुसन्धान की विशेषताओं के आधार पर गुणात्मक अनुसन्धान के मुख्य प्रकार निम्न है–

(i) घटना–क्रिया विज्ञानपरक अध्ययन (Phenomenological Research)

घटना क्रिया विज्ञान एडमण्ड हयूसर्ल (Edmund Husserl) के द्वारा प्रतिपादित माना जाता है। बाद में इसके विकास में मार्टिन हेडेगर (Martin Heidegger) ने भी अपना योगदान दिया। यह एक दार्शनिक परम्परा है। घटना–क्रिया विज्ञान, मानवीय अनुभव के शोध को मुख्य आधार मानता है। इस विधि में शोधार्थी अपने जीवन संसार के अनुभवों को परिलक्षित करता है। इसमें प्रतिभागियों को किसी घटना के बारे में अपने अनुभव को व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है तब शोधार्थी प्रतिभागियों के प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण उनके प्रत्यक्षीकरण की समानता तथा भिन्नता के आधार पर करता है।

(ii) हयूरिस्टिक अध्ययन (Heuristic Research)

हयूरिस्टिक शब्द ग्रीक भाषा के हयूरिस्को शब्द से बना है जिसका अर्थ 'to discover' 'मैं खोजता हूँ' होता है। यह आन्तरिक या गहराई से खोज की प्रक्रिया को इंगित करता है, जो विभिन्न अनुभवों के अर्थ एवं प्रकृति को जानने तथा भावी अन्वेषण एवं विश्लेषण की विधियों तथा प्रक्रियाओं के विकास से सम्बन्धित होता है। हयूरिस्टिक अध्ययन एक प्रक्रिया है जो किसी एक समस्या या एक ऐसे प्रश्न से प्रारम्भ होता है जिसका समाधान या उत्तर शोधार्थी प्राप्त करना चाहता है। हयूरिस्टिक अध्ययन की छः कलायें (phases) होती है –

- (a) प्रारम्भिक संलग्नता (The initial engagement)
- (b) प्रकरण और प्रश्न में डूबना (Immersion)
- (c) अनुभवों को एकत्रित करना (Incubation)
- (d) उद्घाटित करना (Illumination)
- (e) अर्थापन (Expliration)
- (f) सृजनात्मक संश्लेषण के रूप में शोध के चरम पर पहुँचना (culmination)

(iii) नृ–शास्त्रीय अध्ययन (Ethnographical Research)

नृ–शास्त्रीय शोध का जन्म मानव शास्त्र विषय से हुआ है। इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक समूहों का अध्ययन और इसकी सांस्कृतिक विशेषताओं का विवरण देना है। इस विधि में शोधार्थी अध्ययन समूह के सदस्य के रूप सम्मिलित

होकर समूह से आन्तरिकता स्थापित कर उनके साथ लम्बे समय तक रहकर समूह के साक्ष्यों की क्रियाओं, वार्तालापों, सांस्कृतिक विशेषताओं तथा घटनाओं पर सूक्ष्म दृष्टि रख कर एक विस्तृत विवरण तैयार करता है। इस शोध में शोधार्थी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है तथा वस्तुनिष्ठता को बनाये रखना सबसे बड़ी चुनौती होती है। एक नृ–शास्त्रीय अध्ययन के निम्न पद होते हैं –

(a) प्रारम्भिक अन्वेषण (Initial Exploration)

(b) भौगोलिक अवस्थाओं का अध्ययन (Study of the geographical conditions)

(c) प्रेक्षण की योजना बनाना (Planning for the observation)

(d) सामाजिक अवस्थाओं में स्वयं संलग्न होना (Getting into the social setting)

(e) अवस्थाओं या परिस्थितियों का प्रेक्षण करना (Making observation about the setting)

(f) इनके बारे में अन्तिम निष्कर्ष निकालना (Finally drawing conclusions about it)

(iv) व्यष्टि अध्ययन (Case Study)

इसमें किसी घटना से सम्बन्धित कुछ इकाइयों या व्यष्टियों को चुनकर उनका गहन अध्ययन किया जाता है। एक व्यष्टि या इकाई एक व्यक्ति, एक संस्था, एक सामाजिक समूह, एक समुदाय अथवा एक ग्राम हो सकता है। इसमें शोधार्थी को पक्षपात रहित होकर कार्य करना होता है।

(v) दार्शनिक अध्ययन (Philosophical Research)

शैक्षिक शोधों में दार्शनिक अध्ययनों की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इस प्रकार के अध्ययन मानव जीवन तथा उसके संसार की आधारभूत मान्यताओं के निर्धारण में महत्वपूर्ण होती है। वास्तव में दर्शन शैक्षिक नीतियों तथा प्रक्रियाओं के निर्धारण को प्रभावित करता है।

प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक दर्शन होता है जो उसके दृष्टिकोण, शिक्षा एवं उसकी नीतियों तथा धारणाओं के निर्माण में सहायक होता है।इसलिये व्यक्ति या देश या समाज के दर्शन के अध्ययन के लिये दार्शनिक शोध किये जाते हैं । इस निधि में विश्लेषणात्मक चिन्तन, अर्न्तदृष्टि तथा विचारों के संश्लेषण की क्षमताओं के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं।

बोध प्रश्न :–

1. गुणात्मक अनुसन्धान के कौन–कौन से प्रकार हैं –

....

....

....

2. नृ–शास्त्रीय अध्ययन से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

8.7 गुणात्मक अनुसन्धान में प्रदत्त संग्रह के उपकरण

गुणात्मक अनुसन्धानों में सूचनाओं या प्रदत्तों के संकलन के लिए मुख्यतः निम्न उपकरणों का उपयोग किया जाता है –

(i) साक्षात्कार

शिक्षाशास्त्र जैसे व्यावहारिक तथा सामाजिक शोधों में साक्षात्कार तकनीक एक महत्वपूर्ण तकनीक है। साक्षात्कार को मौखिक प्रश्नावली के भी रूप में जाना जाता है। साक्षात्कार मुख्यतः दो प्रकार का होता है– संरचित या मानकीकृत साक्षात्कार तथा असंरचित या अमानकीकृत साक्षात्कार। गुणात्मक अनुसन्धानों में प्रदत्त संकलन के उपकरण में इसका प्रयोग बहुतायत किया जाता है। परन्तु गुणात्मक अनुसन्धान में असंरचित साक्षात्कार का प्रयोग ज्यादा होता है।

(ii) प्रेक्षण

प्रेक्षण मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है– सहभागिक तथा असहभागिक अर्थात अध्ययन के सदस्य बनकर किया जाने वाला प्रेक्षण तथा समूह से बाहर रहकर किया जाने वाला प्रेक्षण। गुणात्मक अनुसन्धानों में दोनों प्रकार के प्रेक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु अनुसन्धान को विश्वसनीय बनाने के किए सहभागिक प्रेक्षण ज्यादा उपयुक्त माना जाता है।

(iii) अभिलेखीय विश्लेषण

इसमें अभिलेखों के प्रदत्त के रूप में लेकर उनका विश्लेषण कर समान एवं विपरीत कथन या शब्दों को लेकर संश्लेषण कर निष्कर्ष प्राप्त किये जाते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही गुणात्मक अनुसन्धान के एक उपकरण के रूप में व्यक्त किया जाता है। अभिलेख के अन्तर्गत व्यक्ति या घटना से सम्बन्धित लिखित साक्ष्य अर्थात संवाद, लेख, भाषण, या दस्तावेजों को लिया जाता है।

(iv) दृश्य – श्रव्य प्रदत्त विश्लेषण

इस प्रकार के उपकरण में सूचनाओं को निम्न के द्वारा प्रदत्त के रूप में संकलित कर उनका विश्लेषण किया जाता है– श्रव्य टेप, दृश्य टेप, फोटोग्राफ, कलाकृतियाँ, चित्र, पेन्टिंग, संज्ञानात्मक मानचित्र आदि।

(v) केन्द्रित समूह

इसमें विभिन्न समूहों से किसी घटना के बारे में असंरचचित साक्षात्कार के द्वारा प्रतिक्रियायें एकत्रित कर उनका विश्लेषण किया जाता है।

उपरोक्त अतिरिक्त समीपस्थ अध्ययन, अंग गतिक अध्ययन तथा स्ट्रीट नृ–शास्त्रीय अध्ययन भी गुणात्मक अनुसन्धान के उपकरण के रूप में जाने जाते हैं।

बोध प्रश्न –

गुणात्मक अनुसन्धान में प्रदत्त संकलन के किन्हीं तीन उपकरणों को लिखिये।

....

....

....

8.8 गुणात्मक अनुसन्धानों में प्रदत्त विश्लेषण की तकनीकें

गुणात्मक अनुसन्धानों में असम्भाविता प्रतिदर्शन विधियों जैसे –कोटा प्रतिदर्शन, प्रासंगिक प्रतिदर्शन, उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन, क्रमबद्ध प्रतिदर्शन, हिमकंदुक प्रतिदर्शन, संतृप्त प्रतिदर्शन, तथा घनीभूत प्रतिदर्शन विधियों का प्रयोग कर शोध ा की इकाइयों का चयन उद्देश्यानुरूप में कर पूर्व वर्णित उपकरणों का प्रयोग करके प्रदत्त संकलित किये जाते हैं। परन्तु प्रदत्तों की प्रकृति प्रयुक्त उपकरण या तकनीक पर निर्भर करती है। फिर भी ज्यादातर गुणात्मक अनुसन्धानों में प्रदत्तों की प्रकृति गुणात्मक रूप में होती है।

इस प्रकार से प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के तीन स्तर होते हैं –

(a) प्रदत्तों का संगठन

(b) प्रदत्तों का विवरण एवं

(c) प्रदत्तों का निर्वचन

प्राप्त प्रदत्तों को विभिन्न आधारों, वर्गों, तथा विशेषताओं के आधार पर संगठित कर उनका विवरण प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रदत्तों के निर्वचन के लिये गुणात्मक अनुसन्धानों में तीन प्रकार की विश्लेषण तकनीकों को प्रयोग किया जा सकता है–

(i) विषय–वस्तु विश्लेषण तकनीक

(ii) निगमनात्मक विश्लेषण तथा

(iii) तार्किक विश्लेषण

इन तीनों तकनीकों में विषयवस्तु विश्लेषण तकनीक का प्रयोग व्यवहारिक विज्ञानों में इस तकनीक की विशेषताओं के आधार पर बहुतायत से किया जाता है। निगमनात्मक विश्लेषण मानवशास्त्र में ज्यादा प्रयुक्त की जाती है जबकि तार्किक विश्लेषण का प्रयोग क्रास अध्ययनों में उपयोगी है। इसलिये महत्ता की दृष्टि से विषय वस्तु विश्लेषण को समझना ज्यादा आवश्यक है।

विषयवस्तु विश्लेषण तकनीक (Content Analysis Technique)

विषयवस्तु विश्लेषण को दस्तावेज विश्लेषण के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें शोधकर्ता अध्ययन किये जाने वाली घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में साक्षात्कार, प्रेक्षण या प्रश्नावली से प्राप्त विचारों को एकत्रित नहीं करता बल्कि ऐसी घटनाओं या व्यक्तियों द्वारा किये गये संचारों (communication) या उनके व्यवहारों के बारे में एकत्रित किये गये दस्तावेजों का विश्लेषण कर निष्कर्ष पर पहुँचता है। विषयवस्तु विश्लेषण को परिभाषित करते हुए **करलिंगर (Kerlinger)** ने कहा है "विषयवस्तु विश्लेषण चरों को मापने के लिये संचारों का एक क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा परिभाषात्मक ढंग से विश्लेषण एवं अध्ययन करने की एक विधि हैं।"

हालस्टी (Holsti) के अनुसार "विषयवस्तु विश्लेषण सूचनाओं के विशिष्ट गुणों को क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ ढ़ंग से पहचान करते हुये अनुमान लगाने की एक विधि है।"

बेरेलसन (Berelson) ने भी विषयवस्तु विश्लेषण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–"विषयवस्तु विश्लेषण संचारों की विषयवस्तु में सन्निहित वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित तथा परिमाणात्मक विवरण देने की एक शोध प्रविधि है।"

उपरोक्त से स्पष्ट है कि विषयवस्तु विश्लेषण–

(i) एक ऐसी प्रविधि है जिसमें संचार में निहित तथ्यों या विशेषताओं को पृथककर उसे अनुसन्धान प्रदत्त के रूप में तैयार किया जाता है।

(ii) यह एक वैज्ञानिक प्रविधि है।

(iii) इसमें व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों तरह के विषयवस्तु का विश्लेषण किया जाता है।

विषयवस्तु विश्लेषण के उद्देश्य –

विषयवस्तु विश्लेषण में प्रदत्तों के प्राथमिक स्रोतों में पत्र, पत्रिकायें, जनरल, आत्मकथा, डायरी, किताब, पाठयक्रम, न्यायालय के निर्णय, तस्वीर, फिल्म, कार्टून, आदि प्रमुख है। शोधार्थी इन स्रोतों से प्राप्त प्रदत्तों की विश्वसनीयता

की परख करता है तब उनका उपयोग करता है। इस तकनीक के कुछ विशेष उद्देश्य होते हैं। जो निम्न है–

(i) वर्तमान परिस्थितियों एवं प्रचलनों का वर्णन करना तथा उनकी व्याख्या करना।

(ii) लेखक के संप्रत्ययों, विश्वास, चिन्तन एवं उनकी लेखन शैली को जानना।

(iii) किसी घटना या प्रतिफल से सम्बन्धित विभिन्न कारकों को पहचानना एवं उनकी व्याख्या करना।

(iv) ऐसे विभिन्न संकेतों का विश्लेषण करना जिनसे विभिन्न संस्थाओं देशों या अन्य विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व होता है।

(v) पाठ्य पुस्तकों या अन्य एक जैसी पुस्तकों की प्रस्तुतीकरण की कठिनाई स्तर की पहचान करना।

(vi) छात्रों के कार्यों में विभिन्न तरह की त्रुटियों को विश्लेषण करना।

(vii) किसी पाठ्य वस्तु की प्रस्तुति में सम्बन्धित प्रचार एवं पूर्वाग्रह का मूल्यांकन करना।

(viii) विभिन्न विषयों या सस्याओं के तुलनात्मक महत्व को जानना।

विषयवस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया –

विषयवस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया को मूलतः तीन भागों में बॉटा जा सकता है–

(1) समष्टि को परिभाषित तथा वर्गीकृत करना –

विषयवस्तु विश्लेषण में सर्वप्रथम समष्टि को ठीक प्रकार से परिभाषित किया जाता है तथा उसका उपयुक्त ढ़ंग से वर्गीकरण किया जाता है। शोधकर्त्ता द्वारा जिस विषयवस्तु का विश्लेषण करना है, उसे स्पष्ट शब्दों में परिभाषित करके उसे पुनः छोटे–छोटे भागों में विभक्त कर दिया जाता है। उदाहरण के लिये कक्षा अनुशासन पर शिक्षक द्वारा दिखलाई गयी सख्ती के अनुशासन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिये शोधकर्ता वर्ग अनुशासन को चार महत्वपूर्ण श्रेणियों समय निष्ठा, ध्यान, पाठ बनाना तथा साथियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार में कमी में बॉट सकता है। इससे शोधकर्ता को परिकल्पना बनाना सरल हो जाता है।

(2) विश्लेषण की इकाई –

विषयवस्तु विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण कदम इकाई के रूप में विश्लेषण करना होता है। इन इकाइयों का सम्बन्ध सामग्री के संरचनात्मक पक्ष से होता है।

इकाई से तात्पर्य सामग्री का एक विशिष्ट संरचनात्मक अंश या भाग से होता है जिसे एक पद या एकांश समझकर किसी वर्ग के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है।

बेरेलसन ने इन इकाईयों को पाँच भागो में बाँटा है–

(i) शब्द (Words) -

शब्द विश्लेषण की सबसे छोटी इकाई होती है, परन्तु कभी–कभी इससे भी छोटी इकाई अक्षर का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये कोई शोधार्थी विद्यार्थियों की बोधशक्ति तथा शब्दों के स्वरूप के बीच के सम्बन्ध को जानना चाहता है तो वह शब्द को विश्लेषण की इकाई मानकर शब्दों के तीन भागों –आसान, साधारण तथा कठिन में बाँट सकता है। इस प्रकार से वह अपनी सूची के प्रत्येक शब्द को तीन भागों में बाँटकर तथा उन्हें छात्रों को देकर उनकी बोध ाशक्ति का अध्ययन कर सकता है।

(ii) विषय (Theme) -

विश्लेषण की दूसरी इकाई विषय है जो प्रायः एक वाक्य या एक प्रस्ताव के रूप में होता है।

(iii) एकांश (Item) -

किसी दिये हुये उद्दीपन के प्रति प्रयोज्य द्वारा की गयी सम्पूर्ण अनुक्रिया को ही एकांश कहा जाता है। जैसे प्रयोज्य द्वारा किसी चित्र को देखकर एक कहानी लिखना या लघु आत्मकथा या लघु रेडियो कार्यक्रम या लघु दूरदर्शन कार्यक्रम को विश्लेषण के एकांश के रूप में लिया जाता है।

(iv) स्वलक्षण (Character) -

स्वलक्षण से तात्पर्य साहित्यिक रचना में किसी व्यक्ति या पात्र से होता है तथा इस इकाई का प्रयोग लघु कहानियों के विश्लेषण में किया जाता है। इसीलिये साहित्यिक शोध के क्षेत्र में स्वलक्षण इकाई का प्रयोग ज्यादा किया जाता है।

(v) दिक्काल मापदण्ड (Space and time measures) -

इस इकाई का प्रयोग सामान्यतः मनोविज्ञान या शिक्षा के अनुसन्धानों में नहीं होता। यह ऐसी इकाई होती है जिसमें वस्तु का भौतिक माप किया जाता है। जैसे– दो वस्तुओं के बीच की दूरी को इंच की संख्या से व्यक्त करना, पेज संख्या, विचार विमर्श का समय, पैराग्राफ की संख्या आदि। इसका प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों में ज्यादा किया जाता है।

(3) परिमाणन (Quantification) –

विषयवस्त विश्लेषण का तीसरा भाग परिमाणन है। परिमाणन से आशय

विषयवस्तु विश्लेषण की वस्तुओं को अंक प्रदान करने की प्रक्रिया से होता है। उदाहरण के लिये किसी लेख के विश्लेषण में कहा जाये कि इसमें 4 पेज या 10 पैराग्राफ हे। परिमाणन की प्रक्रिया को सामान्यतः तीन प्रकार से किया जाता है। नामित मापन, क्रमिक मापन तथा रेंटिंग मापन।

विषयवस्तु विश्लेषण के लाभ –

विषयवस्तु विश्लेषण के निम्न लाभ हैं –

(i) इस विधि का कार्यक्षेत्र व्यापक है जिससे इसे विभिन्न तरह की सामग्रियों के अध्ययन में सरलता से प्रयुक्त किया जा सकता है।

(ii) विषयवस्तु विश्लेषण का प्रयोग आश्रित चर पर किसी प्रयोगात्मक हस्तक्षेप के पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन जैसी परिस्थितियों में भी किया जा सकता है।

(iii) विषयवस्तु विश्लेषण का प्रयोग प्रेक्षण की अन्य विधियों से प्राप्त प्रदत्तों की वैधता ज्ञात करने में किया जा सकता है।

(iv) सामाजिक संस्कृति के क्रमिक विकास के अध्ययन में प्रयोग

(v) विभिन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन में प्रयोग

विषय वस्तु विश्लेषण की सीमायें :–

उपरोक्त लाभों के बावजूद इसकी कुछ परिसीमायें भी है जो निम्नवत है–

(i) इस विधि से प्राप्त प्रदत्त अधिक विश्वसनीय नही होते तथा निष्कर्षो पर विभिन्न अनुसन्धानकर्ताओं में भी सहमति नहीं होती।

(ii) विषयवस्तु विश्लेषण में निष्कर्षो के सामान्यीकरण की समस्या होती है।

(iii) इस विधि में शोधकर्ता का अपना पूर्वाग्रह, विश्वास एवं स्थिराकृति आदि का विश्लेषण करते समय प्रभाव पड़ता है जिससे आत्मनिष्ठता उत्पन्न हो जाती है।

(iv) इस विधि का कार्य क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि जिन व्यक्तियों के लेख, दस्तावेज आदि किसी कारण उपलब्ध नहीं होते तो उनका विषयवस्तु विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

(v) इस विधि में सामान्यतः समय एवं श्रम अधिक लगता है।

बोध प्रश्न :–

1. गुणात्मक अनुसन्धान में प्रदत्त विश्लेषण की कौन–कौन सी तकनीकें हैं?

....

....

....

2. विषयवस्तु विश्लेषण से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

8.9 सारांश

इस इकाई में गुणात्मक अनुसन्धान के अर्थ, विशेषताओं, उद्देश्य एवं महत्व की चर्चा की गयी है। गुणात्मक अनुसन्धान के विभिन्न प्रकारों के साथ–साथ प्रदत्त संग्रह के उपकरण एवं प्रदत्त विश्लेषण की तकनीकों को भी स्पष्ट किया गया है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गुणात्मक अनुसन्धान शैक्षिक क्षेत्र में अनुसन्धान का एक महत्वपूर्ण प्रकार है जिसमें सीमित जनसंख्या, असंभाविक न्यायदर्शन, तथा विशिष्ट उपकरणों की सहायता से गहन अध्ययन किया जाता है। गुणात्मक अनुसन्धान के लिये विभिन्न पद जैसे नृशास्त्रीय अध्ययन, व्यष्टि अध्ययन, घटना–क्रिया विज्ञानपरक अध्ययन आदि का प्रयोग किया जाता है। गुणात्मक अनुसन्धानों में प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए विषयवस्तु विश्लेषण एक मुख्य तकनीक है। विषय वस्तु विश्लेषण में सूचनाओं के विशिष्ट गुणों को क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ ढ़ंग से पहचान करते हुये अनुमान लगाये जाते हैं। विषयवस्तु विश्लेषण के विभिन्न लाभ हैं लेकिन इसकी सीमायें भी है। जिनको इस इकाई में स्पष्ट किया गया है।

8.10 अभ्यास प्रश्न

1. गुणात्मक अनुसन्धान के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।
2. अनुसन्धान के क्षेत्र में गुणात्मक अनुसन्धान का क्या महत्व है ?
3. गुणात्मक अनुसन्धान के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
4. गुणात्मक अनुसन्धान में प्रदत्त संग्रह के कौन–कौन से उपकरण हैं ?
5. गुणात्मक अनुसन्धान में विषयवस्तु विश्लेषण तकनीक की प्रक्रिया को बताइये।

8.11 चर्चा के बिन्दु

इस इकाई में गुणात्मक अनुसन्धान के अर्थ, विशेषतायें एंव महत्वं से यह

जांचा कि यह एक महत्वपूर्ण अनुसन्धान विधि है। बावजूद इसके शैक्षिक क्षेत्र में गुणात्मक अनुसन्धान, मात्रात्मक अनुसन्धान के सापेक्ष कम होते हैं क्यों ? गुणात्मक अनुसन्धान सिद्वान्तों के निरूपण में सहायक होते हैं। शैक्षिक क्षेत्र में नवीन सिद्धान्तों की आवश्यकता होते हुए भी सार्थक प्रयासों का अभाव दिखाई पड़ता है। ऐसा क्यों ? इन्हें कैसे बढ़ाया जा सकता है ?

4.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Patton, N. Q (1990) : "Qualitative Evaluation and Research Method," Newburg Park, Colif ; Sage Publications.

Best, John W & Kahn : "Research in Education" Seventh Edition, Prentice Hall of

Jamess (1995) India Private Ltd. New Delhi.

Koul, Lokesh (2003) : "Methodology of Educational Research" Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.

सिंह, अरूण कुमार (2009) : "मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ" मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली।

MSW-105

शोध विधियां तथा सांख्यिकी

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University

खण्ड

3

आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

इकाई- 9

परीक्षण 105

इकाई- 10

साक्षात्कार एवं मापनी विधियां 115

इकाई- 11

प्रश्नावली एवं व्यक्ति- अध्ययन विधि 126

इकाई- 12

समाजमिति प्रविधि 135

परामर्श समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता -कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव - सचिव

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 एस0 सी0 अग्रवाल	शिक्षाशास्त्र विभाग, सी0एस0जे0एम0, विश्वविद्यालय, कानपुर

लेखक

डॉ0 प्रदीप कुमार पाण्डेय	उपनिदेशक/ उपाचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक–कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

शोध विधियाँ तथा सांख्यिकी

खण्ड-1 शोध का अर्थ, आवश्यकता, समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इकाई-01 शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता

इकाई-02 शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

इकाई-03 शोध परिकल्पना

इकाई-04 शोध प्रतिचयन एवं आंकड़ों का प्रतिचयन

खण्ड-2 अनुसन्धान के प्रकार

इकाई-05 ऐतिहासिक अनुसन्धान

इकाई-06 वर्णनात्मक अनुसन्धान

इकाई-07 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

इकाई-08 गुणात्मक अनुसन्धान

खण्ड-3 आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

इकाई-09 परीक्षण

इकाई-10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ

इकाई-11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति-अध्ययन विधि

इकाई-12 समाजमिति प्रविधि

खण्ड-4 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इकाई-13 केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें

इकाई-14 सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र

इकाई-15 सांख्यिकी अनुमान का आधार, टी-परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

इकाई-16 अप्राचलिक सांख्यिकी

खण्ड- परिचय -3 : आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

किसी अनुसन्धान कार्य में समस्या समाधान के लिए पर्याप्त एवं विश्वसनीय सूचनाओं को प्राप्त करना होता है। यही सूचनायें समंक या आंकड़े कहलाते हैं। अनुसन्धान हेतु आंकड़ों का संग्रह करने की नई तकनीकियों एवं उपकरण है। अनुसन्धान हेतु आंकड़ों का संग्रह करने की नई तकनीकियों एवं उपकरण है। अनुसन्धान के उद्देश्य के आधार पर शोधकर्ता आंकड़े संग्रह करने के लिये उपकरणों एवं प्रतिविधियों का चयन करता है। इस खण्ड-3 में आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियों का विवेचन इकाई-09 परीक्षण, इकाई-10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ, इकाई-11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति अध्ययन विधि तथा इकाई-12 समाजमिति प्रविधि में किया गया है।

परीक्षण से तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह को ऐसी परिस्थितियों में रखने से होता है जिसमें वह अपने वास्तविक गुणों को प्रकट कर दे। व्यक्तियों के विभिन्न गुणों या विशेषताओं को जानने के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। जैसे बुद्धि मापने के लिए बुद्धि परीक्षण, अभिक्षमता मापने के लिये अभिक्षमता परीक्षण तथा रूचि मापने के लिए रूचि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। बुद्धि, रूचि या अभिक्षमता मापने के देश और विदेश में विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का निर्माण हुआ है।

साक्षात्कार दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा उद्देश्य विशेष से किये गये वार्तालाप को कहते हैं। यह एक प्रकार की मौखिक प्रश्नावली है। रचना के आधार पर इसके दो प्रकार संचरित साक्षात्कार एवं असंरक्षित साक्षात्कार होते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता की मुख्य भूमिका होती है इसलिए उसमें कुछ विशेष गुणों का होना आवश्यक है। जबकि मापनी विधियों का प्रयोग किसी व्यक्ति में उपस्थित गुणों की मात्रा, उसकी तीव्रता तथा आवृत्तियों से सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने का एक साधन होती है। मापनी विधियाँ भी कई प्रकार की होती है, परन्तु विधियों की कुछ सीमायें होती हैं।

अनुसन्धान कार्यों में बहुतायत से प्रयोग वाला उपकरण्म प्रश्नावली है। इसका प्रयोग वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है। इसकी अपनी विशेषतायें होती हैं। यह प्रश्नों या कथनों का एक समूह होती है जिन्हें बन्द या खुले प्रश्नों के रूप में रखा जा सकता है जबकि व्यक्ति अध्ययन एक आंकड़े विभिन्न पद होते हैं जिसके आधार पर किसी व्यक्ति या संस्था विशेष का अध्ययन किया जाता है।

समाजमिति प्रविधियों का प्रयोग ऐसे शैक्षिक अनुसन्धान में किया जाता है जहाँ अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक समूहों के गठन, सामाजिक सम्बन्धों, गुटों, किसी समूह विशेष में लोकप्रिय व्यक्ति का पता लगाना होता है। इस तकनीक में सोशियोग्राम, सामाजिक माप मैट्रिक्स, समाजमितीय सूचकांक, गेस-हू-तकनीक तथा सामाजिक दूरी स्केल तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है।

इकाई –09 परीक्षण (Test)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 बुद्धि परीक्षण

- 9.3.1 बुद्धि मापन की आवश्यकता
- 9.3.2 बुद्धि मापन की तकनीकें
- 9.3.3 बुद्धि परीक्षणों के प्रारूप
  - क. प्रशासन के आधार पर बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
  - ख. विषयवस्तु एवं भाषा के आधार पर बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
- 9.3.4 बुद्धि परीक्षणों के उपयोग

9.4 अभिक्षमता परीक्षण

- 9.4.1 अभिक्षमता – एक परिचय
- 9.4.2 अभिक्षमता का मापन
- 9.4.3 अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार
- 9.4.4 भारत में निर्मित प्रमुख अभिक्षमता परीक्षण

9.5 रूचि परीक्षण

- 9.5.1 रूचि परीक्षण– एक परिचय
- 9.5.2 रूचियों के प्रकार
- 9.5.3 रूचि मापन के प्रकार
  - क. आत्मनिष्ठ विधियां
  - ख. वस्तुनिष्ठ विधियां
- 9.5.4 भारत में रूचि परिक्षणों का विकास

9.6 सारांश

9.7 अभ्यास प्रश्न

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उद्देश्य, मापी जाने वाली योग्यता की परिभाषा, विशिष्टीकरण तालिका, पद विश्लेषण के आंकड़े, प्रशासित करने व अंकन की विधियाँ, विश्वसनीयता, वैधता तथा मानक आदि का वर्णन परीक्षण निर्देशिका में किया जाता है। परीक्षण निर्देशिका की सहायता से कोई भी अन्य व्यक्ति परीक्षण

के सम्बन्ध में विभिन्न सूचनायें प्राप्त कर सकते हैं तथा परीक्षण का उपयोग कर सकते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों की शैक्षिक एवं मानसिक योग्यता में भिन्नता का विशेष महत्व है। शैक्षिक एवं मानसिक योग्यता में छात्रों की भिन्नता को ध्यान में रखकर ही अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्य को नियोजित करना होता है। छात्रों की शैक्षिक एवं मानसिक क्षमता में अन्तर होने का मुख्य कारण उनकी बुद्धि व अन्य विशेषताओं में अन्तर होता है। वास्तव में प्रत्येक बालक अन्य बालकों से बुद्धि व अन्य विशेषताओं की दृष्टि से कुछ न कुछ भिन्न अवश्य होता है।

9.2 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप--

1. बुद्धि मापन की आवश्यकता को जान सकेंगे।
2. अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार को बता सकेंगे।
3. रूचि परीक्षण के प्रकार से अवगत हो सकेंगे।
4. भारत में रूचि परीक्षणों के विकास को समझ सकेंगें।

9.3 बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)

परीक्षण वे उपकरण है जो व्यक्ति के विभिन्न गुणो का मापन करते हैं। परीक्षण से तात्पर्य किसी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में रखने से है जो उसके वास्तविक गुणों को प्रकट कर दे। जैसे –बुद्धि मापने के लिए बुद्धि परीक्षण, रूचि मापने के लिए परीक्षण, व्यक्तित्व के लिये व्यक्तित्व परीक्षण तथा अभिक्षमता मापने के लिए अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को जिस रूप में देखा व समझा उसी रूप में उसको परिभाषित कर दिया। "बुद्धि" क्या है ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर मनोवैज्ञानिकों में मतभेद रहा है। स्टर्न, बर्ट तथा क्रूज ने बुद्धि को समायोजन करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को सीखने की योग्यता के रूप में समझा तथा कुछ ने बुद्धि को अमूर्त चिन्तन की क्षमता के रूप में जाना।

9.3.1 बुद्धि मापन की आवश्यकता –

वैयक्तिक भिन्नता के फलस्वरूप बुद्धि मापन की आवश्यकता से अनुभव किया गया। बुद्धि परीक्षण का वर्तमान दौर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रारम्भ हुआ था। सन् 1905 में बिने ने अपने सहयोगी साइमन के साथ मिलकर आधुनिक प्रकार का सबसे पहला सफल बुद्धि परीक्षण किया था। बुद्धि मापन के ऐतिहासिक विकासक्रम को तीन काल खण्डों में बाँटा जा सकता है – बिने–पूर्वकाल, बिने –काल तथा बिने–उत्तर काल ।

9.3.2 बुद्धि मापन की तकनीकें :–

बुद्धि परीक्षण के परिणाम अंकों के रूप में प्राप्त होते हैं परन्तु केवल इन अंकों के आधार पर बुद्धि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। बुद्धि परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों को मानसिक आयु में बदलकर फिर उसकी सहायता से बुद्धि लब्धि की गणना की जाती है। मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि ही किसी व्यक्ति की उच्च बुद्धि, सामान्य बुद्धि या निम्न बुद्धि को बताती है।

मानसिक आयु :– सर्वप्रथम इसका प्रयोग बिने ने 1908 में किया था। वास्तव में मानसिक आयु किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके बौद्धिक कार्यों द्वारा ज्ञात की जाती है तथा किसी आयु विशेष में उसकी अपेक्षा होती है।

वास्तविक आयु :– उसी प्रकार शारीरिक आयु से तात्पर्य व्यक्ति की वास्तविक आयु या उसके जन्म से वर्तमान समय की अवधि से है। इसका आधार बालक की जन्मतिथि का स्कूल प्रवेश रिकार्ड हो सकता है।

बुद्धि लब्धि :– मानसिक आयु के आधार पर स्टर्न तथा टर्मन ने "बुद्धि–लब्धि" का प्रत्यय प्रतिपादित किया। बुद्धि लब्धि ज्ञात करने के लिये मानसिक आयु को वास्तविक आयु से भाग दिया जाता है तथा निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\text{बुद्धिलब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

यदि किसी बालक की मानसिक आयु 12 वर्ष और शारीरिक आयु 10 वर्ष है तो उसकी बुद्धिलब्धि होगी–

$$I.Q. = \frac{12}{10} \times 100 = 120$$

जब मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है तो बालक प्रखर बुद्धि वाला समझा जाता है तथा जब मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है तो वह मन्द बुद्धि का बालक समझा जाता है। यदि दोनों बराबर हो तो वह औसत बुद्धि वाला बालक समझा जाता है।

टरमैन ने बुद्धिलब्धि के वितरण की तालिका तैयार की। सामान्य तौर पर किसी बड़े समूह के लिये बुद्धिलब्धि का वितरण सामान्य प्रायिकता वक्र का अनुगमन करता है।

बुद्धिलब्धि वितरण का उदाहरण

बुद्धिलब्धि सीमाएं	वर्ग
130 से अधिक	प्रतिभाशाली (Genius)
121 – 130	प्रखर बुद्धि (Superior)
111 – 120	तीव्र बुद्धि (Above Average)
91 – 110	सामान्य बुद्धि (Average)
81 – 90	मन्द बुद्धि (Feeble minded)
71 – 80	अल्प बुद्धि (Dull)
71 से कम	जड़ बुद्धि (Idiot)

93.3. बुद्धि परीक्षणों के प्रारूप :–

(अ) प्रशासन के आधार पर बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं।

(I) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intellignece Test)

(II) सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)

(I) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण :– एक समय में एक ही व्यक्ति पर प्रशासन किया जाने वाला परीक्षण व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण कहलाता है। इसके प्रशासन में एक कुशल दक्ष तथा प्रशिक्षित परीक्षणकर्ता की आवश्यकता होती है। किसी आयु समूह हेतु प्रश्नों का चयन सरलता से कठिनता की ओर किया जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर बालक मौखिक रूप से या निष्पादन के द्वारा देता है। इन प्राप्त प्रत्युत्तरों के आधार पर बुद्धिमापन का प्रयास किया जाता है। बिने–साइमन बुद्धि परीक्षण, स्टैनफोर्ड–टरमन संशोधन, वैश्लर बुद्धि परीक्षण, गुडएनफ ड्रा ए मैन परीक्षण व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण के प्रमुख उदाहरण हैं।

(II) सामूहिक बुद्धि परीक्षण – सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के द्वारा एक ही समय में व्यक्तियों के विशाल समूहों पर प्रशासित किया जा सकता है। सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का प्रारम्भ द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में प्रारम्भ हुआ। सैनिकों की भर्ती के लिए ऐस बुद्धि परीक्षण की आवश्यकता थी जो एक साथ अनेक व्यक्तियों पर प्रशासित किया जा सके। इसी कारण आर्मी अल्फा परीक्षण तथा आर्मी बीटा परीक्षणों का निर्माण हुआ। आर्मी अल्फा परीक्षण अंग्रेजी भाषा जानने वालों के लिये तथा आर्मी बीटा परीक्षण अंग्रेजी न जानने वालों व अशिक्षितों के लिये था। इस प्रकार के परीक्षण का प्रशासन तथा फलांकन सरल होता है तथा सामान्य प्रशिक्षण के उपरान्त कोई भी सामान्य व्यक्ति इनका प्रशासन कर सकता है। एस. जलोटा, आर. के. टण्डन व प्रयाग मेहता के सामान्य मानसिक परीक्षण

सामूहिक बुद्धि परीक्षण के उदाहरण है।

(ब) विषय वस्तु एवं भाषा के आधार पर बुद्धि परीक्षणों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है –

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

1. **शाब्दिक बुद्धि परीक्षण** :– शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में शब्दों या भाषा के माध्यम से प्रश्नों या समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है तथा परीक्षार्थी भी शब्दों या भाषा के माध्यम से इन प्रश्नों या समस्याओं का उत्तर प्रदान करते हैं। शाब्दिक परीक्षण प्रायः कागज–कलम परीक्षण या लिखित परीक्षण होते हैं। शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। बिने–साइमन परीक्षण तथा जलोटा, टंडन व मेहता के बुद्धि परीक्षण शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण हैं।

2. **अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण** :– अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में शब्दों या भाषा का प्रयोग न करके चित्रों या अन्य स्थूल वस्तुओं के माध्यम से समस्यायें प्रस्तुत की जाती है। चित्रों या स्थूल सामग्री की सहायता से प्रश्नों की रचना की जाती है। परीक्षार्थी को सही चित्र या वस्तु छांटकर अथवा कुछ क्रिया करके अपने उत्तर को व्यक्त करना होता है। अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के –(i). कागज–कलम परीक्षण (Paper Pencil Tests) तथा (ii) निष्पादन परीक्षण (Performance Tests) के रूप में हो सकते हैं। रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स कागज–कलम प्रकार का तथा भाटिया बैटरी निष्पादन प्रकार का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण है।

9.3.4 बुद्धि परीक्षणों के उपयोग :–

1. वैयक्ति विभिन्नताओं के अध्ययन में
2. शैक्षिक उपयोग में
3. व्यावसायिक उपयोग में
4. अनुसन्धान के क्षेत्रों के उपयोग में
5. व्यावहारिक जीवन के उपयोग में
6. नैदानिक उपयोग में

9.4 अभिक्षमता परीक्षण (Aptitude Test)

9.4.1 अभिक्षमता–

एक परिचय – अभिक्षमता का अर्थ किसी व्यक्ति की उस तत्परता, योग्यता, क्षमता या रूझान से है जो किसी कार्य या व्यवसाय में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है तथा जिसका प्रस्फुदन शिक्षा एवं अभ्यास के द्वारा होता है। ऐसी प्रतिभा योग्यता या क्षमता प्रायः जन्मजात होती है।

विंघम के शब्दों में अभिक्षमता "किसी विशिष्ट प्रशिक्षण के उपरान्त दिए गये क्षेत्र में कुछ ज्ञान का कौशल या प्रतिक्रियाओं के समुच्चय को अर्जित करने की किसी व्यक्ति की योग्यता को लाक्षणिक रूप से व्यक्त करने वाली विशेषता अथवा दशाओं का समुच्चय अभिक्षमता हैं।

विंघम ने अभिक्षमता की पांच प्रमुख विशेषताएं बतायी हैं –

1. किसी व्यक्ति की अभिक्षमता वर्तमान गुणों का समुच्चय है जो उसके भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है।
2. अभिक्षमता किसी कार्य को करने में उसकी समुपयुक्तता (Fitruss) के भाव को व्यक्त करती है।
3. अभिक्षमता किसी मूर्त वस्तु या योग्यता का नाम न होकर एक अमूर्त प्रत्यय है जो व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के एक विशेष गुण को व्यक्त करती है।
4. अभिक्षमता वर्तमान में होने पर भी भविष्य की क्षमताओं का प्रतीक होती है।
5. अभिक्षमता का रूचि, योग्यता एवं सन्तुष्टि से गहरा सम्बन्ध होता है।

9.4.2 अभिक्षमता का मापन :–

अभिक्षमता के मापन के लिए अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। फ्रीमैन के शब्दों में – "अभिक्षमता परीक्षण वह है जिसकी रचना किसी विशेष प्रकार की तथा किसी सीमित क्षेत्र की क्रिया करने की मूलयोग्यता (Potential ability) का मापन करने के लिये की जाती है।

9.4.3 अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार –

अभिक्षमता परीक्षण तीन प्रकार के होते हैं:

1. **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण** :– इसके द्वारा सामान्य कार्यक्षमता का मापन किया जाता है। सामान्य अभिक्षमता परीक्षण प्रायः व्यक्ति की सामान्य बुद्धि, मानसिक योग्यता या सीखने की योग्यता का मापन करते हैं। इस वर्ग में सामान्य बुद्धि परीक्षण या मानसिक योग्यता परीक्षण जैसे सामान्य प्रकृति के मापन उपकरण रखे जाते हैं।
2. **भेदक अभिक्षमता परीक्षण** :– इस प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण में अनेक परीक्षणों का समूह होता है। ये श्रृंखला प्रकार के परीक्षण होते हैं। ये विभिन्न परीक्षण या उप–परीक्षण व्यक्ति की भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की अभिक्षमताओं को इंगित करती है। जिन पर व्यक्ति के द्वारा प्राप्त अंकों का तुलनात्मक अध्ययन करके व्यक्ति की अधिक अभिक्षमता वाले क्षेत्रों को ज्ञात कर लिया जाता है। ये परीक्षण व्यक्ति की विभिन्न अभिक्षमताओं में विभेद करता है। इसलिये इसे भेदक अभिक्षमता परीक्षण (Differential Aptitude Test) कहते हैं। इस प्रकार के परीक्षण में मुख्यतः शाब्दिक

बोध, आंकिक बोध, यान्त्रिक बोध, लिपिकीय क्षमता आदि से सम्बन्धित उप–परीक्षण होते हैं।

विभेदक अभिक्षमता परीक्षण (DAT), **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण बैटरी** (GATB), अभिक्षमता सर्वेक्षण (A.S.) **तथा अभिक्षमता वर्गीकरण परीक्षण** (ACT) आदि कुछ प्रमुख विदेशी अभिक्षमता परीक्षण है।

3. **विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण** – किसी विशिष्ट क्षेत्र में व्यक्ति की अभिक्षमता का मापन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। विशिष्ट क्षेत्रों में यान्त्रिक, संगीत, शिक्षण व चिकित्सा के क्षेत्र में योग्यताएं आती हैं। इसके लिए यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण, संगीत अभिक्षमता परीक्षण, शिक्षण अभिक्षमता परीक्षण तथा चिकित्सीय अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए कुछ विदेशी परीक्षण निम्नवत है–

   i. होर्न कला अभिक्षमता सूची
   ii. मियर कला परीक्षण
   iii. ग्रेवस डिजाइन निर्णय परीक्षण
   iv. संगीत अभिक्षमता प्रोफाइल
   v. सीशोर का संगीत प्रतिभा परीक्षण
   vi. विंग का संगीत बुद्धि प्रमापीकृत परीक्षण
   vii. मिनिसोटा लिपिकीय परीक्षण
   viii. बेनेट के यान्त्रिक बोध के परीक्षण

9.4.4 भारत में निर्मित प्रमुख अभिक्षमता परीक्षण –

भारतवर्ष में भी कुछ अभिक्षमता परीक्षणों का निर्माण किया गया। यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण, लिपिकीय अभिक्षमता परीक्षण, वैज्ञानिक अभिक्षमता परीक्षण माला, अध्यापन अभिक्षमता परीक्षण आदि का निर्माण किया गया।

9.5 रूचि परीक्षण (Interest Test)

9.5.1 रूचि परीक्षण–एक परिचय

किसी वस्तु, व्यक्ति, प्रक्रिया, तथ्य, कार्य आदि को पसन्द करने या उसके प्रति आकर्षित होने, उस पर ध्यान केन्द्रित करने या उससे संतुष्टि पाने की प्रवृत्ति को ही रूचि कहते हैं। रूचि का व्यक्ति की योग्यताओं से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है परन्तु जिन कार्यों में व्यक्ति की रूचि होती है वह उसमें अधिक सफलता प्राप्त करता है। रूचिया जन्मजात भी हो सकती हैं तथा अर्जित भी हो सकती है। गिलफोर्ड के अनुसार – "रूचि किसी क्रिया, वस्तु या व्यक्ति पर ध्यान देने, उसके द्वारा आकर्षित होने, उसे पसन्द करने तथा उससे संतुष्टि पाने की प्रवृत्ति है।"

9.5.2 रूचियों के प्रकार –

सुपर के अनुसार रूचियां चार प्रकार की होती हैं।

1. **अभिव्यक्त रूचियाँ** – जिन्हें व्यक्ति की स्वयं उल्लिखित क्रियाओं, कार्यो या पसन्दों के आधार पर जाना जाता है।
2. **प्रदर्शित रूचियाँ** – जिन्हें व्यक्ति या बालक की विभिन्न क्रियाओं से पहचाना जा सकता है।
3. **आंकलित रूचियाँ**– जिन्हें विभिन्न सम्प्राप्ति परीक्षणों पर व्यक्ति के द्वारा अर्जित प्राप्तांको के आधार पर आंकलित किया जाता है।
4. **सूचित रूचियाँ**– जिन्हें प्रमापीकृत रूचि सूचियों की सहायता से मापा जाता है।

9.5.3 रूचि मापन के प्रकार –

रूचि मापन की मुख्य रूप से दो विधियां हैं –

1. आत्मनिष्ठ विधियां
2. वस्तुनिष्ठ विधिया

1. **आत्मनिष्ठ विधियां** :– इन विधियों में अवलोकन तथा साक्षात्कार आता है। इन विधियों में व्यक्ति की रूचि को जानने हेतु विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को पूछा जाता है। कुछ अनुसन्धानकर्ताओं का यह मानना है कि इस प्रकार से ज्ञात की गयी रूचियाँ काल्पनिक तथा अविश्वसनीय होती है। अवलोकन के द्वारा व्यक्ति की प्रदर्शित रूचियों का मापन किया जाता है। इन विधियों में व्यक्ति उन्हीं में अपनी रूचि प्रदर्शित करता है जिसे सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है।
2. वस्तुनिष्ठ विधियां :– **इन विधायों में मुख्य रूप से रूचि सूचियां आती है। रूचि सूचियां वास्तव में रूचियों के मापन के लिए औपचारिक ढ़ंग से विकसित किए गये मापन उपकरण हैं। रूचि सूचियों को तैयार करने में प्रायः दो भिन्न–भिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।**
   - i. **निरपेक्ष पसन्द–नापसन्द** :– इस प्रकार की रूचि सूचियों में व्यवसायों, क्रियाओं, वस्तुओं, मनोरंजन साधनों, अध्ययन विषयों आदि का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है तथा व्यक्तियों से यह पूछा जाता है कौन से व्यवसाय, वस्तु, अध्ययन विषय उन्हें पसन्द हैं, कौन–कौन से नापसन्द हैं तथा किन–किन के प्रति उदासीन है।
   - ii. **तुलनात्मक पसन्द–नापसन्द** :– इसमें दो–दो, तीन–तीन या **चार–चार के समूहों में व्यवसायों, अध्ययन विषयों, क्रियाओं, वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है।**

रूचि प्रशिक्षण के क्षेत्र में सर्वप्रथम मानकीकृत परीक्षण का निर्माण सन् 1914 में कर्नीगी इंस्टीटयूट आफ टेक्नोलॉजी द्वारा किया गया। जी.एफ.कूडर द्वारा निर्मित कूडर प्राथमिकता रिकार्डस व्यावसायिक व व्यक्तिगत प्रपत्र (Kudar's Preferene Records – Vocational and Personal Forms) तथा स्ट्रांग व्यावसायिक रूचि प्रपत्र का प्रयोग मुख्य रूप से रूचि मापन के लिए प्रयोग किया जाता है।

9.5.4 भारत में रूचि परीक्षणों का विकास :–

सर्वप्रथम यह कार्य 1956 में इलाहाबाद साइकोलाजिकल ब्यूरों ने हाईस्कूल विद्यार्थियों के लिए कूडर रूचि प्रपत्र के आधार पर एक व्यावसायिक रूचि प्रपत्र का निर्माण किया। यह सामूहिक रूचि परीक्षण हिन्दी भाषा में हैं। 1958 में स्ट्रांग के व्यावसायिक रूचि प्रपत्र का भारतीय परिस्थियों में अनुकूलन करने का सर्वप्रथम प्रयास वंशगोपाल सिगरन ने किया। एस0चटर्जी का अशाब्दिक प्राथमिकता रिकार्ड (Chatterji No.-1 Verbal Preferential Record), तथा एस0पी0 कुलश्रेष्ठ के शैक्षिक रूचि प्रपत्र (Edcational Interest Form) व व्यावसायिक रूचि प्रपत्र (Vocational Interest Forms) आदि का प्रयोग रूचि मापन के लिए किया जाता है।

9.6 सारांश

व्यक्ति के विभिन्न गुणों के मापन के लिये विभिन्न प्रकार के परीक्षण प्रयोग किये जाते हैं। इन परीक्षणों के निर्माण की एक विशेष प्रक्रिया है। शैक्षिक क्षेत्र में व्यक्तियों या छात्रो की बुद्धि, अभिक्षमता तथा रूचियों के जानने की विशेष आवश्यक पड़ती है। जिससे तदनुसार उनकी आवश्यकता के अनुरूप उन्हें निर्देशन एवं परामर्श दिया जा सके तथा उनकी उचित शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। इस इकाई के अन्तर्गत बुद्धि परीक्षण, रूचि परीक्षण तथा अभिक्षमता परीक्षणों का वर्णन किया गया है। देश तथा विदेश में निर्मित विभिन्न बुद्धि परीक्षण, रूचि परीक्षण तथा अभिक्षमता परीक्षणों को भी इस इकाई में बताया या है।

क्षमता परीक्षण आदि का निर्माण किया गया।

9.7 अभ्यास प्रश्न

1. बुद्धि परीक्षण से आप क्या समझते हैं ?
2. अधिक्षमता परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
3. रूचि का क्या अर्थ है ? रूचि मापन के विभिन्न परीक्षणों का वर्णन कीजिये।
4. बुद्धि लब्धि के प्रत्यय को स्पष्ट कीजिये।
5. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकार कौन–कौन से हैं ? वर्णन कीजिये।

क्षमता परीक्षण आदि का निर्माण किया गया।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेस्ट जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल 1997।

कौल लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, 2005।

भटनागर, आर0पी0 : शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

गुप्ता, एस0पी0 : **आधुनिक मापन और मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 201001**

इकाई – 10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 साक्षात्कार – एक परिचय

10.4 साक्षात्कार के प्रकार

10.5 अच्छे साक्षात्कारकर्ता के गुण

10.6 साक्षात्कार के लाभ एवं परिसीमायें

10.7 साक्षात्कार की वैधता तथा विश्वसनीयता

10.8 मापनी विधियाँ–एक परिचय

10.9 निर्धारण मापनी

10.10 निर्धारण मापनी का उपयोग एवं सीमायें

10.11 निर्धारण मापनी के उन्नयन हेतु सुझाव

10.12 सारांश

10.13 अभ्यास प्रश्न

10.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

शैक्षिक क्षेत्र में अनुसन्धान के साथ–साथ विभिन्न उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये आवश्यक सूचनाओं को साक्षात्कार तथा मापनी विधियों द्वारा एकत्रित किया जाता है। इन उपकरणें से मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार आंकड़े एकत्र किये जा सकते है। साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्ता को उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्य करना पड़ता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता की मुख्य भूमिका होती है, इसलिये यह एक आत्मनिष्ठ उपकरण माना जाता है। जबकि मापनियाँ एक जाँच सूची होती है, जो विशेषताओं एवं गुणों की उपस्थिति या अनुपस्थिति को बताती है। साक्षात्कार एंव मापनी विधियाँ दोनो की अपनी–अपनी विशेषतायें तथा सीमायें हैं। इसलिये इनके निर्माण एवं प्रयोग में उद्देश्यों के साथ–साथ सीमाओं का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

1. साक्षात्कार के प्रत्यय तथा उसके विभिन्न रूपों को समझ सकेंगे।
2. साक्षात्कार लाभों को जान सकेंगे।

3. साक्षात्कार की वैधता एवं विश्वसनीयता को बढ़ाने के योग्य बन सकेंगें।
4. विभिन्न मापनी विधियों से अवगत हो सकेंगे।
5. निर्धारण मापनी के विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे।
6. साक्षात्कार तथा माापनी विधियों की सीमाओं से परिचित हो सकेंगे।

10.3 साक्षात्कार – एक परिचय (Interview : An Introduction)

सामान्यतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा किसी विशेष उद्देश्य से आमने–सामने की गयी बातचीत को साक्षात्कार कहा जाता है। साक्षात्कार एक प्रकार की मौखिक प्रश्नावली है जिसमें हम किसी भी व्यक्ति के विचारों और प्रतिक्रियाओं को लिखने के बजाय उसके सम्मुख रहकर बातचीत करके प्राप्त करते हैं। साक्षात्कार एक आत्मनिष्ठ विधि है इसके माध्यम से प्राप्त सूचनाओं की सार्थकता एवं वैधता साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर करती है। सूचना संकलन की इस विधि के प्रयोग में साक्षात्कारकर्ता के लिए दक्षता अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि साक्षात्कार से प्राप्त आंकड़े सरलता से पक्षपातपूर्ण बन सकते हैं। साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता वार्तालाप के साथ–साथ शाब्दिक के अर्थपूर्ण तथा अशाब्दिक प्रतिक्रयाओं (इशारा करना तथा मुखमुद्रा) का भी प्रयोग करता है। साक्षात्कार को विद्वानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है–

गुड् एवं हैट के अनुसार – " किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।"

डेजिन ने साक्षात्कार को इस प्रकार परिभाषित किया है – "साक्षात्कार आमने–सामने किया गया एक संवादोचित आदान–प्रदान है जहां एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ सूचनाएं प्राप्त करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सभी प्रकार के साक्षात्कारों में निम्नलिखित तीन विशेषताएं पायी जाती हैं।

1. दो व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध।
2. एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने का साधन।
3. साक्षात्कार से सम्बन्धित दोनों व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को साक्षात्कार के उद्देश्य के विषय में संज्ञान।

साक्षात्कार के तीन प्रमुख अवयव होते हैं –

1. साक्षात्कारकर्त्ता
2. साक्षात्कार हेतु प्रश्न
3. साक्षात्कार देने वाला

दो व्यक्तियों के बीच यदि बातचीत निरूद्देश्य है तो उसे साक्षात्कार नहीं कहा जा सकता।

10.4 साक्षात्कार के प्रकार

शोध वैज्ञानिकों ने साक्षात्कार के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया है। साक्षात्कार को मूलतः कार्य या उद्देश्य के आधार पर तथा रचना के आधार पर विभिन्न भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

कार्य या उद्देश्य के आधार पर साक्षात्कार के मुख्य निम्नाकित प्रकार बताए गये हैं –

1. चयनात्मक साक्षात्कार –

जब साक्षात्कार का प्रयोग किसी भी जीविका में नवीन नियुक्ति हेतु चयन के लिए किया जाता है तो इस प्रकार के साक्षात्कार को चयनात्मक साक्षात्कार कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार प्रदाता से उस जीविका में उपयुक्तता से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। साक्षात्कारकर्ता कुछ ऐसे प्रश्न पूछता है जिसके आधार पर साक्षात्कार प्रदाता की अभिवृत्ति, अभिक्षमता, योग्यताओं, आचरण आदि के बारे में आसानी से जाना जा सकता है। इस तरह के साक्षात्कार का मूल उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि साक्षात्कार प्रदाता कहां तक अपनी अभिवृत्ति, अभिक्षमता, योग्यताओं के आधार पर अमुक नौकरी के लिये योग्य होगा।

2. शोध साक्षात्कार –

इस प्रकार के साक्षात्कार में किसी विषय पर विभिन्न व्यक्तियों के विचारों को जानने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति की रूचि उन तथ्यों में होती है जो कि साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति की रूचि उन तथ्यों में होती है जो कि साक्षात्कार देने वाले के विचारों में सम्मिलित है। इसके लिए कुछ ही प्रतिनिधि व्यक्तियों को छांटकर केवल उन्हीं का साक्षात्कार किया जाता है। इन प्रतिनिधि व्यक्तियों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर पूर्ण जनसंख्या के विचारों के बारे में अनुमान लगाया जाता है। इसलिए इसे न्यादर्श साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य शोध समस्याओं के प्रस्तावित समाधान के बारे में एक विस्तृत ब्यौरा तैयार करना होता है। इस तरह का शोध अधिकतर उन वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है जो किसी विशेष समस्या का उत्तर तुरन्त पा लेना चाहते है।

3. निदानात्मक साक्षात्कार –

इस प्रकार के साक्षात्कार के माध्यम से साक्षात्कारकर्ता बालक या किसी व्यक्ति की समस्या के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। किसी विद्यालय में शिक्षक द्वारा छात्रों के किसी विशेष समस्या के विषय में सूचनाएं एकत्र करने के लिये प्रयुक्त साक्षात्कार इस प्रकार के साक्षात्कार का उदाहरण है।

4. उपचारात्मक साक्षात्कार –

निदानात्मक साक्षात्कार के बाद जब किसी छात्र की समस्या तथा उसके विषय में सूचनाएं एकत्र कर ली जाती हैं तो उपचारात्मक साक्षात्कार में व्यक्ति से इस प्रकार का वार्तालाप किया जाता है कि उसको अपनी चिन्ताओं तथा समस्याओं से मुक्त किया जा सके तथा समायोजन सही तरीके से हो सके।

5. तथ्य संकलन साक्षात्कार –

इस साक्षात्कार में व्यक्ति या व्यक्तियों के समुदाय से मिलकर तथ्य संकलित किए जाते हैं। शिक्षक इसी साक्षात्कार द्वारा छात्रों के सम्बन्ध में तथ्य एकत्रित करते हैं। इसके तीन प्रमुख उद्‌देश्य हैं–

(क) अन्य विधियों द्वारा संग्रहीत किये गये तथ्यों में अपूर्णताओं, न्यूनताओं या कमियों को पूर्ति करना। कुछ तथ्य अन्य विधियों द्वारा प्राप्त नहीं हो पाते हैं। साक्षात्कार में उन सूचनाओं को एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है जो मनोवैज्ञानिक जांचों द्वारा प्राप्त नहीं हो पाती है।

(ख) पहले से संकलित की गयी सूचनाओं की पुष्टि करने के लिए तथ्य संकलन साक्षात्कार किया जाता है।

(ग) तथ्य संकलन साक्षात्कार का तीसरा उद्‌देश्य शारीरिक रूप से अवलोकन करना है। बहुत से छात्रों में अनेक शारीरिक दोष पाये जाते हैं जिनका ज्ञान मनोवैज्ञानिक जांचों से नहीं हो सकता है। इसके साथ ही साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति का बातचीत करने तथा आचरण करने के ढ़ंग का ज्ञान होता है।

रचना के आधार पर साक्षात्कार दो प्रकार का होता है –

1. संरचित साक्षात्कार–

संरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार प्रदाता से पूर्व निर्धारित प्रश्नों को एक निश्चित क्रम में पूछता है तथा विषयी द्वारा दिए गये उत्तरों को एक मानवीकृत फार्म में रिकार्ड किया जाता है। इस तरह से इस साक्षात्कार में साक्षात्कार देने वाले सभी व्यक्तियों से एक ही तरह के प्रश्न एक निश्चित क्रम में पूछकर साक्षात्कारकर्ता एक खास निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करते हैं।

2. असंरचित साक्षात्कार –

असंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार देने वाले व्यक्तियों से जो प्रश्न पूछता है, पूर्व निर्धारित नहीं होता है और न तो वह किसी निश्चित क्रम में ही पूछे जाते हैं। इसमे साक्षात्कार प्रदाता को अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है। साक्षात्कार में जितना लचीलापन होना है, उसके ऑकड़ो को विश्लेषित करना उतना ही कठिन कार्य है।

10.5 अच्छे साक्षात्कारकर्ता के गुण

साक्षात्कार एक आत्मनिष्ठ विधि है जिसके कारण इसके परिणाम पक्षपातपूर्ण हो जाते हैं। साक्षात्कार में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कारकर्ता में अच्छे गुण हों। एक अच्छे साक्षात्कारकर्त्ता में निम्नलिखित गुण पाये जाने चाहिए।

1. साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी बात सीधी एवं स्पष्ट शब्दों में करनी चाहिए। साक्षात्कार देने वाले पर यह प्रभाव डाले कि वह उसमें अधिक रूचि रखता है।
2. साक्षात्कारकर्त्ता को छात्र की अच्छी या बुरी बातों पर आश्चर्य प्रकट नहीं करना चाहिए। छात्र की सभी त्रुटियों, कमियों को शान्तिपूर्ण सुनना चाहिए।
3. तनावपूर्ण स्थिति को समाप्त करने के लिए साक्षात्कारकर्त्ता को हंसमुख होना चाहिए।
4. साक्षात्कारकर्त्ता को वार्तालाप पर एकमात्र अधिकारी नहीं करना चाहिए। वार्तालाप के समय अगर साक्षात्कार देने वाला बोल रहा है तो यह प्रयास करना चाहिए कि उसे बीच में न रोका जाए या अपनी बात न कही जाए।
5. साक्षात्कारकर्त्ता को धैर्यवान होना चाहिए। साक्षात्कार प्रदाता को ऐसा लगना चाहिए कि साक्षात्कारकर्त्ता उसकी बातों में रूचि ले रहा है और सद्भावना पूर्ण व्यवहार कर रहा है।
6. साक्षात्कार प्रदाता कि भावनाओं का सम्मान किया जाना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता यदि ऐसा करेगा तो साक्षात्कार प्रदाता अपने संदेहों को निर्विकार रूप से व्यक्त कर सकेगा।
7. साक्षात्कारकर्त्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि साक्षात्कार प्रदाता का उस पर विश्वास बना रहे। साक्षात्कार प्रदाता से बिना पूछे साक्षात्कार के विषय में किसी और से बात नहीं करनी चाहिए।

10.6 साक्षात्कार के लाभ एवं परिसीमायें

साक्षात्कार के लाभ निम्नलिखित हैं –

1. साक्षात्कार विधि को प्रयोग में लाना सरल है।
2. छात्रों की अन्तर्दृष्टि को विकसित करने में सहायक होती है।
3. सम्पूर्ण व्यक्ति को समझने में यह विधि उत्तम है। व्यक्ति की अभिवृत्ति, संवेग विचार आदि सभी का अध्ययन होता है।
4. साक्षात्कार देने वाले को अपनी समस्याएं प्रकट करने का साक्षात्कार अच्छा अवसर प्रदान करता है।

5. निषेधात्मक भावनाओं को स्वीकार करने तथा उनको स्पष्ट करने का अवसर साक्षात्कार में प्राप्त होता है।

6. विभिन्न दशाओं और परिस्थितियों में साक्षात्कार का प्रयोग करने के लिए उसे लचकदार बनाया जा सकता है।

7. साक्षात्कार की प्रकृति लचीली होती है। किसी महत्वपूर्ण बात को ध्यान में रखकर आगे बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के किसी विशिष्ट पक्ष के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

8. इस विधि के दौरान ऐसे प्रश्नों को स्पष्ट किया जा सकता है जो व्यक्ति के समझ में न आ रहे हों।

9. इसी प्रकार ऐसे उत्तरों के विषय में स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है जो साक्षात्कारकर्ता के समझ में न आ रहा हो।

10. इसके द्वारा व्यक्तियों से ऐसी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है जो लिखित रूप से प्राप्त करना सम्भव न हो।

11. बातचीत के दौरान साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति की अनिच्छा, असहयोग, इत्यादि मनोभावों का भी अवलोकन कर सकता है, जिनके आधार पर उत्तरों की वैधता जान सकता है।

साक्षात्कार की परिसीमाएं –

साक्षात्कार की कुछ कमियां भी पायी जाती है, जो निम्नलिखित है–

1. यह एक आत्मनिष्ठ विधि है जिससे परिणामों में संगतता होने की सम्भावना में कमी आती है।

2. आवश्यक प्रशिक्षण के अभाव में साक्षात्कारकर्ता को सही तरीके से व्यक्तित्व मूल्यांकन के लिए तथ्य एकत्रित करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

3. साक्षात्कार प्रदाता अपने उत्तरों को देते समय साक्षात्कारकर्ता की जाति, पद, लिंग, आदि का ध्यान रखता है, इस कारण उसके उत्तर स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम एवं साक्षात्कारकर्ता को प्रसन्न करने वाले बन जाते हैं।

4. जब अनेक व्यक्तियों से सूचनाएं एकत्रित करनी हो या एक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का मूल्यांकन करना हो तो इस प्रविधि को अपनाने में बहुत अधिक समय खर्च होता है।

5. विभिन्न माध्यम व अन्तक्रियाऐं भी साक्षात्कारकर्ता को प्रभावित करती हैं। सभी व्यक्तियों पर अपने समाज के मान्यताओं, धारणाओं एवं विश्वासों का प्रभाव रहता है और यदि साक्षात्कारकर्ता तथा साक्षात्कार–प्रदाता की सामाजिक पृष्ठभूमि में अन्तर हो तो इसके परिणामों की वैधता में कमी आती है।

6. साक्षात्कारकर्ता द्वारा वार्तालाप को लिपिबद्ध करने के कारण व्यक्ति उत्तर देते समय अपने कथनों के द्वारा प्रत्यक्ष समर्थन प्रकट नहीं करता। वह गोल–गोल उत्तरों के माध्यम से स्वयं को एक सुरक्षित स्थिति में रखने की कोशिश करता है।

10.7 साक्षात्कार की वैधता तथा विश्वसनीयता

किसी भी साक्षात्कार की सफलता के लिए आवश्यक है कि वह वैध तथा विश्वसनीय हो। किसी साक्षात्कार की वैधता तब बढ़ जाती है जब साक्षात्कार एक अच्छे एवं पूर्व निर्धारित संरचना में निर्मित किया गया हो ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वास्तव में सार्थक सूचनाओं का संकलन किया गया हो। इसे हम विषय वस्तु वैधता कहते हैं। सम्बन्धित क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा प्रश्नों के चयन में सहायता लेने से भी वैधता बढ़ती है।

किसी साक्षात्कार की विश्वसनीयता का मूल्यांकन किसी अन्य समय के साक्षात्कार में प्रश्नों के थोड़े से भिन्न प्रारूप में पूंछकर किया जा सकता है। किसी अन्य समय में साक्षात्कार तो पुनः आयोजित करने पर भी प्रतिक्रियाओं में संगतता का मापन किया जा सकता है। यदि एक से अधिक साक्षात्कारकर्ताओं का प्रयोग हुआ है तो विभिन्न साक्षात्कारकर्ताओं के माध्यम से प्राप्त सूचनाओं के मध्य विश्वसनीयता स्थापित करना आवश्यक है।

10.8 मापनी विधियां : एक परिचय

किसी मापन उपकरण द्वारा मापने की प्रविधि को मापनी विधियां कहते हैं। मापनी विधियों में निर्धारण मापनी, सामाजिक दूरी मापनी, अभिवृति मापनी, मूल्य–मापनी आदि मुख्य रूप से आती है।

निर्धारण मापनी का प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि कोई व्यक्ति अपने साथियों अथवा परिचितों के समक्ष अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में क्या छवि छोड़ता है ? निर्धारण मापनी शब्दों, वाक्यों तथा परिच्छेदों की ऐसी चयनित सूची होती है जिसके आधार पर प्रेक्षक मूल्यों के वस्तुनिष्ठ मापन पर आधारित किसी मूल्य अथवा माप को अभिलेखित करता है। यह एक विशेष प्रकार की जांच सूची होती है और इस जांच की गयी विशेषताओं या गुणों की उपस्थिति अथवा उनके अभाव का गुणात्मक या संख्यात्मक निर्धारण किया जाता है। निर्धारण मापनी वास्तव में किसी व्यक्ति में उपस्थित गुणों की मात्रा, उसकी तीव्रता तथा बारम्बारता के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने का एक साधन है।

10.9 निर्धारण मापनी :

निर्धारण मापनी 6 प्रकार की होती है–

1. चेक लिस्ट

2. आंकिक निर्धारण मापनी
3. ग्राफिक निर्धारण मापनी
4. क्रमिक निर्धारण मापनी
5. स्थिति निर्धारण माापनी
6. वाह्य चयन निर्धारण मापनी

10.9.1 चेक लिस्ट :–

चेक लिस्ट में प्रायः कुछ कथन दिये हुए होते हैं जो मापे जाने वाले गुणों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का संकेत करते हैं। निर्धारक किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में यह निर्णय करना होता हे कि चेक लिस्ट में दिये गये कथन उसके बारे में सही है या गलत है। चेकलिस्ट में हाँ या नहीं के रूप में गुणों की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति का निर्धारण किया जाता है।

10.9.2 आंकिक निर्धारण मापनी :–

इस प्रकार की मापनी में कथनों के प्रति अपनी सहमति अथवा असहमति की मात्रा (Intensity) को कुछ अंको की सहायता से अभिव्यक्त करना होता है। निर्धारक किसी व्यक्ति के संदर्भ में कथनों से सहमत होने अथवा असहमत होने की सीमा को अंकों की सहायता से प्रकट करता है। इन अंकों को तीन, पांच, सात आदि बिन्दुओं पर आंकिक निर्धारण मापनी बनायी जाती है। यह अंक धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनो प्रकार के हो सकते हैं। 5 बिन्दु मापनी में 1, 2, 3, 4, 5 क्रमशः निम्नवत , औसत से कम, सामान्य, सामान्य से अधिक व अधिकतम आदि से प्रदर्शित किया जाता है।

उदाहरण के लिए :–

	5	4	3	2	1
आत्मविश्वास–	बहुत अधिक /	अधिक /	औसत /	औसत से कम /	कम
धैर्य –	बहुत अधिक /	अधिक /	औसत /	औसत से कम /	कम

10.9.3 ग्राफिक निर्धारण मापनी :–

ग्राफिक मापनी में सहमति / असहमति की सीमाओं को बिन्दुओं से प्रकट न करके एक क्षैतिज रेखा पर निशान लगाकर व्यक्ति के सम्बन्ध में अपने निर्णयों को बताता है। इन निशानों की स्थिति के आधार पर व्यक्ति के गुणों का पता लगाया जाता है। व्यक्ति के अन्दर किसी गुण की उपस्थिति को दर्शाने के लिए पंक्ति 3, 5 या 7 बिन्दुओं में विभाजित होती है।

उदाहरण – मजबूत ....कमजोर

साहसी ....डरपोक

प्रसन्न ....अप्रसन्न

10.9.4 क्रमिक निर्धारण मापनी :-

क्रमिक मापनी के अन्तर्गत निर्धारक को व्यक्ति में उपस्थित किसी गुण विशेष के सम्बन्ध में निर्णय नहीं देना होता है बल्कि अनेक गुणों तथा उपगुणों को किसी व्यक्ति के संदर्भ में एक क्रम में निर्धारित करता है। पहले यह देखा जाता है कि सूचीबद्ध गुण किसी मात्रा में उपस्थित है तथा इसके बाद गुणों की मात्रा के आधार पर गुणों को क्रमबद्ध किया जाता है। क्रमिक निर्धारण मापनी के आधार पर व्यक्ति के अन्दर उपस्थित गुणों की सापेक्ष स्थिति को जाना जाता है।

गुण	क्रम	गुण	क्रम	गुण	क्रम
शान्त		साहसी		न्यायप्रिय	
प्रसन्नचित		आत्म विश्वासी		कमजोर	
सहयोगी		ईमानदारी		नैतिकता	

10.9.5 स्थिति निर्धारण मापनी :-

स्थिति मापनी में किसी व्यक्ति में उपस्थित गुणों की मात्रा का मापन उनको स्थान सूचक मान जैसे दशांक तथा शतांक प्रदान करके किया जाता है। निर्धारक को यह निर्णय लेना होता है कि व्यक्ति विशेष में दिये गये गुणों की स्थिति किसी समूह के संदर्भ में क्या है ? स्थिति मापनी की सहायता से निर्धारक किसी समूह के व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह निर्धारित करता है कि उनका समूह में किसी गुण विशेष की दृष्टि से क्या स्थान है ? कितने लोग गुण विशेष के संदर्भ में उस व्यक्ति से आगे हैं तथा कितने पीछे हैं ?

10.9.6 वाह्य चयन निर्धारण मापनी –

इस प्रकार के निर्धारण मापनी में प्रत्येक कथन के लिए दो या दो से अधि ाक कथन होते हैं। मापनकर्ता से यह पूछा जाता है कि इन कथनों में से कौन सा कथन व्यक्ति विशेष के संदर्भ में अधिक उपयुक्त है। निर्धारक उन विकल्पों मे से किसी एक विकल्प को चुनने के लिए बाह्य होता है। इसीलिए इसे वाह्यकारी चयन निर्धारण मापनी कहा जाता है।

10.10 निर्धारण मापनी का उपयोग एवं सीमायें

निर्धारण मापनी के निम्नलिखित उपयोग होते हैं –

1. मानकीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा संकलित सूचनाओं के पूरक के रूप में निर्धारण मापनी का उपयोग किया जाता है।
2. जब हमें अल्प अवधि में ही अत्यधिक छात्रों तथा अत्याधिक विषयों में सूचनायें एकत्र करनी हो तो निर्धारण मापनी का उपयोग होता है।
3. जब किसी व्यक्ति विशेष का गहन अध्ययन करना हो तथा मानवीकृत उपकरण उपलब्ध न हो तो समय, श्रम और धन की बचत करने हेतु इस

प्रविधि का निर्माण करके इसका प्रयोग किया जाता है।

4. व्यक्ति–अध्ययन की अन्य विधियों के पूरक के रूप में भी यह विधि सहायक रहती है।

निर्धारण मापनी की परिसीमाएं :–

निर्धारण मापनी की निम्न सीमाएं हैं –

1. निर्धारण मापनी के द्वारा जो आंकड़े प्राप्त होते हैं वे तब तक विश्वसनीय नहीं होते है जब तक निर्धारक मापन के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से न समझता हो।
2. निर्धारक में विशेष दक्षता की आवश्यकता होती है।
3. निर्धारकों का विचार होता है कि किसी व्यक्ति में कोई भी गुण पूर्णतः उपस्थित तथा अनुपस्थित नहीं रहता। अतः वह उसको मध्य में स्थान दे देता है। उसका निर्णय निष्पक्ष नहीं हो पाता है।
4. निर्धारकों द्वारा किये गये मूल्यांकन में अन्तर पाया जाना स्वाभाविक है क्योंकि उनकी निर्णय योग्यता तथा बुद्धि आदि में अन्तर होता है। निर्णायकों की रूचियां अनुभव तथा व्यक्तित्व के गुण तथा योग्यता आदि में अन्तर होने से उनकी निर्णय–शक्ति में भी अन्तर आ जाता है।

10.11 निर्धारण मापनी के उन्नयन हेतु सुझाव :–

निम्न उपायों से निर्धारण मापनी का उन्नयन किया जा सकता है –

1. पदों की संख्या निश्चित करना सबसे पहला कार्य है। यदि संख्या कम है तो निर्णायक को सूक्ष्म भेद करने का अवसर नहीं मिलता है। यदि इनकी संख्या अधिक कर दी जाये तो निर्णायक इन सबका उपयोग नहीं कर पाता।
2. जिन कथनों को सम्मिलित किया जाए वे वस्तुनिष्ठ रूप से परिभाषित होने चाहिए।
3. निर्णायक को उस व्यक्ति के गुणों का विभिन्न परिस्थितियों में अवलोकन करने का भी अवसर मिलना चाहिए।
4. निर्णायक को इसका प्रयोग करने के निर्देश स्पष्ट होने चाहिए।

10.12 सारांश

साक्षात्कार एवं आत्मनिष्ठ विधि हैं। जिसमें उद्देश्य को केन्द्र में रखकर दूसरे व्यक्ति से वार्तालाप किया जाता है तथा इस प्रक्रिया से प्राप्त सूचनाओं का अनुसन्धान कार्य में उपयोग किया जाता है। जबकि मापनियो का प्रयोग व्यक्ति में उपस्थित गुणों की मात्रा, तीव्रता या बारम्बारता को जानने के लिये किया जाता है। इस इकाई में साक्षात्कार के विभिन्न प्रकारों, साक्षात्कारकर्ता के गुणों तथा

साक्षात्कार के लाभ एवं सीमाओं के साथ–साथ विभिन्न मापनी विधियों तथा निर्धारण मापनी का विस्तृत वर्णन किया गया है। निर्धारण मापनी को उन्नयन की दृष्टि से सुझाव भी दिये गये हैं।

10.13 अध्याय प्रश्न :

1. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं ? साक्षात्कार के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिये।
2. निर्धारण मापनी के प्रकार को बताइये।
3. साक्षात्कार के लाभ एवं उसकी सीमायें क्या है ?
4. आंकिक निर्धारण मापनी तथा ग्राफिक निर्धारण मापनी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. साक्षात्कार की वैधता एवं विश्वसनीयता से क्या आशय है ?
6. स्थिति निर्धारण मापनी तथा वाहय चयन निर्धारण मापनी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
7. निर्धारण मापनी के क्या–क्या लाभ हैं ?

10.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिध्धू कुलबीर सिंह	:	मैथडलॉजी ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, स्टर्लिग पब्लिकेशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2007।
सिंह, राम पाल,	:	शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 2005।
श्रीवास्तव, डी0एन0	:	मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2006।
गुप्ता, एस0पी0	:	आधुनिक मापन और मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010।

इकाई – 11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति अध्ययन विधि

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 प्रश्नावली – एक परिचय

11.4 प्रश्नावली के प्रकार

11.5 अच्छी प्रश्नावली की विशेषतायें

11.6 प्रश्नावली का निर्माण

11.7 व्यक्ति अध्ययन : एक परिचय

11.8 व्यक्ति अध्ययन की प्रकृति

11.9 व्यक्ति अध्ययन के पद

11.10 व्यक्ति अध्ययन के गुण एवं दोष

11.11 सारांश

11.12 अभ्यास प्रश्न

11.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

अनुसनान कार्यों में बहुतायत से प्रयोग होने वाला उपकरण प्रश्नावली है। प्रश्नावली का प्रयोग व्यैक्तिक एवं सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है। इसका निर्माण एवं प्रयोग भी सरल है। वास्तव में प्रश्नावली द्वारा सूचनाओं को गुणात्मक एवं मात्रात्मक रूपों में लिखित रूप में प्राप्त किया जाता है। इसीलिये इसकी वैधता एवं विश्वसनीयता पर्याप्त होती है। लेकिन व्यक्ति अध्ययन में किसी एक व्यक्ति के बारे में अध्ययन न होकर एक प्रकार के व्यक्ति के बारे में अध्ययन किया जाता है। मूलतः व्यक्ति अध्ययन विधि का प्रयोग चिकित्सा क्षेत्र से प्रारम्भ हुआ था। फ्रायड ने इसी अध्ययन विधि का प्रयोगकर विभिन्न नियम एवं सिद्धान्त प्रतिपादित किये। इस विधि में वर्तमान को भूतकाल की घटित घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया जाता है। प्रश्नावली के प्रकार, उसकी विशेषतायें, व्यक्ति अध्ययन विधि के विभिन्न पद तथा उसके गुण एवं दोषों को समझना आवश्यक है। इन उपकरणों के बारे में जाने बिना इनका सार्थक उपयोग संभव नही है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

1. प्रश्नावली के विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे।

2. प्रश्नावली के निर्माण करने की योग्यता अर्जित कर सकेंगे।
3. प्रश्नावली विशेषताओं को बता सकेंगे।
4. व्यक्ति अध्ययन विधि को जान सकेंगे।
5. व्यक्ति अध्ययन के विभिन्न पदों को प्रयोग कर सकेंगे।
6. व्यक्ति अध्ययन विधि के गुण--दोषों को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.3 प्रश्नावली—एक परिचय

प्रश्नावली प्रश्नों या कथनों का समूह हैं, जिसके माध्यम से व्यक्ति से पूछकर सूचनाए एकत्रित की जाती हैं। यह निर्माण में एक आत्मनिष्ठ तथा प्रयोग में वस्तुनिष्ठ विधि है तथा इसका प्रयोग तब किया जाता है जब तथ्यात्मक सूचनाओं की आवश्यकता होती है। प्रश्नावली का निर्माण इस प्रकार किया जाता है जिससे व्यक्ति के वांछित गुणों का मापन हो सके। प्रश्नावली का प्रयोग व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों रूपों में किया जा सकता है। यदि प्रश्नावली का प्रयोग समूह के लिए किया जाता है तो यह समय, धन और श्रम की बचत करने मे सहयोगी होता है ।

11.4 प्रश्नावली के प्रकार

1. संरचना के आधार पर प्रश्नावली दो प्रकार की होती है।

(अ) बन्द या संरचित प्रश्नावली – इस प्रकार की प्रश्नावली के प्रश्नों का स्वरूप ऐसा होता है जिनके सम्भावित उत्तर दे दिये जाते हैं तथा व्यक्ति को इन उत्तरों में से एक उत्तर को चुनकर प्रश्न का उत्तर देना होता है, इस प्रकार की प्रश्नावली को प्रतिबन्धित सरचित या बन्द प्रकार की प्रश्नावली कहा जाता है क्योंकि व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य किया जाता है कि वह दिये गये वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक विकल्प को चुने। दिये गये वैकल्पिक उत्तर हॉ या नहीं में हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए –

आपको घर में पढ़ाई में कौन सहायता देता है ?

1. माँ 2. पिता 3. भाई 4. बहन 5. अन्य

इस प्रकार की प्रश्नावली को छात्रों पर प्रशासित करना सुविधाजनक होता है, इसको भरना या उत्तर प्राप्त करना सरल है तथा इसमें कम समय लगता है। यह एक वस्तुनिष्ठ विधि है। इसका अंकन, सारणीयन और परिणामों का विश्लेषण अपेक्षाकृत सरल होता है।

इस प्रश्नावली की कमी यह है कि इसमें उत्तर का चुनाव प्रतिबन्धित होता है यह भी हो सकता है कि दिये गये वैकल्पिक उत्तरों में वह उत्तर सम्मिलित न हो जो छात्र देना चाहता हो। इसी दोष को दूर करने के लिए विकल्पों के साथ एक विकल्प अन्य श्रेणी का होना चाहिए।

(ब) खुली या असंरचित प्रश्नावली – इस प्रकार की प्रश्नावली में छात्रों को दिए गए प्रश्नों का उत्तर अपने शब्दों में देना होता है। यहां पर प्रश्नों के कोई भी सम्भावित उत्तर नहीं दिये जाते हैं। यद्यपि इन प्रश्नावलियों के द्वारा व्यक्ति स्वतन्त्र विचार एवं भावनाएं व्यक्त करता है लेकिन इस प्रकार से प्राप्त उत्तरों का अंकन एवं परिणामों का विश्लेषण करना असुविधाजनक एवं कठिन होता है।

उदाहरण के लिए–

आपको घर में पढ़ाई में कौन सहायता करता है ?

....

....

बहुत सी प्रश्नावलियों में खुले तथा बन्द दोनो प्रकार के प्रश्न होते हैं। सूचना संकलन के लिए कौन सी प्रश्नावली उपयुक्त है इसका निर्णय प्रश्नावली का निर्माणकर्ता अपने उद्देश्य एवं जीवसंख्या के ध्यान में रख कर करता है।

2. **प्रशासन के आधार** पर प्रश्नावली दो प्रकार की होती है –

(अ) डाक प्रश्नावली – जब प्रयोज्य दूर रहता है तो उसे डाक द्वारा प्रश्नावली भेजकर भी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रश्नावली को डाक प्रश्नावली कहा जाता है। प्रश्नावली के साथ प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर देने सम्बन्धी निर्देश तथा एक लिफाफा भी भेज दिया जाता है। इस प्रकार की प्रश्नावली के प्रशासन में समय का व्यय अधिक होता है परन्तु व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रयोज्य के सम्मुख उपस्थित होने की बाध्यता नहीं रहती। इस विधि के प्रशासन करने पर भरी हुयी प्रश्नावलिया प्राप्त करने में अधिक समय लगता है क्योंकि सूचना संकलनकर्ता के प्रत्यक्ष न होने पर लोग प्रश्नावली भरने में रूचि कम लेते हैं और समय पर वापस नहीं करते हैं। इसलिए इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग करते समय सूचना संकलनकर्ता को बार–बार स्मरण पत्र भेजना चाहिए तथा सम्पर्क में रहना चाहिए।

(ब) प्रत्यक्ष प्रश्नावली – इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रशासन शोधकर्ता अपनी उपस्थिति में करता है। इस ढ़ंग की प्रश्नावली के क्रियान्वयन करने में शोधकर्त्ता स्वयं समूह में खड़ा होकर निर्देश देता है तथा आने वाली समस्याओं का समाधान भी करता है। इस प्रकार की प्रश्नावली को प्रत्यक्ष प्रश्नावली कहते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावली के प्रशासन में श्रम अधिक लगता है परन्तु सूचनाओं का संकलन ठीक प्रकार से हो जाता है और भरी हुयी प्रश्नावली समय से प्राप्त हो जाती है।

11.5 एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएं

एक अच्छी प्रश्नावली में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए।

1. प्रश्नावली के महत्व को प्रश्नावली के प्रारम्भ में स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए या लिख देना चाहिए। प्रश्नों का संबन्ध शोध विषय से सीधा एवं स्पष्ट होना चाहिए ताकि सही उत्तर मिल सके।

2. प्रश्नावली की लम्बाई कम होनी चाहिए अर्थात प्रश्नों की सख्या बहुत अधिक नहीं होनी चाहिए। बहुत अधिक प्रश्नों वाली प्रश्नावली के सही उत्तर नहीं मिल पाते हैं।
3. एक अच्छी प्रश्नावली में दिये गये निर्देश स्पष्ट एवं पूर्ण होते हैं तथा सभी पदों को पारिभाषित भी किया गया होता है।
4. प्रश्न की शब्दावली स्पष्ट एवं सरल होनी चाहिए।
5. प्रश्नावली के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होने चाहिए।
6. प्रश्नावली में प्रश्नों को मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यवस्थित किया जाना चाहिए। पहले सामान्य तथा बाद में अधिक विशिष्ट प्रश्न पूछे जाने चाहिए।
7. जहां तक सम्भव हो उत्तेजित करने वाले प्रश्नों को प्रश्नावली में नहीं रखना चाहिए।
8. प्रश्नावली के प्रश्न इस प्रकार के होने चाहिए कि उनका अंकन तथा विश्लेषण की प्रविधि का निर्धारण पहले से ही कर लेना चाहिए।
9. प्रश्नावली दिखने में आकर्षक, साफ सुथरी एवं अच्छी तरह छपी होनी चाहिए।

11.6 प्रश्नावली का निर्माण

प्रश्नावली के निर्माण में प्रश्नों का चुनाव निम्नलिखित कसौटी पर आधारित होना चाहिए –

1. प्रश्नावली के माध्यम से वही सूचनाएं एकत्रित की जानी चाहिए जो अन्य स्रोतों से प्राप्त न हो सके।
2. प्रश्नावली में केवल उपयुक्त एवं उपयोगी प्रश्न होने चाहिए।
3. प्रश्नावली की शब्दावली में व्याकरण की दृष्टि से दोष नही होना चाहिए।
4. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक प्रश्न के उत्तर हेतु पर्याप्त विकल्प दिए गये हों ।
5. उन शब्दों को रेखांकित कर देना चाहिए जिन्हें आप विशेष महत्व देना चाहते हैं।
6. कथन संक्षिप्त होने चाहिए, अधिक से अधिक बीस शब्दों के।
7. प्रश्नों का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे सभी के लिए उपयुक्त हो।
8. **प्रश्नावली में दोहरे नकारात्मक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।**

प्रश्नावली की वैधता तथा विश्वसनीयता –

सामान्यतः प्रश्नावली की वैधता तथा विश्वसनीयता को शोधकर्ता स्थापित नहीं करते हैं। इसका कारण शायद यह होता है प्रश्नावली, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों

की अपेक्षा सीमित उद्देश्य के लिए बनाए जाते हैं। इसके द्वारा एक बार ही आंकड़ों का संग्रह किया जाता है । कम जनसंख्या पर प्रशासित किये जाते हैं। इन कारणों के बाद भी प्रश्नावली की वैधता तथा विश्वसनीयता स्थापित करने की विधियां हैं।

प्रश्नावली की वैधता का तात्पर्य प्रश्नावली के माध्यम से सही प्रश्न पूछने से है जिनका निर्माण इस प्रकार किया गया हो कि प्रश्नों के वही अर्थ निकले जो प्रश्नावली निर्माणकर्ता के विचारों से संगतता लिए हों। प्रश्नावली में प्रयुक्त शब्द इस प्रकार परिभाषित किये गये हों कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए उनका अर्थ एक जैसा हो। सामान्यतः प्रश्नावली की विषय–वस्तु वैधता ही स्थापित की जाती है। कुछ प्रकार की प्रश्नावलियों की ही पूर्व–कथन वैधता ज्ञात करना सम्भव होता है।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता परीक्षण – पुनः परीक्षण विधि से निकाली जाती है। सामान्तर प्रारूप विधि से भी प्रश्नावली की विश्वसनीयता ज्ञात की जाती है।

11.7 व्यक्ति अध्ययन : एक परिचय

व्यक्ति अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय आदि के बारे में अध्ययन किया जा सकता है। व्यक्ति–अध्ययन का उद्देश्य वर्तमान को समझना, उन भूतकालीन घटनाओं का पहचानना जिनके कारण वर्तमान स्थिति पैदा हुई तथा उन कारकों को जानना जो भविष्य में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है।

व्यक्ति–अध्ययन विधि में किसी एक व्यक्ति के बारे में अध्ययन न होकर बल्कि एक प्रकार के व्यक्ति के बारे में अध्ययन होता है। अध्ययन के बाद समान प्रकार के केस में इसका सामान्यीकरण किया जा सकता है।

11.8 व्यक्ति अध्ययन की प्रकृति :

व्यक्ति–अध्ययन का मूलतः प्रयोग मेडिकल के क्षेत्र में शुरू हुआ था। किसी रोगी के पूर्व–विकास, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता है। फ्रायड ने अपने प्रयोज्यों के व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में उनकी सहायता के लिए व्यक्ति–अध्ययन का प्रयोग किया। परामर्शदाता तथा सामाजिक कार्यकर्ता किसी विशेष समस्या के निदान तथा उसके समाधान के लिए व्यक्ति–अध्ययन का प्रयोग करते हैं।

व्यक्ति–अध्ययन गुणात्मक प्रकार का शोध है। इसमें किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय आदि का गहन तथा विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के शोध में लम्बवत उपागम (Longitudinal Approach) का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार के शोध में आंकड़ो का संकलन

अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली, रिकार्ड किये गये साक्ष्यों (प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों) आदि के द्वारा किया जाता है।

11.9 व्यक्ति–अध्ययन के पद

व्यक्ति अध्ययन में निम्नलिखित पदों को सम्मिलित किया जाता है।

1. सबसे पहले प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा किसी व्यक्ति या सामाजिक इकाइ के वर्तमान स्थिति के बारे में निश्चय किया जाता है। इस पद में अवलोकनकर्ता केवल सतही अवलोकन करके उसके बारे में विवरण प्रस्तुत करता है। यदि किसी अपराधी बालक का व्यक्ति–अध्ययन किया जाता है तो उसकी शारीरिक रचना, संज्ञानात्मक तथा गैर–संज्ञानात्मक कारकों का अध्ययन प्रत्यक्ष अवलोकन तथा मानवीकृत परीक्षणों जैसे बुद्धि, अभिक्षमता, अभिवृत्ति, मूल्यों, व्यक्तित्व, रूचि आदि का अध्ययन किया जाता है।

2. प्रयोज्य की समस्या के लिए सबसे अधिक जिम्मेदारी सम्भावित कारणों को निश्चित किया जाता है या पहचान की जाती है। इसके बाद एक या आवश्यकता होने पर एक से अधिक परिकल्पनाएं बनायी जाती है। यह परिकल्पनाएं दूसरे समान समस्या के ग्रसित प्रयोज्यों के आधार पर बनायी जाती है ।

   यदि हम किसी पिछड़े बालक का व्यक्ति–अध्ययन करना है तो इसके कई कारण हो सकते हैं – जैसे घर के वातावरण का ठीक न होना, स्कूल में सही पढ़ाई न होना, मानसिक क्षमता में कमी होना। इन कारणों के आधार पर परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

3. इस पद में परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। उन सम्भावित कारणों को दूर किया जाता है जिसके कारण समस्या पैदा हुयी है। अनुसंधानकर्ता प्रयोज्य की वर्तमान स्थिति तथा उसके बीते हुए समय (इतिहास) के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है। व्यक्तिगत अभिलेखों जैसे डायरी तथा पत्रों का प्रयोग किया जा सकता है। साक्षात्कार तथा प्रश्नावली के द्वारा वर्तमान स्थिति का पता लगाया जाता है। शिक्षकों, मित्रों, अभिभावकों, भाई–बहनों तथा दूसरे परिवार के लोगों के द्वारा आंकड़ो को एकत्रित किया जा सकता है।

4. परिकल्पनाओं के परीक्षण के बाद कारणों का निदान किया जाता है। इन कारणों को ध्यान में रखते हुये कुछ उपचारात्मक तरीकों को सुझाया जाता है।

5. अन्त में प्रयोज्य के लिए अनुगामी सेवाओं (Follow-up) को दिया जाता है । प्रयोज्य का दूसरी बार परीक्षण किया जाता है तथा यह देखने का प्रयास किया जाता है कि जो उपचारात्मक सुझाव दिये गये थे उसके प्रयोग से समस्या का समाधान हुआ कि नहीं। यदि परिवर्तन सकारात्मक

होते हैं तो समस्या का निदान सही समझा जाता है। यदि समस्या का समाधान नहीं होता है तो फिर से दूसरे सम्भावित कारणों के आधार पर परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। इसके बाद परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा कारणों का निदान किया जाता है तथा उपचार सुझाए जाते हैं।

11.10 व्यक्ति–अध्ययन के गुण एवं दोष

व्यक्ति अध्ययन विधि के निम्न गुण हैं –

1. व्यक्ति अध्ययन में लम्बवत उपागम (Longitudinal Approach) का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन के लिए चयन किए गये प्रयोज्य का गहन रूप से अध्ययन संभव होता है क्योकि इसमें एक समय में किसी एक व्यक्ति या सामाजिक इकाई का ही अध्ययन किया जाता है।
2. व्यक्ति अध्ययन विधि से प्राप्त तथ्यों को शोधकर्ता विश्वास के साथ सामान्यीकृत तो नहीं कर पाता है लेकिन इन तथ्यों के आधार पर वह आसानी से कुछ परिकल्पनाओं का सृजन कर पाता है।
3. व्यक्ति अध्ययन विधि प्राप्त तथ्यों के आधार पर भविष्य में किए जाने वाले अध्ययनों में उत्पन्न होने वाले कठिनाइयों को पहले से ही समझा जा सकता है तथा उसे दूर करने के उपायों का वर्णन किया जा सकता है।

व्यक्ति अध्ययन विधि के कई दोष भी है जो निम्नलिखित हैं –

व्यक्ति अध्ययन के दोष –

1. व्यक्ति अध्ययन विधि में आत्मनिष्ठता अधिक पायी जाती है, इस कारण निष्कर्ष की वैधता प्रभावित होती है। इस विधि में शोधकर्ता तथा अध्ययन के लिए चुने गये व्यक्ति तथा सामाजिक इकाई के बीच अधिक घनिष्ठता होने के कारण जो भी तथ्य प्राप्त किए जाते हैं उनका सही सही तथा वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं हो पाता है।
2. व्यक्ति–अध्ययन विधि में शोधकर्ता की पूर्ण जवाबदेही इस बात की होती है कि वह व्यक्ति या सामाजिक इकाई का पूरा इतिहास तैयार करे। शोध ाकर्ता सामाजिक इकाई के बारे में बहुत सारी सूचनाओं की तैयारी करता है तथा उनका विश्लेषण करता है। शोधकर्ता द्वारा प्राप्त की गयी सूचनाओं की वैधता की जांच करने का कोई तरीका इस विधि में नहीं बतलाया गया है। इस कारण यह विधि पूर्णरूप से वैज्ञानिक विधि नहीं मानी जा सकती है।
3. इस विधि में समय बहुत लगता है क्योंकि शोधकर्ता को प्रयोज्य के सभी पहलुओं भूत, वर्तमान तथा भविष्य को ध्यान में रखकर अध्ययन करना होता है। यह एक खर्चीली विधि भी है क्योंकि इसमें धन की बर्बादी बहुत होती है।

4. इस विधि में शोधकर्ता व्यक्ति से उनके गत अनुभूतियों एवं घटनाओं के बारे में पूछकर इतिहास तैयार करता है। बाद में इन अनुभूतियों का विश्लेषण का निष्कर्ष पर पहॅुचा जाता है। व्यक्ति अपने गत अनुभूतियों को विशेषकर उन अनुभूतियों जो काफी पहले घटित हुयी है उनको सही तरीके से नहीं बतला पाता है। सूचनाएं वैध नहीं हो पाती है।

5. शोधकर्ता किसी एक व्यक्ति या सामाजिक इकाई का अध्ययन कर निश्चित निष्कर्ष पर पहॅुच जाना चाहता है। किसी एक कैस के अध्ययन के आधार पर लिया गया निष्कर्ष सही नहीं होता। इस प्रकार से किए गये अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

किसी समुदाय का अध्ययन यदि हम व्यक्ति–अध्ययन से करें तो इसको इस प्रकार से किया जा सकता है। एक साथ एक भौगोलिक स्थान में रहने वाले समूह के व्यक्तियों के बारे मे गहन अवलोकन तथा विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में किसी समुदाय के लोगों के विभिन्न तथ्यों जैसे रहने का स्थान, आर्थिक क्रियाकलाप, जलवायु तथा प्राकृति संसाधनों के बारे में, ऐतिहासिक विकास, जीवन शैली, सामाजिक संरचना, जीवन मूल्यों तथा ऐसे लोगों का अध्ययन जिनका उस समुदाय पर प्रभाव हो आदि का अध्ययन किया जाता हे। इसमें उन सामाजिक संस्थाओं का मूल्यांकन भी किया जाता है जो मनुष्यों की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करती है।

11.11 सारांश

प्रश्नावली सूचनायें प्राप्त करने की एक वस्तुनिष्ठ विधि है। यह प्रश्नों का एक समुच्चय रूप होती हैं। संरचना एवं प्रशासन की दृष्टि से प्रश्नावली के विभिन्न रूप होते हैं। इसका निर्माण एवं प्रयोग सरल होता है। जबकि व्यक्ति अध्ययन विधि में व्यक्ति, समुदाय या संस्था विशेष की वर्तमान स्थिति को भूतकालीन घटनाओं के संदर्भ में विश्लेषित करने का प्रयास किया जाता है। आत्मनिष्ठता होने के बाद भी इस विधि में विभिन्न पदों का अनुसरण कर इसकी वस्तुनिष्ठता बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। इस इकाई में प्रश्नावली एवं व्यक्ति अध्ययन विधि की विशेषताओं, रूपों एवं इनके गुण–दोषों की चर्चा की गयी है।

11.12 अभ्यास प्रश्न :

1. प्रश्नावली के विभिन्न रूप कौन–कौन हैं ?
2. व्यक्ति अध्ययन विधि क्या है ?
3. एक अच्छी प्रश्नावली की क्या विशेषतायें होती हैं ?
4. व्यक्ति अध्ययन के कौन–कौन से पद हैं ?
5. व्यक्ति अध्ययन विधि के गुणों एवं दोषों को स्पष्ट कीजिये ।
6. प्रश्नावली निर्माण की कसौटियॉं क्या हैं ?

11.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिध्धू, कुलबीर सिंह : मैथडलॉजी ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, स्टर्लिंग पब्लिकेशन प्रा0लि0, नई दिल्ली 2007।

सिंह, राम पाल, : शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 2005।

श्रीवास्तव, डी0एन0 : मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2006।

गुप्ता, एस0पी0 : आधुनिक मापन और मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010।

इकाई –12 समाजमिति प्रविधि

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 समाजमिति – एक परिचय

12.4 समाजमितीय तकनीक की प्रविधियां

- 12.4.1 सोशियोग्राम
- 12.4.2 सामजिक माप मैट्रिक्स
- 12.4.3 समाजमितीय सूचकांक
- 12.4.4 गेस–हू–टेकनीक
- 12.4.5 सामाजिक दूरी स्केल

12.5 सारांश

12.6 अभ्यास प्रश्न

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

समाजमिति प्रविधियों का अनुप्रयोग ऐसे शैक्षिक अनुसन्धान के सन्दर्भ में होता है, जहाँ अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक समूहों के गठन, सामाजिक सम्बन्धों, गुटों, किसी समूह में अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति या समूह से विमुक्त अथवा एकल व्यक्ति से सम्बन्धित व्यक्ति का पता लगाना होता है। जैसा कि जॉन डब्लू वेस्ट ने कहा, परोक्ष रूप में समाजमिति प्रविधियों के अन्तर्गत व्यक्तियों के मतों का उपयोग आकर्षण एवं विकर्षण की स्थितियों का निर्धारण करने में किया जाता है। यह निश्चय उनसे पूछकर करना पड़ता है कि वह किसी विशेष परिस्थितियों में किसे चुनेगा या किसे आकृष्ट करेंगें।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. समाजमिति तकनीक को समझ सकेंगे।
2. समाजमिति तकनीक की विभिन्न प्रविधियों को जान सकेंगे।
3. समाजमिति प्रविधि से प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. सोशियोग्राम को बता सकेंगे।
5. समाजमितीय सूचकांक को समझ सकेंगे।

12.3 समाजमिति विधि : एक परिचय

समाजमिति तकनीक का प्रयोजन समूह में व्यक्ति विशेष के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इसके द्वारा विशेषकर से एकाकी और उपेक्षितों तथा अस्वीकृत व्यक्तियों की व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं का पता लगाने के लिए किया जाता है। व्यक्तियें के सामाजिक व्यवहार का आकलन करने हेतु यह तकनीक सूचना प्राप्त करने का एक उपयोग माध्यम है।

इस तकनीक में यह प्रयास किया जाता है कि समूह के सदस्यों में, उनसे यह पूछकर कि वे विभिन्न स्थितियों में किसे चुनेंगे या नहीं चुनेंगे। इस तकनीक का प्रयोग विभिन्न शिक्षण स्थितियों में, सामाजिक समायोजन, सामूहिक गतिकी, अनुशासन तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों की समस्याओं के अध्ययन में प्रयोग किया जाता है।

समूहों के अन्दर सामाजिक सम्बन्धों के मापन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है।

12.4 समाजमिति तकनीक की प्रविधियाँ

(i) सोशियोग्राम (Sociogram)

(ii) सामाजिक माप मैट्रिक्स (Sociometric Matrices)

(iii) समाजमितीय सूचकांक (Sociometric Index)

(iv) गेस–हू–टेकनीक (Guess who Technic)

(v) सामाजिक दूरी स्केल (Social Distance Scale)

12.4.1 सोशियोग्राम (Sociogram) –

सोशियोग्राम में समूह के सदस्यों द्वारा एक–दूसरें के प्रति किये गये पसन्दों को एक आलेख या सादे कागज पर चित्र बनाकर दिखाया जाता है। शोधकर्ता ऐसे प्रश्नों से आरम्भ करता है जैसे "प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जाता है कि आप किसके साथ कार्य करना सर्वाधिक पसन्द करेंगें ? अपनी पहली, दूसरी तथा तीसरी पसन्द बताइए।"

यदि समूह में लड़के तथा लड़कियाँ दोनो हैं तो लड़कों का चिन्ह 'त्रिकोण' (△) और लड़कियों का 'वृत्त' (0) हो सकता है। पसन्द का एक दिशा सूचक तीर से प्रदर्शित कर सकते हैं और आपसी चयन को दोनों दिशाओं की ओर इंगित करते हुए तीर (↔) से प्रदर्शित किया जा सकता है। जो सदस्य सबसे अधिक लोगों के द्वारा चुने जाते हैं उन्हें 'तारा'(Stars) कहा जाता है। जो सदस्य दूसरे के द्वारा नहीं चुने जाते हैं उन्हें 'आइसोलेट्स' कहा जाता है। समूह के सदस्यों द्वारा एक–दूसरे को चुनकर बनाए गये छोटे समूह को 'क्लिक' कहा जाता है।

सोशियोग्राम के निर्माण में दूसरे चरण में तालिका बनायी जाती है। तालिका में छात्र का नाम तथा उसकी क्रम संख्या लिखी जाती है । पहले तीन कालमों में विद्यार्थी की अपनी पसन्द /चयन क्रम भरी जाती है। अगले तीन कालमों में प्रत्येक छात्र दूसरों द्वारा जितनी बार चुना गया तथा अन्तिम कालम में कुल चयनों का योग दर्शाया है।

सामाजिक माप आंकड़ा पत्र

क्र. सं.	छात्र का नाम	उसकी चयन			जितनी बार चुना गया			कुल चयन
		पहली	दूसरी	तीसरी	पहली	दूसरी	तीसरी	
1	अनिल कुमार	3	6	7	0	1	0	1
2	कुलदीप कुमार	1	4	3	1	0	1	2
3	ललित कुमार	7	4	1	0	1	3	4
4	सुरेश	2	3	6	1	1	1	3
5	सतीश	4	6	2	2	3	0	5
6	आशीष	3	4	7	0	1	2	3
7	अखिलेश	1	2	4	0	0	0	0

आंकड़ा पत्र पर पहला छात्र अनिल कुमार है। उसने 'छात्र की चयन' कालम में छात्र संख्या पहले चयन में 3 लिखा, पहला चयन ललित कुमार, दूसरी पसन्द आशीष तथा तीसरी पसन्द अखिलेश है। 'कितनी बार चुना गया' कालम में अनिल कुमार एक छात्र द्वारा दूसरी चयन में चुना गया और पहली व तीसरी चयन में किसी भी विद्याथी ने उसे नहीं चुना। अन्य विद्यार्थियों द्वारा वह केवल एक बार चुना गया और उसे 'कुल चयन' के कालम में दिखाया गया।

कुल चयन कालम में स्पष्ट है कि 'सतीश' तथा 'ललित कुमार' के क्रमशः 5 बार तथा 4 बार चुना गया। यह विद्यार्थी 'स्टार्स' कहे जाते हैं। 'अखिलेश' को किसी अन्य विद्यार्थी द्वारा नही चुना गया। ऐसे विद्यार्थी को 'आइसोलेट' कहा जाएगा। अनिल कुमार, कुलदीप कुमार, सुरेश, आशीष कम बार चुने गये इन्हें उपेक्षित (नेगेलक्टीज) कहेंगे।

सोशियोग्राम समूह के सम्बन्धों का आकृति चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इसके निर्माण में निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है।

1. 'स्टार्स' के नाम सोशियोग्राम के मध्य में रखा जाता है। लड़को के चिन्ह त्रिकोण में तथा लड़कियों को वृत्त में रखा जाता है।
2. 'आइसोलेट्स' जिन्हें बहुत कम चुना गया, उन्हें सोशियोग्राम के बाहरी क्षेत्र में रखिए।
3. ज्यादा अंक प्राप्त करने वालों को 'स्टार्स' के पास रखा जाता है।
4. पूरी रेखा से पहले चयन को तथा खण्डित रेखा दूसरे चयन को तथा बिन्दु –डैश चिन्ह तीसरे चयन को दर्शाते हैं।

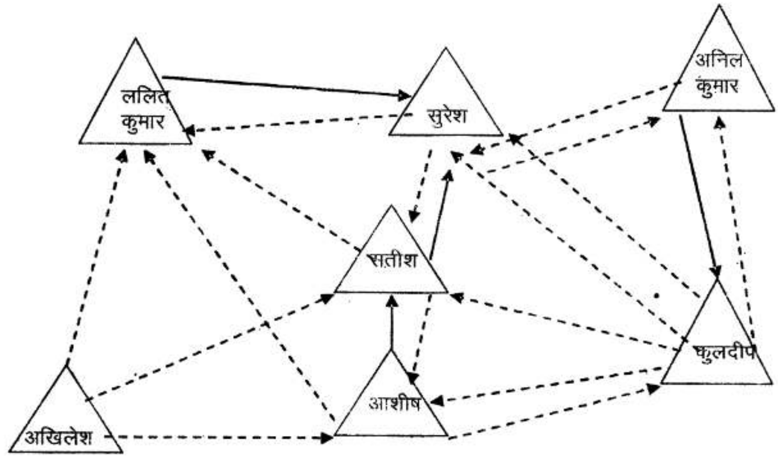

7 विद्यार्थियों के समूह का सोशियोग्राम

सोशियोग्राम की व्याख्या –

यदि जोड़ने वाली रेखाएं यह दिखाएं कि कुछ व्यक्तियों ने बस एक दूसरे को चुना और शायद ही कभी किसी को चुना हो तो 'क्लिक' का आभास होता है। 'क्लिक' आपस में सहयोग के अभाव को दिखाता है। यदि समूह का एक भाग, शेष से बिलकुल अलग हो जाए तो यह समूह में सामाजिक विभाजन को दिखाता है। सोशियों ग्राम में यदि यह दिखे कि अनेक व्यक्तियों ने एक दूसरे को चुना है तो इसका अर्थ यह हुआ कि समूह का नेतृत्व अच्छा है, सहयोग है और मिलकर काम करने की भावना है।

सोशियोग्राम में 7 विद्यार्थियों के सामाजिक सम्बन्धों को दिखाया गया है। इसमें दो स्टार्स (सतीश तथा ललित कुमार), अखिलेश को 'आइसोलेट्स' कहा जाएगा तथा चार छात्रों (अनिल कुमार, कुलदीप कुमार, सुरेश, आशीष) की उपेक्षित (नेगलेक्टीज) हैं। समूह में सामाजिक एकता का आभास होता है।

12.4.2 सामाजिक माप मैट्रिक्स (Sociometric Matrics) :-

इसमें आयताकार व्यवस्था होती है। जिसमें छात्रों की संख्या के बराबर (पंक्ति तथा कालम) बने होते हैं। यदि समूह में 5 छात्र है तो (5x5) की मैट्रिक्स बनेगी।

चयन करने वाले छात्र ↓	चयनित किए गए छात्र ⟶				
	अनिल	राकेश	रमेश	नितिन	अमित
अनिल	0	0	1	1	0
राकेश	0	0	0	1	0
रमेश	1	1	0	1	0
नितिन	1	0	0	0	0
अमित	1	0	1	1	0
योग	3	1	2	4	0

इस प्रकार से यदि हम सामाजिक सम्बन्धों का मापन करें तो इस प्रकार से प्रश्न पूछे जा सकते हैं। जैसे उपरोक्त उदाहरण में 5 सदस्यों का समूह है तो प्रश्न हो सकता है कि आप किसके साथ काम करना पसन्द करेंगे ? अनिल, रमेश तथा नितिन के साथ कार्य करना पसन्द करेंगे। राकेश, नितिन के साथ कार्य करना पसन्द करते हैं। प्रत्येक कालम के चयनों को जोड़कर यह ज्ञात किया जा सकता है । किसी सदस्य को समूह के अन्य सदस्यों द्वारा किस सीमा तक चुना गया। उपरोक्त उदाहरण में नितिन 'स्टार' है तथा अमित आइसोलेट्स की श्रेणी में आएगा।

12.4.3 समाजमितीय सूचकांक (Sociometric Index) :-

समाजमितीय सूचकांक के द्वारा एक समूह में व्यक्ति की पसन्द स्थिति (Choice Status), सामाजिक प्रसार (Expensiveness) व समूह की ससंजकता (Group Cohiveness) के विभिन्न मानों की गणना गणितीय सूत्रों की आधार पर की जाती है।

एक समूह में एक व्यक्ति की पसन्द स्थिति (Choice Status) के गणितीय माप के लिए निम्नांकित सूत्र का उपयोग किया जाता है –

$$CSj = \frac{\sum Cj}{N-1}$$

यहां पर CSj का अर्थ व्यक्ति j की पसन्द स्थिति (Choice Status) है ।

∑Ci = उसके प्रति व्यक्त की गयी पसन्दों का J स्तम्भ (Column) का योग है, तथा N-1 = समूह व्यक्तियों की संख्या में से एक के मान के घटाने पर प्राप्त संख्या का मान है।

सामाजिक प्रसाद (Expensiveness) का मापन निम्नलिखित सूत्र का उपयोग करके किया जाता है –

$$E = \frac{\sum Cij}{N}$$

जबकि E = सामाजिक प्रसार है। ∑ Cij = समूह के समस्त व्यक्तियों द्वारा समस्त पसन्दों का योग तथा N समूह व्यक्तियों की संख्या होती है।

समूह की ससंजकता (Cohesiveness) के मापन के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है :

$$Co = \sum (I \leftrightarrow J) \;/\; N\text{-}2 \;/\; 2$$

यहाँ Co समूह की ससंजकता (Cohesiveness) है तथा ∑ (I ↔J) यहां पर पारस्परिक पसन्दों का योग है।

12.4.4 गेस–हू–टेकनीक (Guess-who-Technique) -

इस तकनीक का विकास हार्टशोने तथा में के द्वारा किया गया। इस तकनीक में छात्रों के समूह में एक बच्चे को एक वर्णनात्मक प्रकथन दिया जाता है तथा कहा जाता है, समूह के जिस बच्चे से यह कथन मेल खाता हो उसका नाम लिखें। प्रत्येक कथन के लिए एक से अधिक छात्रों के नाम भी लिख सकता है। वह अपना नाम भी लिख सकता है। इस प्रकार से छात्र या व्यक्ति की सामाजिकता का पता लगाया जाता है।

12.4.5 सामाजिक दूरी स्केल (Social Distance Scale) -

इस तकनीक का विकास बोगार्डस के द्वारा किया गया है। इसमें यह आकलन किया जाता है कि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा किस अंश तक स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है।

12.5 सारांश

सामाजिक गुणों के मापन के लिये समाज के लिये समाजमिति तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में सोशियोंग्रामे, सामाजिक माप मैट्रिक्स, समाजमितीय सूचकांक, गेस–हू–तकनीक तथा सामाजिक दूरी स्केल आदि प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन सभी प्रविधियों के प्रयोग करने की विधि तथा परिणामों की व्याख्या आदि का वर्णन इस इकाई में किया जाता है ।

12.6 अभ्यास प्रश्न

1. समाजमिति विधि क्या है ?
2. समाजमितीय विश्लेषण की प्रविधियां को स्पष्ट कीजिए ?
3. सोशियोग्राम को समूह के चित्र सहित स्पष्ट कीजिए ?
4. समाजिक माप मैटिक्स को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. समाजमितिय सूचकांक को सूत्र के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।
6. गेस–हू–टेकनीक एंव सामाजिक दूरी स्केल के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेस्ट, जॉन डब्लू : रिसर्च इन एजूकेशन, इन्गलवुड क्लिफ, एन0जे0, प्रिन्टिस हाल, नई दिल्ली, 1997।

सिंह, अरूण कुमार : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली, 2007।

कौल, लोकेश : शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2005।

भटनागर, आर0पी0 : शिक्षा अनुसन्धान, लायल बुक डिपो, मेरठ, 2003।

गुप्ता, एस0पी0 : आधुनिक मापन और मूल्यांकंन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2010।

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MSW-105
शोध विधियां तथा सांख्यिकी

खण्ड
4
सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इकाई- 13

केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें 145

इकाई- 14

सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र 169

इकाई- 15

सांख्यिकीय अनुमान का आधार, टी- परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण 184

इकाई- 16

अप्राचलिक सांख्यिकी 195

परामर्श समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति – अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता –कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 ए0 के0 सिंह	कुलसचिव – सचिव

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0 पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो0 एस0 सी0 अग्रवाल	शिक्षाशास्त्र विभाग, सी0एस0जे0एम0, विश्वविद्यालय, कानपुर

लेखक

डॉ0 प्रदीप कुमार पाण्डेय	उपनिदेशक/ उपाचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक–कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2024

शोध विधियाँ तथा सांख्यिकी

खण्ड-1 शोध का अर्थ, आवश्यकता, समस्या की प्रकृति तथा डिजाइन

इकाई-01 शोध का अर्थ, प्रकार एवं आवश्यकता

इकाई-02 शोध समस्या की प्रकृति एवं चयन

इकाई-03 शोध परिकल्पना

इकाई-04 शोध प्रतिचयन एवं आंकड़ों का प्रतिचयन

खण्ड-2 अनुसन्धान के प्रकार

इकाई-05 ऐतिहासिक अनुसन्धान

इकाई-06 वर्णनात्मक अनुसन्धान

इकाई-07 प्रयोगात्मक अनुसन्धान

इकाई-08 गुणात्मक अनुसन्धान

खण्ड-3 आंकड़ों के संग्रह की तकनीकियाँ

इकाई-09 परीक्षण

इकाई-10 साक्षात्कार एवं मापनी विधियाँ

इकाई-11 प्रश्नावली एवं व्यक्ति-अध्ययन विधि

इकाई-12 समाजमिति प्रविधि

खण्ड-4 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इकाई-13 केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें

इकाई-14 सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र

इकाई-15 सांख्यिकी अनुमान का आधार, टी-परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

इकाई-16 अप्राचलिक सांख्यिकी

खण्ड- परिचय -4 : सांख्यिकीय प्रविधियाँ

इस खण्ड में शैक्षिक अनुसन्धान के लिये आवश्यक सांख्यिकीय प्रविधियों को चार इकाइयों में समावेशित किया गया है। यो चार इकाइयाँ क्रमशः केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें, सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र, सांख्यिकीय अनुमान का आधार, टी–परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण एवं अप्राचलिक सांख्यिकी से सम्बन्धित है।

इकाई–13 में केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें के अन्तर्गत मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलक की चर्चा किसी समूह की विशेषताओं को एक प्राप्तांक द्वारा व्यक्त करने के रूप में की गयी है। इन तीनों मापों का प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर किया जाता है। परन्तु इस एक मान से समूह के बारे में बहुत अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती इसलिए समूह की विचलनशीलता का ज्ञान होना भी आवश्यक है। विचलन की मापों के प्रकार, उनकी विशेषतायें एवं गणना सीखना भी आवश्यक है।

इकाई–14 में दो चरो के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात करने की विधियों के साथ–साथ सहसम्बन्ध के प्रकारों को दर्शाया गया है। सह–सम्बन्ध बताता है कि किसी समूह के एक चर के मान में परिवर्तन होने पर दूसरे चर के मान में किस प्रकार का परिवर्तन होने की सम्भावना होती है। सामान्य प्रायिकता वक्र सांख्यिकी विशेषकर अनुमानात्मक सांख्यिकी के क्षेत्र की एक महान खोज है। एक आदर्श तथा गणितीय वक्र के बाद की इसकी विशेषतायें जीवसंख्या की प्रवषत्ति के रूप में बहुत व्यावहारिक क्षेत्र के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

इकाई–15 में सांख्यिकी अनुमान के आधार कौन–कौन है, की चर्चा है। इस इकाई में दो मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता परीक्षण के रूप में बहुतायत से प्रयुक्त t- परीक्षण जो एक प्राचलिक सांख्यिकी है की विशेषताओं, मान्यताओं एवं गणना की प्रक्रिया वर्णित है। परन्तु दो से अधिक मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता हेतु एक से अधिक बार t- परीक्षण का प्रयोग करना पड़ता है। लेकिन दो से अधिक मध्यमानों की सार्थकता परीक्षण के लिये t- परीक्षण ज्यादा उपयुक्त रहता है। यह भी एक महत्वपूर्ण प्राचलिक सांख्यिकी है।

इकाई–16 में अप्रचालिक सांख्यिकी विधियों का वर्णन है। अप्राचलिक सांख्यिकी छोटे न्यादर्श तथा ऐसी परिस्थितियों में जब न्यादर्श प्राचलिक सांख्यिकी की आवश्यक शर्तो को पूरा नही करते में प्रयुक्त की जाती है। अप्राचलिक सांख्यिकी में काई–वर्ग परीक्षण सबसे महत्वपूर्ण परीक्षण है। काई–वर्ग का प्रयोग तब किया जाता है जब आँकड़े या सूचनायें आवृत्तियों के रूप में प्राप्त होते हैं। इसकी गणना प्रक्रिया भी सरल है। इस परीक्षण के अतिरिक्त 'मध्यांक परीक्षण' कोलमोगोरोव–स्मिरनोब परीक्षण, मान–व्हिटनी परीक्षण भी महत्वपूर्ण अप्राचलिक सांख्यिकी विधियां हैं।

इकाई –13 केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा विचलनशीलता की मापें

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें

- 13.3.1 मध्यमान
- 13.3.2 मध्यांक
- 13.3.3 बहुलांक

13.4 विचलनशीलता की मापें

13.5 विचलनशीलता की मापों के प्रकार

- 13.5.1 प्रसार
- 13.5.2 चतुर्थांश विचलन
- 13.5.3 मध्यमान विचलन
- 13.5.4 मानक विचलन

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.8 आंकिक अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.1 प्रस्तावना

सांख्यिकी व्यवहारिक विज्ञानों के एक साधन के रूप में समस्या समाधान हेतु सहायक होती है। सांख्यिकी, व्यवहारिक गणित से लेकर शोध अध्ययनों तक किसी भी कार्य को नहीं छोड़ती, सबका साथ देती है। यह अन्तिम निर्णय बिन्दु तक प्रहुँचने में सहायक होती है। यह समस्या हल करने में साधन एवं उपकरण के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वैसे सांख्यिकी के महत्वपूर्ण कार्य है– आंकड़ों का संकलन, आंकड़ो का वर्गीकरण, आंकड़ों का सारणीयन, आंकड़ों का व्यवस्थापन, आंकड़ो का विश्लेषण, आंकड़ो का निर्वचन आंकड़ों का सामान्यीकरण, चयन, पूर्वकथन आदि। इस इकाई में हम लोग केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापों के साथ–साथ विचलनशीलता की मापों आदि को भी समझने का प्रयास करेंगे।

13.2 उद्देश्य

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापों को समझ सकेंगें।
2. विभिन्न रूपों के आंकड़ों से केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापों की गणना का कार्य कर सकेंगें।
3. विचलनशीलता की मापों के प्रकार को समझ सकेंगे।

4. चतुर्थांश विचलन की व्याख्या कर सकेंगे।
5. व्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थांश विचलन की गणना कर सकेंगें।
6. मानक विचलन के बारे में जान सकेंगे।
7. मानक विचलन की गणना कर सकेंगें।

13.3 केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें (Masures of Central Tendency)

केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ उस मान से है जो प्राप्त ऑकड़ों का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात वह मान जो प्राप्त आँकड़ों में सबसे अधिक केन्द्र में आया हो। सामान्यतः यह एक ऐसा मान होता है जो आंकड़ों के केन्द्र में स्थित होता है तथा सभी मान इस मान की ओर ही प्रवृत्त होते हैं, इसलिये इन्हें केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान कहते हैं। इन मापों के कई प्रकार होते हैं। परन्तु शैक्षिक क्षेत्र में निम्न तीन मानों का प्रयोग किया जाता है –

(i) मध्यमान (Mean)

(ii) मध्यांक (Median)

(iii) बहुलांक (Mode)

13.3.1 (i) मध्यमान या माध्य (Mean) –

समस्त अंकों के योग में उन अंकों की संख्या का भाग देने पर जो भागफल प्राप्त होता है, उसे मध्यमान कहा जाता है।

उदाहरण के लिए 5 और 7 का मध्यमान 5+7 / 2 अर्थात 6 है। मध्यमान के संकेत को 'M' से प्रदर्शित करते हैं। इसकी निम्न विशेषतायें होती हैं –

मध्यमान की विशेषतायें :–

(1) वितरण का प्रत्येक अंक मध्यमान की स्थिति को प्रभावित करता है अर्थात् वितरण के प्राप्तांकों में से किसी प्राप्तांक के घटने–बढ़ने से उस वितरण का मध्यमान घट–बढ़ जाता है।

(2) मध्यमान दिये हुये वितरण का सन्तुलन बिन्दु या केन्द्र–बिन्दु होता है।

(3) दिये हुए वितरण के छोरों पर स्थिति प्राप्तांक मध्यमान के मान को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं।

(4) दिये गये वितरण के सभी प्राप्तांकों को एक निश्चित राशि से गुणा करने पर मध्यमान का मान भी निश्चित राशि के गुणनफल के बराबर हो जाता है।

मध्यमान का प्रयोग कब करें –

1. जब सबसे अधिक विश्वसनीय केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान का पता लगाना हो।

2. शुद्ध केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप की गणना हेतु भी मध्यमान की गणना की जाती है।
3. वितरण के प्रत्येक अंक को महत्व देने के लिए भी मध्यमान की गणना की जाती है।
4. अनेक सांख्यिकी गणनाओं जैसे प्रमाणिक विचलन, मध्यमान विचलन, सह सम्बन्ध आदि की गणना में भी मध्यमान का प्रयोग होता है।
5. तुलनात्मक अध्ययन करते समय भी मध्यमान की गणना की जाती है।
6. जब प्राप्तांको का वितरण सामान्य होता है तब भी मध्यमान की गणना की जाती है।

मध्यमान के लाभ (Advantages of Mean) -

1. इसकी गणना शीघ्रता से की जा सकती है।
2. केन्द्रीय प्रवृत्ति का सर्वाधिक शुद्ध मान इसी के प्रयोग से प्राप्त होता है।
3. मध्यमान की सहायता से दो या दो से अधिक समूहों के मध्य तुलना अन्य केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों की तुलना में सबसे अधिक सरलता से होती है।
4. दिये गये वितरण के अंकों का शुद्ध प्रतिनिधित्व मध्यमान ही करता है।

मध्यमान के दोष (Disadvantages of Mean)-

1. मध्यमान के द्वारा कभी–कभी असम्भव प्रकृति के परिणाम भी प्राप्त हो जाते हैं जैसे– 10.50 विद्यार्थी आदि।
2. प्राप्तांको के अधूरे होने पर मध्यमान की गणना नहीं की जा सकती है।
3. प्राप्तांको का वितरण सामान्य न होने पर मध्यमान की गणना करना उपयुक्त नहीं होता है।

अव्यवस्थित आँकड़ों का मध्यमान –

अव्यवस्थित आँकों का मध्यमान ज्ञान करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

सूत्र : $M = \sum X / N$

जहॉं M = मध्यमान, X = प्राप्तांक

$\sum$ = कुल योग, N = प्राप्तांको की संख्या

उदाहरण – किसी परीक्षण पर चार छात्रों के प्राप्तांक 10, 12, 14, 16 है। इन प्राप्तांको का मध्यमान ज्ञान करिये –

हल – प्रश्नानुसार $X = 10, 12, 14, 16$

$\sum X = 10 + 12 + 14 + 16 = 52$

$N = 4$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर, $M = \sum X/N = 52/4 = 13$ उत्तर

व्यवस्थित ऑकड़ों का मध्यमान :–

व्यवस्थित ऑकड़ों से मध्यमान ज्ञात करने की निम्नलिखित दो विधियाँ है–

1. दीर्घ विधि (Long Method)
2. संक्षिप्त विधि (Short Method)

(1) दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने का सूत्र –

$$M = \frac{\sum fx}{N}$$

जबकि M = मध्यमान

x = वर्गान्तर का मध्य बिन्दु = $\frac{\text{उच्च सीमा + निम्न सीमा}}{2}$

$\sum$ = कुल योग f = आवृत्तियां

fx = आवृत्तियॉं तथा मध्य बिन्दु का गुणा

N = आवृतियों का योग

दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करना –

दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने में निम्न पद अपनाये जाते हैं –

1. अंक सामग्री को व्यवस्थित कर वर्गान्तरों के मध्य बिन्दु को ज्ञात करना।
2. प्रत्येक वर्गान्तर के मध्य बिन्दु से उसके सामने की आवृत्ति से गुणा करके fx के स्तम्भ में लिखना।
3. fx स्तम्भ की संख्याओं को जोड़कर $\sum fx$ मूल्य ज्ञात करना।
4. मध्यमान निकालने के लिए $\sum fx$ को N से भाग देना।

उदाहरण – 2

निम्न आवृत्ति वितरण के लिये मध्यमान की गणना कीजिये ?

वर्गान्तर (CI)	35 – 39	30 – 34	25 – 29	20 - 24	15 – 19	10-14	5 - 9
आवृत्ति (f)	3	4	2	8	6	3	4

हल – निम्न तालिका बनाकर मध्यमान को ज्ञात किया जा सकता है–

दीर्घ विधि द्वारा मध्यमान की गणना

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)	मध्य बिन्दु(Mid Point)	fx
35 – 39	3	37	111
30 – 34	4	32	128
25 – 29	2	27	54
20 – 24	8	22	176
15 – 19	6	17	102
10 – 14	3	12	36
5 – 9	4	7	28
	N = 30		$\sum fx = 635$

(2) **संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने का सूत्र –**

$$M = AM + (\sum fd / N) \times C.I.$$

जबकि M = मध्यमान

AM = कल्पित मान

fd = आवृत्ति और विचलन का गुणा

N = आवृत्तियों का योग

C.I = वर्गान्तरों का आकार = (वर्गान्तर की उच्च सीमा – निम्न सीमा) + 1

संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञान करना –

संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात करने में निम्न पद अपनाये जाते हैं।

1. किसी भी वर्गान्तर में कल्पित मध्यमान का निर्धारण कर उसके मध्य बिन्दु को ज्ञात करना।
2. विचलनों का निर्धारण करना। जिस वर्गान्तर में कल्पित मध्यमान मानते हैं उसके सामने विचलन (d) वाले स्तम्भ में शून्य लिखना तथा जिधर मध्य बिन्दुओं का मान बढ़ता है उस ओर विचलन क्रमशः +1, +2, +3, +4 आदि लिखते हैं और जिस ओर मध्य बिन्दुओं का मान घटता है उस ओर क्रमशः -1, -2, -3, -4 आदि लिखते हैं।
3. प्रत्येक वर्गान्तर की f (आवृत्ति) का गुणा उसके विचलन (d) से कर fd ज्ञात करना।
4. सभी वर्गान्तरों के fd मान का योग $\sum fd$ ज्ञात करना। इसके लिए धनात्मक तथा ऋणात्मक संख्याओं का योग अलग–अलग ज्ञात करते हैं। इसके बाद दोनों का योग करते हैं यह योग $\sum fd$ के बराबर होता है।
5. वर्गान्तर के अन्तराल (C.I.) तथा आवृत्तियों के योग (N) को ज्ञात करना।
6. सभी संख्याओं को सूत्र में रखते हुए गणना कर मध्यमान ज्ञात करना।

उदाहरण – निम्नलिखित प्रदत्तों के लिये संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान ज्ञात कीजिए–

वर्गान्तर (CI)	20 – 24	15 – 19	10 – 14	5 - 9	0 – 4
आवृत्ति (f)	4	8	6	4	3

हल – निम्न तालिका बनाकर मध्यमान को ज्ञात किया जा सकता है–

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)	विचलन (d)	विचलन x आवृत्ति (fd)
20 – 24	4	+2	+8
15 – 19	8	+1	+8 } +16
10 – 14	6	0	0
5 – 9	4	-1	-4
0 – 4	3	-2	-6 } -10
	N=25		$\sum fd = +6$

$$M = M + \frac{(\sum fd)}{N} \times C.I.$$

जबकि $AM = 12$ $\quad \sum fd = +6$

$C.I. = 5$ $\quad N = 25$

$$\text{मध्यमान} = 12 + \frac{6}{25} \times 5$$

$$= 12 + 30/25$$

$$= 12 + 1.20$$

मध्यमान (M) = 13.20 उत्तर

13.3.2 (ii) मध्यांक (Median) –

केन्द्रीय प्रवृत्ति का दूसरा महत्वपूर्ण माप मध्यांक (Median) है। यह दो शब्दों मध्य + अंक से मिलकर बना है, जिसका अर्थ मध्य का अंक बताने वाला माप है। अतः मध्यांक वह बिन्दु है जो कि प्रदत्त (data) को दो समान भागों में विभक्त कर देता है। मध्यांक के बिन्दु से एक ओर अधिक मान वाले 50 प्रतिशत प्रदत्त होते हैं तथा दूसरी ओर कम माने वाले शेष 50 प्रतिशत प्रदत्त होते हैं। इसे सामान्यतः संकेत Md से प्रदर्शित किया जाता है।

मध्यांक की विशेषताएं :–

1. मध्यांक वह बिन्दु है जो कि प्रदत्त को दो समान भागों में विभाजित करता है।
2. किसी वितरण के छोरों पर स्थित प्राप्तांक मध्यांक के मान को कम प्रभावित करते हैं।
3. मध्यांक की मानक त्रुटि मध्यमान की मानक त्रुटि से अधिक परन्तु बहुलांक की मानक त्रुटि से कम होती है।

मध्यांक का प्रयोग कब करें –

1. जब अंक सामग्री या प्रदत्तों का वास्तविक मध्य बिन्दु ज्ञात करना हो।
2. जब प्रदत्त सामान्य वितरण के अनुरूप न हो तथा उसमें विषमता भी निहित हो, तब केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के रूप में मध्यांक का प्रयोग करना चाहिए।
3. जब अपेक्षाकृत कम शुद्ध केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान की आवश्यकता हो।
4. जब अपूर्ण वितरण दिया हो अर्थात् प्रदत्तें से कुछ अंक न मिल सके हों।

मध्यांक की गणना

(1) अव्यवस्थित आंकड़ो का मध्यांक ज्ञात करना –

अव्यवस्थित अंक सामग्री के मध्यांक ज्ञात करने का निम्न सूत्र है–

$$Md = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{ term}$$ वं वां पद में से एक

जबकि N = प्राप्तांको का योग

अव्यवस्थित प्रदत्त द्वारा मध्यांक की गणना करने के लिए सर्वप्रथम सभी प्राप्तांको को आरोही या अवरोही के क्रम में व्यवस्थित करते हैं। तत्पश्चात प्राप्तांको की संख्या में एक जोड़कर और 2 से भाग देकर प्राप्त मान वाले प्रदत्त को ज्ञात कर मध्यांक ज्ञात करते हैं।

<u>**उदाहरण–**</u> निम्न अव्यवस्थित आंकड़ो का मध्यांक ज्ञात करिये–

4, 9, 8, 6, 7, 9, 3, 5, 12

हल : अंको को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर

3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 9, 12

चूँकि प्राप्तांको की संख्या N =9 है, इसलिये N के इस मूल्य को उपरोक्त सूत्र में

$$Md = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{ term}$$

$$= \left(\frac{9+1}{2}\right)^{th} \text{ term}$$

$$= \left(\frac{10}{2}\right)^{th} \text{ term}$$

$$= 5^{th} \text{ term}$$ = अभीष्ट मध्यांक

क्रम में व्यवस्थित अंको में पाचवाँ पद (term) 7 है। अतः अभीष्ट मध्यांक 7 है।

विशेष – उपरोक्त सूत्र का प्रयोग N के विषम संख्या में होने पर किया जाता है। यदि प्रदत्तों /प्राप्तांको की कुल संख्या N एक सम संख्या हो तो उपरोक्त सूत्र निम्न प्रकार का होगा–

$$Md = \frac{\left(\frac{N}{2}\right) + \left(\left(\frac{n}{2}\right) + 1\right)}{2} \text{ वां पद}$$

(2) व्यवस्थित आँकड़ों का मध्यांक ज्ञात करना :–

व्यवस्थित अंक सामग्री का मध्यांक ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$Md = L + \left(\frac{\frac{N}{2} - F}{fm}\right) \times i$$

जबकि Md = मध्यांक

L = मध्यांक वर्गकी वास्तविक निम्नतम सीमा है।

fm = मध्यांक वर्ग की आवृत्ति है।

$\frac{N}{2}$ = आवृत्तियों या प्राप्तांको के योग का आधा

F = L के नीचे की आवृत्तियों का योग

i = वर्गान्तर का विस्तार

व्यवस्थित आँकड़ो से मध्यांक की गणना निम्न पदों में करते हैं –

1. आवृत्ति वितरण में दी गयी आवृत्तियों की संचयी आवृत्ति ज्ञात करते हैं।
2. आवृत्तियों के योग के आधे (N/2) की गणना करते हैं।
3. फिर मध्यांक वर्ग का निर्धारण करते हैं अर्थात वह वर्गान्तर जिसमें आवृत्तियों कें योग की आधी वाली संख्या (N/2) वीं संचयी आवृत्ति पड़ती है।
4. इस वर्गान्तर की वास्तविक उच्चतम सीमा तथा निम्नतम सीमा ज्ञात करते हैं।
5. सूत्र के आधार पर मध्यांक की गणना करते हैं।

उदाहरण–निम्नलिखित व्यवस्थित प्रदत्त के आधार पर मध्यांक की गणना करिये।

वर्गान्तर (CI)	35 – 39	30 – 34	25 – 29	20 - 24	15 – 19	10-14	5 - 9
आवृत्ति	6	4	3	5	7	3	2

<u>हल</u> – निम्न तालिका बनाकर मध्यमान को ज्ञात किया जा सकता है–

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)	संचयी आवृत्ति (c.f.)
35 – 39	6	30
30 – 34	4	24
25 – 29	3	20
20 – 24	5	17
15 – 19	7	12
10 – 14	3	5
5 – 9	2	2
	N = 30	

अतः उपरोक्त तालिका से N/2 = 15 का मान संचयी आवृत्ति 17 में स्थित होगा। इसलिये मध्यांक वर्ग 20–24 होगा।

$L = 19.50$ $N/2 = 15$ $fm = 5$ $F=12$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर–

$$Md = L + \left(\frac{\frac{N}{2} - F}{fm}\right) x\ i$$

$$= 19.50 + \left(\frac{\frac{30}{2} - 12}{5}\right) \times 5$$

$$= 19.50 + \left(\frac{15-12}{5}\right) \times 5 = 19.50 + 3 = 22.50 \text{ Ans.}$$

13.3.3 (iii) बहुलांक (Mode)

अव्यवस्थित अंक सामग्री में जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसे प्राप्तांक की दी हुई अंक सामग्री का बहुलांक कहते हैं। गिलफोर्ड के अनुसार, "किसी वितरण में वह बिन्दु जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक ही, बहुलांक कहलाता है।" बहुलांक को अंग्रेजी में Mode कहा जाता है। Mode शब्द फ्रेंच भाषा के La Mode से बना है, जिसका अर्थ फैशन या रिवाज होता है। जिस वस्तु का फैशन होता है, अधिकांश व्यक्ति उसी वस्तु का उपभोग करते हैं। सांख्यिकी में इसका अर्थ उस प्राप्तांक से होता है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक हो।

बहुलांक की विशेषतायें :–

1. बहुलांक की गणना अन्य केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों की अपेक्षा सरल है।
2. यह केन्द्रीय प्रवृत्ति का अधिक स्थिर और विश्वसनीय मान नहीं है।
3. बहुलांक शुद्धता की दृष्टि से मध्यमान (Mean) तथा मध्यांक (**Median**) **की** अपेक्षा कम शुद्ध माप है।
4. बहुलांक का मापन अधिक सरलता से व शीघ्रता से ज्ञात किया सकता है।

बहुलांक का प्रयोग कब करें :–

1. जब सबसे कम शुद्ध केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान की गणना करनी हो।
2. जब केवल निरीक्षण मात्र से ही केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान की गणना करनी हो।
3. जब अधिक लोकप्रिय, फैशन या शीघ्रता से किसी समस्या का अध्ययन करना हो।
4. जब वितरण के कुछ वर्ग या अंक छूटे हुए हों।

<u>अव्यवस्थिति आंकड़ो का बहुलांक</u> :–

अव्यवस्थित अंक सामग्री का बहुलांक ज्ञात करने के लिये यह देखा जाना चाहिये कि किस अंक की आवृत्ति सबसे अधिक है। सर्वाधिक आवृत्ति वाला अंक ही बहुलांक होगा।

उदाहरण – निम्नलिखित अंक सामग्री का बहुलांक ज्ञात करिये –

6, 7, 9, 8, 11, 8, 10, 8, 9, 7, 8, 12, 6

इस तालिका से स्पष्ट है कि 8 अंक की आवृत्ति सर्वाधिक हुयी है अस्तु अभीष्ट बहुलांक 8 होगा।

व्यवस्थित आंकड़ों का बहुलांक –

व्यवस्थित अंक सामग्री का बहुलांक ज्ञात करने के लिये दो सूत्र प्रयोग में लाये जाते हैं।

प्रथम सूत्र– Mo = 3 Median - 2 Mean

इस विधि द्वारा बहुलांक ज्ञात करने के लिये अंक सामग्री का मध्यांक व मध्यमान ज्ञात किया जाता है तत्पश्चात मध्यांक में 3 का गुणा करके उसमें से मध्यमान के दूने को घटा दिया जाता है।

द्वितीय सूत्र –

$$Mo = L + \frac{(f - f_1)}{(f - f_1) + (f - f_2)} \times C.I.$$

जबकि L = उस वर्गान्तर की वास्तविक निम्नतम सीमा जिसमें आवृत्तियों की संख्या सबसे अधिक है।

f = उस वर्गान्तर की आवृत्ति जिसमें आवृत्तियो की संख्या सबसे अधिक है।

f_1 = सबसे अधिक आवृत्तियों वाले वर्गान्तर के ठीक नीचे वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

f_2 = सबसे अधिक आवृत्तियों वाले वर्गान्तर के ठीक ऊपर वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

C.I = वर्गान्तर विस्तार

इस सूत्र द्वारा बहुलांक ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम वह वर्गान्तर ढूँढते है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक हो, फिर इस वर्गान्तर की वास्तविक निम्न सीमांक ज्ञात करते हैं। फिर f, f_1, f_2 तथा C.I. ज्ञात करते हैं। इन सभी मूल्यों को उपरोक्त सूत्र में रखकर बहुलांक की गणना कर लेते हैं ।

उदाहरण – निम्न व्यवस्थित अंक सामग्री का बहुलांक ज्ञात कीजिए–

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)
50 – 54	2
45 – 49	2
40 – 44	3
35 – 39	3
30 – 34	5
25 – 29	4
20 – 24	3
15 – 19	2
10 – 14	1
	N = 25

हल : प्रथम सूत्र के अनुसार बहुलांक

उपरोक्त प्रश्न का पूर्व वर्णित विधियों से मध्यमान तथा मध्यांक ज्ञात करने पर

$M(Mean) = 32.6$

$Md(Median) = 32$

सूत्र से $Mo = 3\ Median - 2\ Mean$

$Mo = 3 \times 32 - 2 \times 32.6$

$= 96 - 65.2$

$= 30.80$

अर्थात बहुलांक $= 30.80$

द्वितीय सूत्र के अनुसार बहुलांक –

प्रश्न में $L = 29.5\quad f = 5,\quad f_1 = 4,\quad f_2 = 3,\quad C.I. = 5$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर

$$Mo = L + \frac{(f - f_1)}{(f - f_1) + (f - f_2)} \times C.I.$$

$$= 29.5 + \frac{(5-4)}{(5-4)+(5-3)} \times 5$$

$$= 29.5 + \frac{1}{1+2} \times 5$$

$$= 29.5 + \frac{1}{3} \times 5$$

$= 31.166$ अथवा 31.17

अर्थात बहुलांक $= 31.17$

दोनों सूत्रों से प्राप्त बहुलाक के मानो में दृष्टिगोचर अन्तर गणना की विधियों के कारण है। जो दशमलव मान में है। इस सूक्ष्म अन्तर को सांख्यिकी गणना के क्षम्य माना जाता है।

13.4 विचलनशीलता की मापें (Masures of Variability)

प्रदत्त की मध्य स्थिति अथवा केन्द्रीय स्थिति का ज्ञान मध्यमान (Mean), मध्यांक (Median) तथा बहुलांक द्वारा ज्ञात होता है, किन्तु प्रदत्त के प्राप्तांको का फैलाव किस प्रकार का है ? यह ज्ञान हमें विचलन के माप द्वारा ज्ञात होता है।

लिंडक्यूस्ट (1950) के अनुसार, "विचलनशीलता (variability) वह सीमा है, जिसमें प्राप्तांक अपने मध्यमान के ऊपर और नीचे की ओर फैले या बिखरे होते हैं।"

गैरेट (1973) के अनुसार, " विचलनशीलता (Variability) का अर्थ प्राप्तांको के वितरण या फैलाव से है, यह फैलाव प्राप्तांको की केन्द्रीय प्रवृत्ति के चारो ओर होता है।"

अतः उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी अंक सामग्री का विचलन अंक उस अंक सामग्री के मध्यमान के दोनो ओर उसके विभिन्न अंको के विचलन या फैलाव को प्रदर्शित करता है। विचलन मानों की सहायता से विभिन्न समूहों की सजातीय (Homogeneity) तथा विषम जातीयता (Hetrogeneity) ज्ञात की जाती है। एक समूह का विचलन मान जितना कम होता है। समूह उतना ही अधिक सजातीय होता है और विचलन मान जितना अधिक होता है समूह उतना ही अधिक विषम जातीय होता है।

13.5 विचलनशीलता की मापों के प्रकार

विचलनशीलता को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित चार विधियाँ या माप (Measures) अधिक प्रचलित है। प्रायः इन्हीं मापों का प्रयोग मनोविज्ञान और शिक्षा में अधिक होता है–

(1) प्रसार (Range)

(2) चर्तुथांश विचलन (Quartile Deviation or Q)

(3) मध्यमान विचलन (Mean Deviation or M.D.)

(4) मानक विचलन (Standard Deviation or S.D.)

13.5.1 प्रसार (Range) -

विचलन के मापकों में प्रसार अपेक्षाकृत सरल माप है। इसका प्रयोग आवृत्ति वितरण तालिका (Frequency Distribution Table)□ बनाते समय किया जाता है। अधिकतम अंक या मान (Highest Score) तथा न्यूनतम अंक (Lowest Score) के अन्तर को प्रसार कहते हैं। इसका संकेत चिन्ह (Symbol) R है।

उदाहरण – निम्नलिखित प्राप्तांको का प्रसार ज्ञात कीजिए–

21, 36, 38, 26, 27, 28, 30, 32, 24, 19, 22, 30

हल– प्रश्न में, अधिकतम प्राप्तांक (Highest Score) =38

निम्नतम प्राप्तांक (Lowest Score) = 19

अतः प्रसार $R = 38 - 19 = 19$ उत्तर।

प्रसार की विशेषताएं –

1. प्रसार अधिकतम और न्यूनतम अंको के बीच की दूरी है।
2. दिये हुए प्राप्तांको में से मध्य के प्राप्तांको का प्रभाव प्रसार पर नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए 5, 8, 11, 14, 17, 19 और 5, 9, 9, 8, 18, 19 दोनों समूहों का प्रसार एक सा ही है।
3. प्रसार के द्वारा अधिकतम प्राप्तांक व न्यूनतम प्राप्तांक के बीच की दूरी (Distance) का ज्ञान होता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप के समान स्थिति (Location) का ज्ञान नही होता है।

4. प्रसार मुख्य रूप से प्रतिदर्श के आकार पर निर्भर होता है। यदि प्रतिदर्श का आकार बड़ा है, तब प्रसार अधिक होता है तथा जब प्रतिदर्श का आकार छोटा होता है, प्रसार छोटा होता है।
5. प्रसार का प्रयोग वर्णनात्मक स्तर तक ही किया जाता है, निष्कर्षात्मक (inferential) कार्यों में इसका उपयोग नहीं होता है।
6. प्रसार की गणना बहुत सरल है। बहुधा इसका प्रयोग आवृत्ति वितरण बनाने में होता है।

प्रसार का प्रयोग कब करें :–

1. जब प्रदत्त इतने बिखरे हों कि अन्य विचलन मापकों का प्रयोग न किया जा सके।
2. जब किसी वितरण के विचलन का सरलता और अति शीघ्रता से पता लगाना हो।
3. जब वितरण का कुल फैलाव ज्ञात करना हो।
4. जब अधिक शुद्ध विचलन की आवश्यकता न हो।

13.5.2 चतुर्थांश विचलन (Quartile Deviation)

चतुर्थांश विचलन प्रथम और तृतीय चतुर्थांशों के मध्य अन्तर का आधा होता है। दूसरे शब्दों में, किसी आवृत्ति वितरण में 75वें प्रतिशतांक (Percentile) और 25 वें प्रतिशतांक के बीच की आधी दूरी को चतुर्थांश विचलन कहा जाता है। प्रथम चतुर्थांश का अर्थ है 25वा प्रतिशतांक या Q_1 और तृतीय चतुर्थाश का अर्थ है 75 वाँ प्रतिशतांक या Q_3 । चतुर्थांश विचलन का संकेत चिन्ह (Symbol) Q या Q.D. है।

चतुर्थांश विचलन (Q or Q.D.) =

या

चतुर्थांश विचलन (Q or Q.D.) =

गैरेट (1973) के अनुसार चतुर्थांश विचलन, "किसी आवृत्ति वितरण में शतांशीय मान 75 तथा शतांशीय मान 25 के मध्य अन्तर का आधा होता है।"

चतुर्थांश विचलन की विशेषतायें :–

1. चतुर्थांश विचलन Q_3 और Q_1 के अन्तर की आधी दूरी है।
2. चतुर्थांश विचलन के अन्तर्गत प्रारम्भिक और अन्तिम छोर के प्राप्तांकों को महत्व नहीं दिया जाता है।
3. इसका प्रयोग वर्णनात्मक सांख्यिकी में निष्कर्षात्मक सांख्यिकी की तुलना में अधिक होता है।
4. चतुर्थांश विचलन की गणना तथा उसके गुण मध्यांक के समान होते हैं।

5. चतुर्थांश विचलन की गणना क्रमिक स्तर (Ordinal Level) के प्रदत्तों के लिऐ अधिक उपयुक्त होती है।

चतुर्थांश विचलन का प्रयोग कब करें –

1. जब प्राप्तांको का वितरण सामान्य हो।
2. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों से मध्यांक की गणना की गई हो।
3. जब प्रतिदर्श छोटो हो तथा जब अंक वितरण अपूर्ण हो।
4. जब अंक वितरण के प्राप्तांको का फैलाव अधिक हो। जिससे मानक विचलन के अशुद्ध मान प्राप्त होने की सम्भावना हो।

अव्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थांश विचलन की गणना करना –

अव्यवस्थित अंक सामग्री का चतुर्थांश विचलन ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करते हैं –

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जब कि $Q_1 = Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right)^{th}$ term

$$Q_3 = Q_3 = \left(\frac{3(N+1)}{4}\right)^{th} \text{ term}$$

N = प्राप्तांको की संख्या

उदाहरण – दिये हुए अव्यवस्थित अंको का चतुर्थांश विचलन ज्ञात कीजिए–

पद संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9
प्राप्तांक	17	19	23	24	25	28	30	30	32

हल– सर्वप्रथम प्राप्तांकों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करना होगा–

उपरोक्त उदाहरण में दिये हुए अंक आरोही क्रम में है–

इसलिये $Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right)^{th}$ term $= \left(\frac{9+1}{4}\right)^{th}$ term

$$= \left(\frac{10}{4}\right)^{th} \text{ term} = 2.5^{th} \text{ term} = 21$$

अर्थात $Q_1 = \frac{\text{2 वां पद + 3वां पद}}{2} = \frac{19+23}{2} = \frac{42}{2} = 21$

$$Q_3 = \left(\frac{3(N+1)}{4}\right)^{th} \text{ term} = \left(\frac{3(9+1)}{4}\right)^{th} \text{ term}$$

$$= \left(\frac{30}{4}\right)^{th} \text{ term} = 7.5^{th} \text{ term} = 30$$

अर्थात $Q_3 = \dfrac{\text{7वां पद + 8वां पद}}{2} = \dfrac{30+30}{2} = \dfrac{60}{2} = 30$

अतः Q_1 तथा Q_3 का मान क्रमश : 21 और 30 है।

इसलिये $Q = \dfrac{Q_3 - Q_1}{2} = \dfrac{30-21}{2} = \dfrac{9}{2} = 4.5$ उत्तर

व्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थांश विचलन की गणना –

व्यवस्थित अंक सामग्री का चतुर्थांश विंचलन ज्ञात करने का सूत्र निम्नलिखित है।

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जबकि Q = चतुर्थांश विचलन

Q_3 = वह प्रतिशतांक जिसके नीचे 75 प्रतिशत आवृत्तियाँ होती है।
Q_1 = वह प्रतिशतांक जिसके नीचे 25 प्रतिशत आवृत्तियाँ होती है।

$$Q_1 = L + \left(\frac{N/4 - F}{fq}\right) x\, i$$

$$Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{fq}\right) x\, i$$

जबकि L = उस वर्गान्तर की वास्तविक निम्नतम सीमा जिसमें Q_1 या Q_3 पड़ते हैं।

N = आवृत्तियों का कुल योग

F = उस वर्गान्तर के नीचे स्थित संचित आवृत्ति जिसमें Q_1 या Q_3 है।

f_q = जिस वर्गान्तर में Q_1 या Q_3 है उस वर्गान्तर की आवृत्ति

i = वर्गान्तर का आकार

विशेष – Q_1 व Q_3 वर्ग को माध्यांक वर्ग की भाँति निर्धारित किया जाता है अर्थात N/4 का मान जिस संचयी आवृत्ति वर्ग में स्थित होगा वह Q_1 वर्ग तथा 3N/

4 का मान जिस संचयी आवृत्ति वर्ग में स्थित होगा वह Q_3 वर्ग कहा जाता है।

उदाहरण – दी हुई व्यवस्थित अंक सामग्री का चतुर्थांश विचलन ज्ञात कीजिए।

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)	संचयी आवृत्ति (F)
50 – 54	2	28
45 – 49	3	26
40 – 44	3	23
35 – 39	3	20
30 – 34	5	17
25 – 29	4	12
20 – 24	4	8
15 – 19	2	4
10 – 14	2	2
		N = 28

हल– प्रश्न में, N / 4 = 7, 20 -24 वर्ग की संचयी आवृत्ति वर्ग में स्थित है इसलिये F = 4, fq = 4, L=19.5, i = 5

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$Q_1 = L + \left(\frac{N/4 - F}{fq}\right) x\, i$$

$$= 19.5 + \left(\frac{7-4}{4}\right) \times 5 = 19.5 + 3.75 = 23.25$$

प्रश्न में, 3N / 4 = 21, 40 - 44 वर्ग की संचयी आवृत्ति वर्ग में स्थित है इसलिये F = 20, fq = 3, L=39.5, i = 5

$$Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{fq}\right) \times i$$

$$= 39.5 + \left(\frac{21-20}{4}\right) \times 5 = 39.5 = 40.75$$

अतः $Q = \dfrac{Q_3 - Q_1}{2} = \dfrac{40.75 - 23.25}{2} = \dfrac{17.50}{2} = 8.75$

13.5.3 मध्यमान विचलन (Mean Deviation Or M.D.)

गिलफर्ड के अनुसार मध्यमान विचलन, मध्यमान से भिन्न–भिन्न प्राप्तांको के विचलनों का मध्यमान है जबकि धन तथा ऋण चिन्हों को ध्यान में न रखा गया हो। मध्यमान विचलन का संकेत चिन्ह (Symbol) A.D. या M.D. है। मध्यमान विचलन मध्यमान से विचलन का सापेक्ष मापक है।

मध्यमान विचलन, प्रसार और चतुर्थांश विचलन दोनों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त विचलन का मापक है क्योंकि प्रसार के बीच के अंको को कोई महत्व नहीं दिया जाता है तथा चतुर्थांश विचलन में भी मध्य के केवल कुछ ही प्राप्तांको को महत्व दिया जाता है।

मध्यमान विचलन की विशेषतायें :–

1. मध्यमान विचलन की गणना पर सभी प्राप्तांको का प्रभाव पड़ता है। अतः यह अंक वितरण का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।
2. इसकी गणना करना सरल है।
3. मध्यमान विचलन पर प्रदत्त के प्रारम्भिक तथा अन्तिम छोर के प्राप्तांको का प्रभाव कम पड़ता है।

मध्यमान विचलन का प्रयोग कब करना चाहिए ?

1. जब प्रदत्त इतने बिखरे हो कि प्रामाणिक विचलन के अशुद्ध निकलने की सम्भावना हो।
2. जब प्राप्तांको का वितरण लगभग सामान्य हो।
3. जब वितरण के प्रत्येक अंक को उसके आकार के अनुसार महत्व देना हो।
4. जब वितरण के मध्यमान के दोनो ओर विचलन ज्ञात करना हो।

अव्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना –

अव्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन को निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जाता है।

$$M.D. = \frac{\sum |X'|}{N}$$

$|X'|$ = प्राप्तांक का मध्यमान से विचलन

$|X'|$ = X' के दोनो ओर खिंची रेखायें यह प्रदर्शित करती है कि योगफल निकालते समय धन या ऋण चिन्ह पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

N = प्राप्तांको की संख्या

उदाहण – निम्नलिखित अव्यवस्थित प्रदत्त के आधार पर मध्यमान विचलन की गणना करिये।

20, 12, 18, 24, 10, 16, 26

हल– मध्यमान = $\frac{\sum X}{N} = 126/7 = 18$

प्राप्तांक (X)	$X^1 = X - M$	$\lvert X^1 \rvert$
20	2	2
12	-6	6
18	0	0
24	6	6
10	-8	8
16	-2	2
26	8	8
$N = 7, \sum X = 126$		$\sum \lvert X^1 \rvert = 32$

मध्यमान विचलन(M.D.) = $\frac{\sum \lvert X^1 \rvert}{N} = 32/7 = 4.57$

व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना –

व्यवस्थित अंक सामग्री के आधार पर मध्यमान विचलन ज्ञात करने का सूत्र निम्नलिखित हैं।

$$M.D. = \frac{\sum \lvert X^1 \rvert}{N}$$

$\lvert x^1 \rvert$ = प्राप्तांक या मध्य बिन्दु का मध्यमान से विचलन

f = आवृत्ति

N = आवृत्तियों का कुल योग

उदाहरण – निम्नलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री के आधार पर मध्यमान (M.D.) विचलन की गणना कीजिए–

हल–

वर्गान्तर (C.I.)	आवृत्ति (f)	मध्यबिन्दु (Mid Point) (X)	fx	$x^1 = X - M$	fx^1	$\lvert fx^1 \rvert$
30-34	8	32	256	12	96	96
25-29	7	27	189	7	49	49
20-24	10	22	220	2	20	20

15-19	15	17	255	-3	-45	45
10-14	2	12	24	-8	-16	16
5-9	8	7	56	-13	-104	104
	N=50		$\sum fx=1000$			$\sum \lvert fx' \rvert = 330$

$$\text{मध्यमान} = \frac{\sum fx}{N} = 1000/50 = 20$$

$$\text{मध्यमान विचलन (M.D.)} = \frac{\sum |fx'|}{N} = 330/50 = 6.60$$

13.5.4 मानक विचलन (Standard Deviation) -

मानक विचलन (SD) को विचलनशीलता के मापों में सबसे अधिक विश्वसनीय व स्थिर माप समझा जाता है। इसे संकेताक्षर SD या Ā से प्रदर्शित किया जाता है।

गिल्फर्ड के अनुसार, " मानक विचलन मध्यमान से प्राप्तांको के विचलनों के वर्गो के मध्यमान का वर्गमूल होता है।"

प्रामाणिक या मानक विचलन की विशेषतायें :–

प्रामाणिक या मानक विचलन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं –

1. प्रमाणित या मानक विचलन द्वारा विचलन का सर्वाधिक श्रेष्ठ मापन किया जाता है।
2. मानक विचलन मध्यमान के समान सभी प्राप्तांको से समान रूप से प्रभावित होता है तथा सीमान्त प्राप्तांक से सर्वाधिक प्रभावित होता है।
3. यदि प्राप्तांको में कोई स्थिर संख्या जोड़ दी जाए अथवा घटा दी जाये तब मानक विचलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
4. प्रामाणिक विचलन, वर्णनात्मक तथा अनुमानात्मक सांख्यिकी का आधार है।
5. यदि प्राप्तांकों में किसी निश्चित संख्या का गुणा किया जाये तो मूल मानक विचलन उतने गुना अधिक बढ़ जाता है जितने गुना संख्याओं को बढ़ाया जाता हैं।
6. प्रामाणिक विचलन एक संख्या है इसकी इकाई वही होती है जो इकाई मूल प्राप्तांको की होती है।
7. सामान्य प्रायिकता वक्र का यह मुख्य आधार है।

प्रामाणिक विचलन का प्रयोग कब करें ?

1. जब प्राप्तांको का वितरण सामान्य हो।
2. जब अधिक शुद्ध और विश्वसनीय विचलन माप की गणना करनी हो।
3. जब समूहों की सजातीयता व विषमजातीयता का अध्ययन करना हो।

4. जब सांख्यिकी अन्तरों की सार्थकता ज्ञात करनी हो तो प्रमाणिक विचलन का प्रयोग करते हैं।

5. सामान्य प्रायिकता वक्र के अध्ययन के लिये भी इसकी आवश्यकता पड़ती है।

अव्यवस्थित अंक सामग्री से मानक विचलन की गणना –

अव्यवस्थित अंक सामग्री से मानक विचलन की गणना निम्नलिखित सूत्र की सहायता से करते हैं –

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}} \quad or, \quad \sqrt{\frac{\sum x^2}{N}}$$

x या d = मध्यमान से विचलन

$\sum x^2$ या $\sum d^2$ = मध्यमान से लिये गये विचलनों के वर्ग का योग

N = प्राप्तांको की संख्या

उदाहरण – 8, 2, 5, 9, 6 का मानक विचलन ज्ञात करिये।

हल–

प्राप्तांक (X)	d=X-M	d^2
8	8 - 6 = 2	4
2	2 - 6 = 4	16
5	5 – 6 = -1	1
9	9 – 6 = 3	9
6	6 – 6 =0	0
N=5		$\sum d^2 = 30$

प्रश्न में,

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}} = \sqrt{\frac{30}{5}} = \sqrt{6} = 2.449 = 2.45$$

व्यवस्थित अंक सामग्री से मानक विचलन की गणना –

A- दीर्घ विधि – दीर्घ विधि द्वारा यवस्थित अंक सामग्री का मानक विचलन ज्ञात करने के सूत्र निम्नलिखित हैं।

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum fD^2}{N}}$$

D = मध्यमान से विचलन

fD^2 = विचलनों के वर्गों का उनसे सम्बन्धित आवृत्तियो से गुणा

N = प्राप्तांको की संख्या

उदाहरण –

वर्गान्तर(C.I.)	आवृत्ति (f)	X(mid point)	fX	X-M=d	fd	fd^2
30–34	8	32	256	12	96	452
25–29	7	27	189	7	49	343
20–24	10	22	226	2	20	400
15–19	15	17	255	-3	-4 5	135
10–14	2	12	24	-8	-16	128
5–9	8	7	56	-13	-104	1350
	N=50		$\sum fx$=1000			$\sum fd^2$=3150

$$\text{मध्यमान} = \frac{\sum fx}{N} = 1000/50 = 20$$

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{2}} = \sqrt{\frac{3150}{50}}$$

$$= \sqrt{63} = 7.937 = 7.94 \text{ उत्तर}$$

B - संक्षिप्त विधि – व्यवस्थित अंक सामग्री से संक्षिप्त विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात करने के सूत्र निम्नलिखित हैं।

इसकी गणना प्रक्रिया मध्यमान की भांति होती है।

$$\sigma = S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$$

जहां f = विभिन्न वर्गो की आवृत्ति

d = विभिन्न वर्गो का कल्पिन माध्य से विचलन

i = वर्ग विस्तार

N = कुल आवृत्तिं

उदाहरण –

वर्गान्तर(C.I.)	आवृत्ति (f)	d	fD	fD²
30 – 34	8	3	24	72
25 – 29	7	2	14	28
20 – 24	10	1	10	10
15 – 19	15	0	0	0
10 – 14	2	-1	-2	2
5 – 9	8	-2	-16	32
	N=50			$\sum fd^2=144$

$$S.D. = 5\sqrt{\frac{144}{50}-\left(\frac{30}{50}\right)^2}$$

$$= 5\sqrt{2.88-(0.60)^2}$$

$$= 5\sqrt{2.88-0.36}$$

$$= 5\sqrt{2.52}$$

$$= 5 \times 1.587$$

मानक विचलन= 7.935= 7.94

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति की प्रमुख मापें कौन–कौन हैं ?
2. विचलनशीलता की मापों से आप क्या समझते हैं ? विचलनशीलता की मापों के प्रकार की विवेचना कीजिये।
3. प्रचार विचलन क्या है ? प्रसार विचलन की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।
4. मध्यमान विचलन के महत्व की विवेचना कीजिये।
5. मानक विचलन के आप क्या समझते हैं ? संक्षिप्त विधि सूत्र को स्पष्ट कीजिये।
6. निम्न आवृत्ति वितरण से मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलक की गणना कीजिये–

वर्गान्तर	130–139	120–129	110–119	100-109	90–99	80-89	70-79
आवृत्ति	3	6	15	22	17	5	2

7. निम्न आवृत्ति वितरण से चर्तुंथाक विचलन तथा मानक विचलन की गणना कीजिये–

वर्गान्तर	90–99	80–89	70–79	60-69	50-59	40–49	30-39	20-29
आवृत्ति	5	6	9	15	18	11	4	2

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Agarwal, Y.P. (1988) : Statistical Methods : Concept Applications and competation, Sterling Publishers Private Ltd, New Delhi.

Garrett, H.E. (1967) : Statistics in Psychology and Education, Vakils, Feffer and Simons Pvt. Ltd. Bombay.

गुप्ता, एस.पी. (2003) : सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

सिंह अरूण कुमार (2009) : "मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ" मोतीलाल बनारसी दास, बंगलों रोड, नई दिल्ली।

13.8 अभ्यास हेतु आंकिक प्रश्नों के उत्तर

6. M = 104.93, Md = 32.83, Mo = 32.59
7. Q= 11.25, S.D. = 16.90

इकाई–14 सहसम्बन्ध गुणांक एवं सामान्य प्रायिकता वक्र

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 सहसम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध गुणांक

14.4 सहसम्बन्ध के प्रकार

14.5 सहसम्बन्ध ज्ञात करने की विधियाँ

14.6 सहसम्बन्ध गुणांक की विशेषतायें

14.7 सामान्य प्रायिकता वक्र : एक परिचय

14.8 सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषतायें

14.9 सामान्य प्रायिकता वक्र के उपयोग

14.10 सारांश

14.11 अभ्यास प्रश्न

14.12 कुछ उपयोग पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

किसी केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें, स्थित सूचक मान तथा विचलनशीलता गुणांक द्वारा किसी एक चर के आधार पर किसी समूह की प्रकृति को जाना जा सकता है। परन्तु किसी समूह के व्यक्तियों या छात्रों के लिए दो चरों या विशेषताओं के साथ–साथ बढ़ने या घटने की प्रवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। सांख्यिकी प्रविधियों में दो चरों के बीच सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए सह सम्बन्ध गुणांक का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी चर जैसे–बुद्धि, अभिवृत्ति या शैक्षिक उपलब्धि आदि पर प्राप्त अंकों का आवृत्ति वक्र तैयार किया जाता है तो उसकी आकृति एक घण्टे के रूप में आ जाती है जिसमें अधिकांश प्राप्ताक मध्य में स्थित होते है तथा वक्र के दोनों ओर प्राप्तांकों की संख्या क्रमशः घटती जाती है। इस प्रकार के वक्र लगभग सममित और औसत वक्रता वाले होते हैं। लेकिन जैसे–जैसे समूह का आकार अर्थात आवृत्तियाँ बढ़ती जाती है जिसे सामान्य प्रायिकता वक्र कहते हैं। सांख्यिकी में प्रदत्तों के विश्लेषण की दृष्टि से सामान्य प्रायिकता वक्र का महत्वपूर्ण उपयोग है।

14.2 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन से आप –

1. सहसम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध गुणांक के प्रत्ययों को समझ सकेंगे।
2. सह–सम्बन्ध के विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे।
3. सहसम्बन्ध गुणांक को ज्ञात करने की योग्यता अर्जित कर सकेंगे।
4. सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषताओं को बता सकेंगे।
5. प्रदत्त विश्लेषण में सामान्य प्रायिकता वक्र का उपयोग सीख सकेंगे।

14.3 सहसम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध गुणांक (Correlation and Coefficient of Correlation)

सहसम्बन्ध से तात्पर्य दो चरों या परीक्षणों पर अर्जित प्राप्तांकों में निहित सम्बन्धों से होता है। अर्थात् सहसम्बन्ध युग्मित प्राप्तांकों के बीच सहगामी परिवर्तनों को बताता है। यह बताता है कि किसी चर के मान में परिवर्तन होने पर दूसरे चर के मान में क्या प्रभाव पड़ता है। दो चरों के निहित सम्बन्धों को सहसम्बन्ध गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सह सम्बन्ध गुणांक दो चरों के बीच होने वाले सहगामी परिवर्तनों की माप करता है। गिलफोर्ड (Guilford) ने सहसम्बन्घ को परिभाषित करते हुए कहा है–

"सहसम्बन्ध गुणांक वह अंक है जो यह बतलाता है कि दो वस्तुएँ कहाँ तक सम्बन्धित है तथा कहाँ तक एक में परिवर्तन होने पर दूसरे में भी परिवर्तन होता है।" डाउनी एवं हेथ (Downie and Health, 1970) ने भी कहा है कि "सहसम्बन्ध मूलतः दो चरों के बीच के सम्बन्धों का मान है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि–

(i) सहसम्बन्ध को सहसम्बन्ध गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है।

(ii) सहसम्बन्ध गुणाक एक आनुपातित संख्या है। जो सहसम्बन्ध की शक्ति या मात्रा को बताता है। इसका मान –1.00 से +1.00 के बीच होता है।

(iii) सहसम्बन्ध गुणांक का गणितीय चिन्ह सहसम्बन्ध की दिशा को बताता है। धन चिन्ह बताता है कि एक चर के मान में परिवर्तन होने पर अर्थात् एक चर के घटने या बढ़ने पर दूसरे चर का मान भी उसी दिशा में परिवर्तित होता है अर्थात् घटने पर घटता है तथा बढ़ने पर बढता है। जबकि श्रण चिन्ह बताता है कि परिवर्तन वितरीत दिशा में होता है अर्थात् एक चर के घटने पर दूसरा बढ़ता है या एक के बढ़ने पर दूसरा घटता है।

उदाहरण के लिए कोई शोधकर्ता यदि जानना चाहता है कि 20 छात्रों की बुद्धिलब्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि में कोई सहसम्बन्ध है या नहीं तो वह बुद्धिलब्धि के प्राप्तांकों तथा शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक को परिकलित कर जान सकता है कि बुद्धिलब्धि के प्राप्तांकों में परिवर्तन होने पर शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांक कहाँ तक और किस दिशा में परिवर्तन हुए है।

14.4 सहसम्बन्ध के प्रकार :

सांख्यिकी विशेषज्ञों ने सहसम्बन्ध के मुख्य दो प्रकार बतलाये है–

(क) गुणात्मक सहसम्बन्ध

जब दो चरों में सहसम्बन्ध को किसी विशेष गुण जैसे सीधी रेखी या वक्रीय रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे गुणात्मक सहसम्बन्ध कहा जाता है। गुणात्मक सहसम्बन्ध के निम्न दो प्रकार होते है–

(i) रेखीय सहसम्बन्ध (Linear Correlation)

जब दो चरों के सहसम्बन्ध को एक सीधी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है, तो वह सहसम्बन्ध रेखीय कहलाता है'– जैसे–

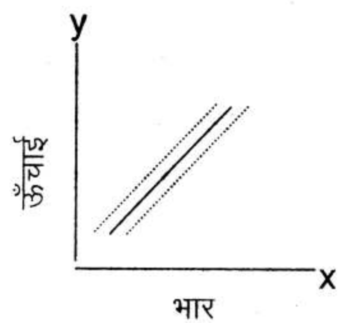

चित्र में ऊचाई तथा भार के सहसम्बन्ध एक सीधी रेखा द्वारा दिखाया गया है। अर्थात् जैसे–जैसे व्यक्ति की ऊँचाई बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे उसके शरीर का भार भी बढ़ता जाता है।

(ii) वक्ररेखीय या अरेखीय सहसम्बन्ध (Curvilinear or Non-linear Correlation) जब दो चरों के सहसम्बन्ध को टेढ़ी–मेढ़ी रेखा या वक्र के रूप में व्यक्त किया जाता है तो यह सहसम्बन्ध वक्ररेखीय या अरेखिक सहसम्बन्ध कहलाता है। निम्न चित्र में अभ्यास तथा अधिगम की मात्रा के मध्य सहसम्बन्ध को वक्ररेखा द्वारा व्यक्त किया गया है जो स्पष्ट करता है कि एक सीमा तक अभ्यास के साथ–साथ सीखने की मात्रा भी बढ़ती जाती है परन्तु उसके बाद भी अभ्यास करते रहने पर सीखने की मात्रा में बढ़ोत्तरी न होकर कुछ कमी आती जाती है।

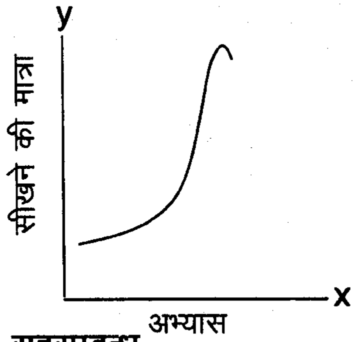

(ख) परिमाणात्क सहसम्बन्ध

जब दो चरों के मध्य सहसम्बन्ध को संख्या द्वारा व्यक्त किया जाता है तो परिमाणात्मक सहसम्बन्ध कहते है। परिमाणात्मक सहसम्बन्ध के तीन प्रकार होते है–

(i) धनात्मक सहसम्बन्ध (Positive Correlation)

जब दो चरों के मध्य का सहसम्बन्ध इस प्रकार का होता है कि एक चर में परिवर्तन होने पर दूसरे में परिवर्तन ठीक उसी तरह का होता है तो ऐसे सहसम्बन्ध को धनात्मक सहसम्बन्ध कहते हैं अर्थात् एक चर के बढ़ने पर दूसरा चर भी बढ़े या एक चर के घटने पर दूसरे चर में घटोत्तरी हो। उदाहरण के लिए आयु तथा परिपक्वता के मध्य सहसम्बन्ध को धनात्मक सहसम्बन्ध कह सकते हैं क्योंकि आयु में वृद्धि होने पर परिपक्वता में भी वृद्धि होती है। निम्न चित्र में ध नात्मक तथा पूर्ण सहसम्बन्ध की स्थिति को देखा जा सकता है–

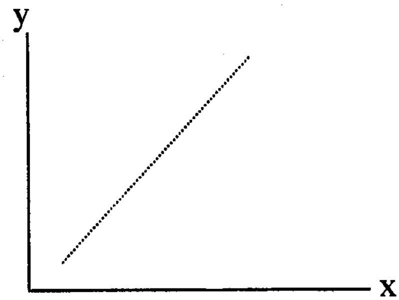

(ii) ऋणात्मक सहसम्बन्ध (Negative Correlation)

ऋणात्मक सहसम्बन्ध में धनात्मक के विपरीत स्थिति पाई जाती है। अर्थात् यदि एक चर में बढ़ोत्तरी होने पर दूसरे चर में घटोत्तरी हो या एक चर के मान में घटोत्तरी होने पर दूसरे चर के मान में बढ़ोत्तरी हो तो ऐसे सह सम्बन्ध को ऋणात्मक सहसम्बन्ध कहते है। उदाहरण के लिए किसी वस्तु के मूल्य तथा पूर्ति के मध्य का सहसम्बन्ध। ऋणात्मक सहसम्बन्ध की स्थिति को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

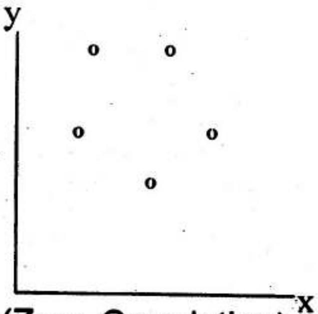

(iii) शून्य सहसम्बन्ध (Zero Correlation)

ऐसे सहसम्बन्ध को शून्य सहसम्बन्ध कहते है जिसमें दो चरों के मध्य किसी प्रकार का संगत सम्बन्ध न हों। अर्थात् एक चर के मान में परिवर्तन होने पर दूसरे चर के मान में कोई स्पष्ट परिवर्तन न हो। शून्य सहसम्बन्ध को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त भी अन्य आधारों पर सहसम्बन्ध के विभिन्न प्रकारों को व्यक्त किया जा सकता है–

शाब्दिक व्याख्या के आधार पर सहसम्बन्ध के प्रकार

शाब्दिक व्याख्या के दृष्टि से सहसम्बन्ध के प्रकारों को निम्न तालिका में देखा जा सकता है–

सहसम्बन्ध गुणांक	सहसम्बन्ध की शाब्दिक व्याख्या
+1.00	पूर्ण धनात्मक सहसम्बन्ध
+0.90 से +1.00 के मध्य	अत्यन्त उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध
+0.70 से +0.90 के मध्य	उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध
+0.40 से +0.70 के मध्य	परिमित धनात्मक सहसम्बन्ध
+0.20 से +0.40 के मध्य	निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध
0.00 से +0.20 के मध्य	अत्यन्त निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध
00	शून्य सहसम्बन्ध
0.00 से –0.20 के मध्य	अत्यन्त निम्न ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–0.20 से –0.40 के मध्य	निम्न ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–0.40 से –0.70 के मध्य	परिमित ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–0.70 से –0.90 के मध्य	उच्च ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–0.90 से –1.00 के मध्य	अत्यन्त उच्च ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–1.00	पूर्ण ऋणात्मक सहसम्बन्ध

कारणता के आधार पर सहसम्बन्ध के प्रकार–

दो चरों के मध्य सहसम्बन्ध तीन कारणों से हो सकता है। इसी आधार पर सहसम्बन्ध को तीन प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) सममित सहसम्बन्ध (Symmetrical Correlation)

सममित सहसंम्बन्ध की स्थिति में दोनों चर किसी तीसरे चर से प्रभावित होने के कारण सहसम्बन्ध होते है। जैसे विभिन्न विषयों के मध्य सहसम्बन्ध बुद्धि से प्रभावित होते है। इसी प्रकार भार व ऊँचाई के मध्य आयु के कारण उच्च सहसम्बन्ध पाया जाता है।

(ii) असममित सहसम्बन्ध (Asymmetrical Correlation)

असममित सहसम्बन्ध की स्थिति में एक चर दूसरे चर को प्रभावित करता है। प्रभावित करने वाला चर कारण होता है तथा प्रभावित होने वाला चर प्रभाव होता है। जैसे बुद्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि के मध्य असममित सहसम्बन्ध होता है।

14.5 सहसम्बन्ध ज्ञात करने की विधियाँ :

सहसम्बन्ध ज्ञात करने की कई विधियाँ है जिनमें से प्रमुख विधियाँ निम्न है–

(i) गुणन–आघूर्ण सहसम्बन्ध (Product Moment Correlation)

(ii) श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध (Rank Order Correlation)

(iii) संगति गुणांक (Coefficient of Concordance)

(iv) द्विपांक्तिक सहसम्बन्ध (Biserial Concordance)

(v) अंक द्विपांक्तिक सहसम्बन्ध (Point-biserial Correlation)

(vi) चतुष्कोष्टिक सहसम्बन्ध (Tetrachoric Correlation)

(vii) फाई सहसम्बन्ध (Phi-coefficient of Correlation)

(viii) आसंग गुणांक (Coefficient of Contingency)

(ix) आंशिक सहसम्बन्ध (Partial Correlation)

(x) सहसम्बन्ध समानुपात (Correlation Ratio)

(xi) बहु सहसम्बन्ध (Multiple Correlation)

उपरोक्त विधियों में श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध तथा गुणन–आघूर्ण सह सम्बन्ध गुणांक का प्रयोग व्यावहारिक रूप में ज्यादा होता है। इसलिए इन्हीं दो विधियों द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने की प्रक्रिया का वर्णन ज्यादा महत्वपूर्ण है।

गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ण गुणांक : (Product-Moment Coefficient Correlation)

गुणनफल या घूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक का प्रतिपादन कार्ल पियरसन (Karl Pearson) के द्वारा सन् 1896 में किया गया था। इसलिए इस विधि को पियर्ससन विधि भी कहते हैं। इस विधि में दोनों चरों पर विभिन्न व्यक्तियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष जेड़ प्राप्तांकों की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल आघूर्ण ज्ञात किया जाता है। यह गुणनफल आघूर्ण ही दोनों चरों के बीच सहसम्बन्ध की मात्रा को इंगित करता है। इसे आंग्लभाषा के अक्षर r (आर) से प्रदर्शित किया जाता है। अतः

$$r = \frac{\sum Z \times Z_y}{N} = \frac{\sum XY}{N\sigma_x\sigma_y} = \frac{\sigma_x^2 + \sigma_y^2 - \sigma_d^2}{2\sigma x.\sigma y}$$

जहाँ σ मानक विचलन तथा N कुल प्राप्तांक है।

इन सूत्रों के अतिरिक्त मूल प्राप्तांकों से गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक की गणना हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$r = \frac{N\sum X.Y - \sum X.\sum Y}{\sqrt{N\sum X^2 - (\sum X)^2[N\sum Y^2 - (\sum Y)^2]}}$$

जहाँ X तथा Y मूल प्राप्तांक है एवं X^2 तथा Y^2 क्रमशः X तथा Y प्राप्तांकों के वर्ग है। Σ कुल योग एवं N छात्रों या व्यक्तियों की संख्या है।

गणना के सोपान

गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक की गणना के लिए निम्न सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

(i) X के वर्ग X^2 तथा Y के Y^2 वर्ग को प्राप्त करना।

(ii) X तथा Y का गुणन करके X.Y प्राप्त करना

(iii) X, Y, X^2, Y^2 तथा X.Y स्तम्भों का योग करके क्रमशः ΣX, ΣY, ΣX^2, ΣY^2 तथा के मान प्राप्त करना

(iv) उपरोक्त सूत्र में मान रखकर की गणना करना।

इन सोपानों को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

उदाहरण– निम्न प्रदत्तों के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक की गणना कीजिये–

छात्र	1	2	3	4	5
चर (x)	6	4	5	2	8
चर (y)	8	5	10	3	4

हल—गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक की गणना हेतु निम्न सारणी का उपयोग किया जाता है—

क्रम	X	Y	X^2	Y^2	X.Y
1	6	8	36	64	48
2	4	5	16	25	20
3	5	10	25	100	50
4	2	3	04	09	06
5	8	4	64	16	32
N=5	ΣX=25	ΣY=30	ΣX^2=145	ΣY^2=214	ΣX.Y=156

सारणी से प्राप्त मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर

$$r = \frac{N\sum X.Y - \sum X.\sum Y}{\sqrt{N\sum X^2 - (\sum X)^2[N\sum Y^2 - (\sum Y)^2]}}$$

$$= \frac{5\times156 - 25\times30}{\sqrt{[5\times145 - 25\times25][5\times214 - 30\times30}}$$

$$== \frac{780-750}{\sqrt{(725-625)(1070-900)}} = \frac{30}{\sqrt{100\times170}} = 0.24$$

अतः गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक = 0.24 अर्थात् दोनों चरों के मध्य निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध है।

श्रेणीक्रम सहसम्बन्ध गुणांक (Rank Order Correlation Coefficient)

श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग दो क्रमित स्तर पर मानित चरों के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए किया जाता है। श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध गुणांक वास्तव में श्रेणीबद्ध प्रदत्तों के मध्य गुणनफल–आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक है। इसीलिए इसे गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध का एक अच्छा विकल्प माना जाता है तथा व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए इसकी व्याख्या गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक के समान ही की जाती है। इस विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयरमैन (Charles Spearman) ने किया था इसलिए इसे स्पीयरमैन सह–सम्बन्ध गुणांक भी कहते है। इसे लैटिन भाषा के अक्षर रो (Rho) से व्यक्त किया जाता है। इस विधि में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध गुणांक $\rho = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$

जहाँ $\sum D^2$= क्रमों के अन्तरों का योग

N = कुछ प्राप्तांक या छात्रों की संख्या

गणना का सोपान

इस विधि द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक की गणना हेतु निम्न सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

(i) एक चर (X) के प्राप्तांकों को क्रमबद्ध करके सबसे बड़े प्राप्तांक को प्रथम क्रम अर्थात् श्रेणी तथा सबसे छोटे प्राप्तांक को सबसे बाद का क्रम प्रदान कर R_X प्राप्त करना।

(ii) इसी प्रकार से दूसरे चर (Y) के प्राप्तांकों को क्रमबद्ध करके सबसे बड़े प्राप्तांक को पहला क्रम तथा सबसे छोटे प्राप्तांक को सबसे बाद का क्रम प्रदान करके R_Y प्राप्त करना।

(iii) प्रत्येक छात्र/व्यक्ति द्वारा प्राप्त RX तथा RY का अन्तर प्राप्त करना।

(iv) प्रत्येक का D वर्ग कर D^2 प्राप्त करना।

(v) D^2 के सम्बन्ध का योग करके $\sum D^2$ प्राप्त करना।

(vi) N तथा $\sum D^2$ के प्राप्त मानों को उपरोक्त सूत्र में रखकर ρ की गणना कर सह–सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करना।

विशेष–श्रेणीक्रम विधि से सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात करके समय कभी किसी एक चर या दोनों चरों के कुछ प्राप्तांकों का मान एक समान होता है। ऐसी प्राप्तांकों को समान प्राप्तांक (Tied Scores) कहते है। ऐसी स्थिति में क्रम प्रदान के लिए सर्वप्रथम सभी प्राप्ताकों को आकार के अनुरूप व्यवस्थित करके अस्थायी क्रम देते है तथा समान प्राप्तांकों के द्वारा प्राप्त विभिन्न क्रमों का औसत ज्ञात कर लेते हैं। फिर सह सम्बन्ध गुणांक की गणना के लिए क्रम देते समय उन्न समान प्राप्तांकों में से प्रत्येक को यह औसत दे दिया जाता है।

उपरोक्त गणना के सोपानों तथा समान प्राप्तांक स्थिति को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

उदाहरण– 10 छात्रों के गणित तथा विज्ञान विषयों के परीक्षण पर प्राप्तांक निम्नानुसार थे। गणित तथा विज्ञान के प्राप्तांकों के बीच निम्नानुसार थे। गणित तथा विज्ञान के प्राप्तांकों के बीच श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध की गणना कीजिये।

छात्र क्रमांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
गणित के प्राप्तांक (X)	22	26	16	28	30	12	18	10	26	24
विज्ञान के प्राप्तांक (Y)	20	25	10	29	28	16	22	12	25	26

हल–श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध गुणांक की गणना निम्न सारणी के रूप में किया जा सकता है–

छात्र	X	Y	RX	RY	D= RX~ RY	D^2
1	22	20	6	7	1	1
2	26	25	3.5	4.5	1	1
3	16	10	8	10	2	4
4	28	29	2	1	1	1
5	30	28	1	2	1	1
5	12	16	9	8	1	1
7	18	22	7	6	1	1
8	10	12	10	8	1	1
9	26	25	3.5	4.5	1	1
10	24	26	5	3	2	4
N=10						$\Sigma D^2=16$

श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध गुणांक $\rho = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$

सारणी से $\sum D^2 = 16$, N = 10 के इन मानों को सूत्र में रखने पर

$$\rho = 1 - \frac{6\times16}{10(100-1)} = 1 - \frac{96}{10(100-1)}$$

ρ = 0.91 अत्यन्त उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध

14.6 सहसम्बन्ध गुणांक की विशेषतायें :

सहसम्बन्ध गुणांक की निम्न प्रमुख विशेषतायें होती है–

(i) सहसम्बन्ध गुणांक प्रकसार –1.00 से लेकर +1.00 के मध्य होता है। अर्थात् सहसम्बध गुणांक का सैद्धान्तिक प्रसार –1 से +1 तक है। इसका मान कभी –1 से कम तथा +1 से अधिक नहीं हो सकता है।

(ii) सहसम्बन्ध गुणांक एक शुद्ध अंक है। इसकी कोई इकाई नहीं होती है। यदि प्राप्तांकों को इकाइयों में बदल दिय जाये तब भी सहसम्बन्ध गणांक

के मान में कोई अन्तर नहीं आता है।

(iii) किसी एक अथवा दोनों चरों के प्राप्तांकों में किसी स्थिरांक को जोड़ने, घटाने, गुणा करने या भाग देने पर सहसम्बन्ध गुणांक अप्रभावित रहता है।

14.7 सामान्य प्रायिकता वक्र : एक परिचय : (Normal Probability Curve : An Introduction)

सामान्य प्रायिकता वक्र एक सैद्धान्तिक, आदर्श तथा गणितीय वक्र है। इसे सामान्य वक्र या एन0पी0सी0 के नाम से भी जाना जाता है। इस वक्र को लन्दन में शरण पाये एक फ्रांसीसी शरणार्थी अब्राहम डी मोइवर (Abraham De Movire) ने सन् 1733 में खोजा था लेकिन इसका व्यावहारिक उपयोग फ्रांसीसी गणितज्ञ पीयरे साइमन (Pierre Simon) जो मारकूस डी लाप्लास (Marquis De Laplace) भी कहलाता था तथा जर्मन खगोलविज्ञ कार्ल फ्रेडरिच (Carl Freidrich Gauss) ने उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ किया। गॉस आदि के कार्यों की स्थिति के फलस्वरूप इस वक्र को गौसियन वक्र भी कहा जाने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में सामान्य प्रायिकता वक्र के व्यावहारिक उपयोग का विस्तार बेल्जियम के एडोल्फी क्यूटलेट (Adolphe Quetlet) ने किया।

गणितीय दृष्टि से सामान्य प्रायिकता वक्र एक ऐसा द्विपदीय वक्र है जिसमें घातांक n का मान अनन्त तथा p व q के मान समान होते हैं। प्रायिकता सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण ही इसे सामान्य प्रायिकता वक्र कहा गया। डी मोइवर द्वारा खोजे जाने के कारण इसे डी मोइवर वक्र भी कहा जाता है। सामान्य प्रायिकता वक्र का आधुनिक सांख्यिकी में विशेष महत्व है। इस वक्र को विशेषताओं के आधार पर इसे आदर्श मानकर कई सांख्यिकी विधियों का विकास हुआ। वास्तव में सामान्य प्रायिकता वक्र अनुमानात्मक सांख्यिकी (Inferential Statistics) का आधार है। यदि इसे हटा दिया जाय तो सम्पूर्ण अनुमात्मक सांख्यिकी सिमट जायेगी। यद्यपि व्यवहार में सामान्य प्रायिकता वक्र की प्राप्ति संभव नहीं है क्योंकि कोई चर पूर्ण रूप से सामान्य प्रायिकता वक्र के रूप में वितरित नहीं होता बावजूद इसके अवलोकित वक्रो की प्रवृत्ति सामान्य प्रायिकता वक्र के आकार को प्राप्त करने की होती है। जैसे–जैसे N बढ़ता जाता है वैसे–वैसे अवलोकित आवृत्ति वक्र का आकार सामान्य प्रायिकता वक्र के अनुरूप होता जाता है। इसी प्रवृत्ति के कारण N के बढ़ते जाने पर व्यावहारिक समस्याओं के अध्ययन में विभिन्न चरों को सामान्य प्रायिकता वक्र के अनुरूप वितरित माना जा सकता है। फलतः सामान्य वक्र की विशेषताओं से इस प्रकार की समस्याओं को हल किया जा सकता है।

14.8 सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषतायें : (Characteristics of NPC)

सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषतायें निम्न है–

(i) सामान्य प्रायिकता वक्र (NPC) घंटाकार (Bell Shaped), पूर्ण सममित (Symmetrical), एकल बहुलांकी (Unimodal), सामान्य वक्रता वाला (Mesokurtic) वक्र है। ज्यादातर आवृत्तियाँ वक्र के शीर्ष अर्थात् केन्द्र में स्थित होती हैं।

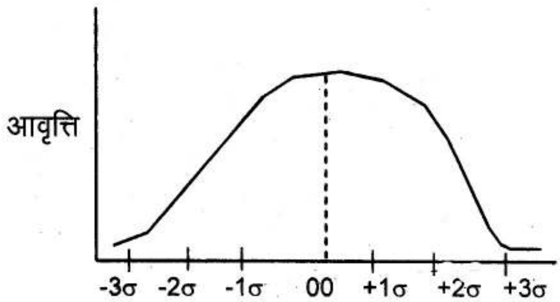

(ii) सामान्य प्रायिकता वक्र का गणितीय समीकरण–

$$Y= \frac{N}{\sigma\sqrt{2\pi}}e^{-x^2/2\sigma^2}$$ होता है जहाँ

y = x बिन्दु पर स्थित कोटि की ऊँचाई

x = मध्यमान से प्राप्तांक की दूरी अर्थात् $x = X - M$

σ = प्राप्तांकों का मानक विचलन

N = कुल आवृत्ति

π = स्थिरांक, जिसका मान 3.1416 होता है।

e = स्थिरांक, जिसका मान 2.71828 होता है।

(iii) एन0पी0सी0 में केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीनों मान–मध्यमान, मध्यांक व बहुलक समान होते है तथा वक्र के केन्द्र में स्थित होते है। अर्थात्

$$M = Md = M0$$

(iv) एन0पी0सी0 कोटि अक्ष के सापेक्ष सममित होता है जिसके कारण इसका विषमता गुणांक का मान शून्य होता है अर्थात् $S_k=0$

(v) यह वक्र न तो बहुत चपटा या न ही बहुत नुकीला होता है। यह वक्र औसत ऊचाई वाला वक्र होता है तथा इसके लिए वक्रता गुणांक (Coefficient of Kurtosis) का मान 0.263 होता है।

(vi) सामान्य प्रायिकता वक्र दोनों दिशाओं में अनन्त (Infinity) की ओर अग्रसर होता है। इसके दोनों किनारे आधार रेखा के निकट तो आते रहते हैं परन्तु वे आधार रेखा को कभी भी स्पर्श नहीं करते है।

(vii) एन0पी0सी0 मध्यमान से 1 विचलन ऊपर व नीचे अपनी दिशा परिवर्तित करता है। यह वक्र $+1\sigma$ से -1σ के बीच आधार रेखा की ओर अवतल **(Concave)** होता है जबकि $+1\sigma$ से ऊपर व -1σ से नीचे दोनों सिरों पर आधार रेखा की ओर उत्तल **(Convex)** होता है।

(viii) इस वक्र में प्रथम व तृतीय चतुर्थांशों का मध्यांक से अन्तर समान होता है जो चतुर्थांक विलचन के बराबर होता है। इसे सम्भाव्य त्रुटि भी कहते है अर्थात्

$$Q_3 - Md = Md - Q_1 = PE$$

(ix) एन0पी0सी0 में चतुर्थांक विचलन का मान मानक विचलन के मान का लगभग 3 / 4 होता है अर्थात्

$$Q = 0.6745\ \sigma \text{ तथा } \sigma = 1.482Q$$

(x) इस वक्र में आधार रेखा के बिल्कुल मध्य में अर्थात् मध्यमान बिन्दु पर स्थित कोटि की ऊँचाई अधिकतम होती है। यह ऊँचाई कुल आवृत्तियों की 0.3989 होती है। इसको वक्र की सर्वोच्च कोटि कहते हैं।

(xi) एन0पी0सी0 तथा आधार रेखा के बीच का क्षेत्रफल सामान्य प्रायिकता वक्र का क्षेत्रफल कहलाता है तथा यह कुल आवृत्तियों को प्रकट करता है। एन0पी0सी0 की किन्हीं दो कोटियों के बीच का क्षेत्रफल उन कोटियों के सापेक्ष प्राप्तांकों के बीच अंक पाने वाले छात्रों की संख्या को प्रदर्शित करता है तथा यह कुल क्षेत्रफल का एक निश्चित प्रतिशत होता है। मध्यमान तथा मानक विचलनों के मध्य स्थित आवृत्तियों या प्राप्तांकों को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है–

(A) मध्यमान से $\pm 1\sigma$ के मध्य 68.26 प्रतिशत आवृत्तियाँ होती है।

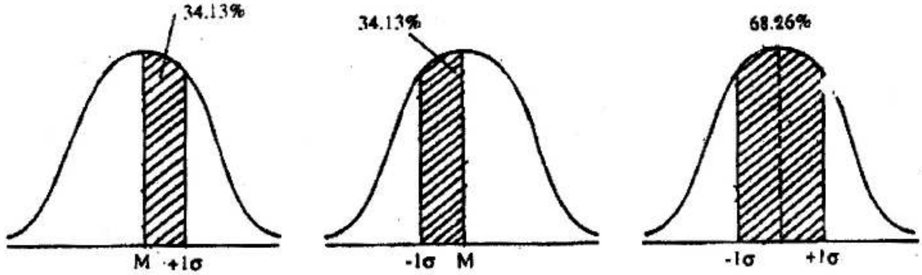

(B) मध्यमान से $\pm 2\sigma$ के बीच 95.44 प्रतिशत आवृत्तियाँ होती है।

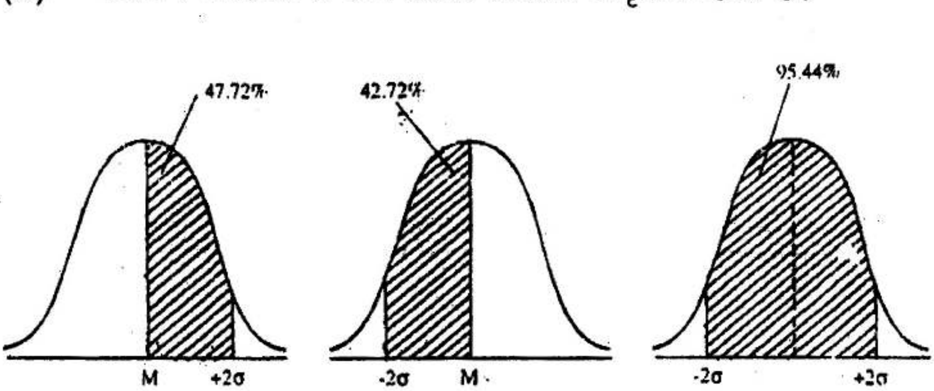

(C) मध्यमान से $\pm 3\sigma$ के बीच 99.74 प्रतिशत प्राप्तांक होते है।

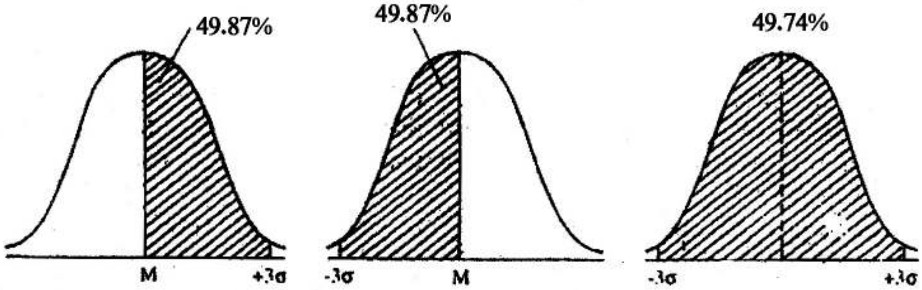

चूंकि $\pm 3\sigma$ के मध्य 99.74 प्रतिशत अर्थात् लगभग सभी प्राप्तांक या आवृत्तियाँ आ जाती है। अतः व्यावहारिक समस्याओं के समाधान हेतु यह मान लिया जाता है कि एन0पी0सी0 में $\pm 3\sigma$ के मध्य सभी 100 प्रतिशत आवृत्तियाँ प्राप्तांक आ जाते है।

14.9 सामान्य प्रायिकता वक्र के उपयोग (Uses of NPC)

सामान्यतः शिक्षा, समाजशास्त्र, तथा मनोविज्ञान आदि के अधिकांश चर एन0पी0सी0 के रूप में वितरित होते है। यदि किसी चर पर प्राप्तांकों के वितरण को सामान्य प्रायिकता वितरण के रूप में स्वीकार किया जा सके तो सामान्य प्रायिकता वक्र की सहायता से निम्न प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है–

1. किसी समूह में दिये गये प्राप्तांक से अधिक या कम अंक पाने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करना।
2. किसी समूह में दिये गये किन्हीं दो प्राप्तांकों के बीच अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करना।
3. किसी समूह में किसी विशेष स्थिति वाले छात्रों के लिए प्राप्तांक सीमायें ज्ञात करना।
4. किसी परीक्षण के विभिन्न प्रश्नों का सापेक्षिक कठिनाई स्तर ज्ञात करना।
5. किसी समूह को इस प्रकार के कुछ उपसमूहों में विभाजित करना कि प्रत्येक समूह में योग्यता का प्रसार बराबर रहे।
6. सार्थकता परीक्षण में एन0पी0सी0 का प्रयोग

14.10 सारांश :

दो चरों के के सम्बन्ध को सहसम्बन्ध गुणांक के द्वारा व्यक्त किया जाता है। सहसम्बन्ध गुणांक एक आनुपातिक प्रत्यय है इसलिए इसका मान –1 से +1 के मध्य होता है। सहसम्बन्ध को रेखीय सहसम्बन्ध, वक्रीय सहसम्बन्ध, धनात्मक सहसम्बन्ध, श्रणात्मक सहसम्बन्ध तथा शून्य सहसम्बन्ध आदि के प्रकारों में बांटा

जा सकता है। सहसम्बन्ध ज्ञात करने की विभिन्न विधियाँ है। श्रेणी क्रम सहसम्बन्ध तथा गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध का प्रयोग व्यावहारिक स्तर पर ज्यादा होता है। इन विधियों द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक की गणना के सूत्र एवं सोपानों को इकाई में बताया गया है। सामान्य प्रायिकता वक्र एक सैद्धान्तिक, आदर्श तथा गणितीय वक्र है। यह अनुमानात्मक सांख्यिकी का आधार है। इस वक्र की अपनी विशेषतायें होती है जिससे व्यावहारिक समस्याओं का समाधान इनके सहयोग से किया जा सकता है। एन0पी0सी0 के उपयोगों को भी इस इकाई में स्पष्ट किया गया है।

14.11 अभ्यास प्रश्न :

1. सहसम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध गुणांक के प्रत्यय को स्पष्ट कीजिये।
2. सहसम्बन्ध के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये।
3. सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने की कौन–कौन सी विधियाँ है?
4. निम्न प्रदत्तों के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध गुणांक की गणना कीजिये–

x	12	14	20	25	19	27	22	19	14	16	15	17	11	28	30
y	38	10	17	19	20	24	18	16	41	14	39	42	32	21	20

5. सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषतायें बताइये।
6. सामान्य प्रायिकता वक्र का क्या उपयोग है?

14.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें :

अग्रवाल, वाई0पी0 : स्टैटिस्टिकल मेथड : कानसेप्ट एप्लीकेशन्स एण्ड कम्प्यूटेशन, स्टरलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लि0, नई दिल्ली, 1988

गैरिट, एच0ई0 : स्टैटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड ऐजूकेशन, वैकिल्स, केकर एण्ड साइमन्स लि0, बम्बई, 1981

गुप्ता, एस0पी0 : सांख्यिकी विधियाँ, शारद पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2003

सिंह,अरूण कुमार : मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल, बनारसीदास, बंगलोरोड, दिल्ली, 2009

इकाई–15 सांख्यिकी अनुमान का आधार, टी–परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 सांख्यिकी अनुमान का आधार

15.4 टी–परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

15.5 टी–परीक्षण में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों के अर्थ

15.5.1 सार्थकता स्तर

15.5.2 स्वतन्त्रता के अंश

15.5.3 सार्थक अन्तर

15.6 प्रसरण विश्लेषण

15.6.1 F-Test की आवश्यकता क्यों ?

15.6.2 प्रसरण विश्लेषण की मान्यतायें

15.7 अभ्यास प्रश्न

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.9 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

15.1 प्रस्तावना

सामान्यतः टी–परीक्षण या अनुपात दो माध्यों के बीच के अन्तर की सार्थकता की जाँच करने का एक महत्वपूर्ण प्राचलिक साख्यिकी है। लेकिन इसका मतलब यह नही हैं कि इसका प्रयोग सिर्फ माध्यों की सार्थकता की जाँच करने में किया जाता है। बल्कि अन्य सांख्यिकी में भी इसका प्रयोग किया जाता है। प्रसरण विश्लेषण एक ऐसा सांख्यिकीय परीक्षण है, जिसके द्वारा शोधकर्ता दो या दो से अधिक समूहों के माध्यों के अन्तर की सार्थकता की जॉच करता है। इस सांख्यिकीय विधि का प्रतिपादन प्रो0 आर0ए0फिशर के द्वारा किया गया था।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से तुम लोग निम्न योग्यतायें अर्जित कर सकोगे–

1. साख्यिकी अनुमान के आधार को समझ सकोगे।
2. टी–परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण को जान सकोगे।
3. टी–परीक्षण की विभिन्न शब्दों की व्याख्या कर सकोगे।
4. सार्थक अन्तर को बता सकोगे।
5. प्रसरण विश्लेषण के महत्व को समझ सकोगे।

15.3 सांख्यिकी अनुमान का आधार (Basis of statical inference)

सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करना अनुसन्धानकर्ता के लिए अत्यन्त कठिन होता है। अध्ययन को सरल व सम्भव बनाने के लिए बड़े समूह अथवा सम्पूर्ण जनसेंख्या में से एक छोटे समूह का चयन कर लिया जाता है। इस चयन किये गये छोटे समूह को प्रतिदर्श या न्यायदर्श (Sample) कहा जाता है। इस छोटे समूह के अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर सम्पूर्ण जनसंख्या के परिणामों या सूचनाओं को ज्ञात किया जाता है। इसके लिये सांख्यिकीय अनुमान की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं सांख्यिकी अनुमान की विधियों को अनुमानात्मक सांख्यिकीय विधियाँ (inferencial statistical method) कहा जाता है। प्रतिदर्श प्रदत्तों के आधार पर जीवसंख्या की विशेषताओं का अनुमान करने की विधियाँ अनुमानात्मक सांख्यिकी (inferencial statistical) के रूप में जानी जाती है।

अनुमानात्मक सांख्यिकी के दो प्रमुख कार्य होते हैं – (i) प्रतिदर्शजों (Statistics) के ज्ञात होने पर प्राचलों (Parameters) का अनुमान लगाना तथा

(ii) परिकल्पनाओं का परीक्षण करना है।

प्राचल (Parameters) – सम्पूर्ण जीवसंख्या के आधार पर सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त परिणाम प्राचल (Parameters) कहलाते हैं, जैसे सम्पूर्ण जीवसंख्या का मध यमान (¼) सम्पूर्ण जीवसंख्या का मानक विचलन (Ã) प्राचल कहलाता है।

प्रतिदर्शज (Statistics) – प्रतिदर्श (Sample) के आधार पर सांख्यिकी गणना द्वारा प्राप्त परिणाम प्रतिदर्शज (Statistics) कहलाते हैं। जैसे प्रतिदर्श का मध्यमान (M), सहसम्बन्ध (³) अथवा प्रामाणिक विचलन प्रतिदर्शज कहलाते हैं।

जीवसंख्या (Population) –वह सम्पूर्ण समूह (Entire group) जिसमें से प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। उसे जीवसंख्या या समग्र (Population or universe) कहा जाता है।

सीमित जनसंख्या (Finite Population) –इसके अन्तर्गत इकाईयों की संख्या सीमित है व निश्चित होती है। जिसे सरलता से गिना जा सकता है। जैसे किसी जिले मे शिक्षकों की संख्या या किसी जनपद के कुछ हाईस्कूल विद्यार्थी आदि।

असीमित जीवसंख्या (infinite population)- इसके अन्तर्गत इकाईयों की संख्या सीमित नहीं होती है साथ ही अनिश्चित भी होती है। इस प्रकार की जीवसंख्या को यद्यपि गिना जा सकता है किन्तु यह कार्य असाध्य होता है। जैसे आकाश में तारे, पृथ्वी पर स्थित प्राणी आदि।

प्रतिचयन (Sampling)- सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला छोटा संमूह प्रतिदर्श होता है तथा जिस विधि से सम्पूर्ण जीवसंख्या में से इस छोटे समूह का चयन किया जाता है, उसे प्रतिचयन की संज्ञा दी जाती है। सांख्यिकीय

अनुमान के अन्तर्गत दूसरा अन्य प्रमुख कार्य उपकल्पना या परिकल्पना के परीक्षण का कार्य भी किया जाता है।

परिकल्पना अनुसन्धान समस्या का प्रस्तावित या सम्भावित उत्तर होती है। परिकल्पना का कथन एक परीक्षण योग्य कथन होता है। जो अनुमानात्मक सांख्यिकी के परिणामों के आधार पर सही सिद्ध हो सकता है और गलत भी सिद्ध हो सकता है। अतः परिकल्पना का परीक्षण प्रत्येक स्थिति में अनुसन्धान कार्य को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। साथ ही अनुसन्धान समस्या को सुनिश्चित भी करती है।

15.4 t- परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण

t- परीक्षण –

t- परीक्षण प्राचलिक सांख्यिकी के अन्तर्गत अनुमानात्मक सांख्यिकी प्रविधि है, जिसका प्रयोग दो मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। परीक्षण का प्रयोग निम्नलिखित मान्यताओं के अनुरूप करना उपयुक्त होता है –

(1) प्रतिदर्श का चयन अनियत प्रतिचयन विधि (Random Sampling Method) द्वारा होना चाहिये।

(2) दोनों समूह के प्राप्तांक वितरण सामान्य सम्भाव्यता वक्र (Normal Probability Curve) के अनुरूप होने चाहिए।

(3) दोनों समूह के प्राप्तांको का प्रसरण लगभग समान होना चाहिये।

प्रतिदर्श की संख्या 30 से कम होने पर उपर्युक्त मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही t- परीक्षण का प्रयोग करना चाहिये, तभी शुद्ध परिणाम प्राप्त होने की सम्भावना होती है।

जिन प्रतिदर्श समूह की संख्या (N) 30 से कम होती है, उसे छोटा प्रतिदर्श समूह कहा जाता है। ऐसे दो समूहों के मध्य मध्यमानों में सार्थक अन्तर का अध्ययन t - परीक्षण द्वारा करते हैं तथा जिन प्रतिदर्श समूह की संख्या (N) 30 से अधिक होती है, बड़े प्रतिदर्श समूह कहलाते हैं। इस प्रकार के समूह के दो मध्यमानों के मध्य सार्थक अन्तर का अध्ययन क्रान्तिक अनुपात (Critical Ratio) द्वारा करते हैं।

15.5 t- परीक्षण में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों के अर्थ

15.5.1 सार्थकता स्तर (Level of Significance) –

दो मध्यमानों के मध्य अन्तर संयोग (Chance) से है अथवा वास्तविक अन्तर (Real Difference) है, यह ज्ञात करने के लिए मानक के रूप में सार्थकता स्तर को आधार मानते हैं। यह एक कसौटी के रूप में कार्य करते हैं, जिनके आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है। बहुधा दो सार्थकता स्तरों

का प्रयोग किया जाता है। प्रथम .05 सार्थकता स्तर तथा द्वितीय .01 सार्थकता स्तर। .05 सार्थकता स्तर 95 प्रतिशत विश्वास के सही होने को व्यक्त करता है तथा .01 सार्थकता स्तर 99 प्रतिशत विश्वास के सही होने के व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में 100 में से जितने प्रतिशत हमारे विश्वास के गलत होने के व्यक्त करता है वही हमारा विश्वास या सार्थकता का स्तर कहलाता है।

15.5.2 स्वतन्त्रता के अंश (Degrees of Freedom or d.f.) –

स्वतंत्रता के अंश से तात्पर्य प्राप्तांको को स्वतन्त्र रूप से परिवर्तित होने की स्वतन्त्रता से है। स्वतंत्रता के अंशों को ज्ञात करने के लिए प्रतिदर्श की संख्या (N) में से एक संख्या घटा दी जाती है।

$$d.f. = N - 1$$

दो समूहों के मध्यमान के मध्य सार्थकता के लिए स्वतन्त्रता के अंश (Degree of Freedom) का सूत्र निम्न होगा –

$$d.f. = (N_1 - 1) + (N_2 - 1) \text{ अथवा } d.f. = N_1 + N_2 - 2$$

15.5.3 सार्थक अन्तर (Significant Difference) –

गैरेट के अनुसार, "वह अन्तर सार्थक अन्तर है जिसके सम्बन्ध में अधि ाकतम सम्भावना इस तथ्य की हो कि उसके घटित होने का कारण संयोग नहीं है अथवा वह किसी क्षणिक कारण या घटना चक्र पर आधारित नहीं है बल्कि जिसके कारण एक सम्पूर्ण जाति के दो प्रतिदशो में वास्तविक अंतर देखने में आता है। इसके विपरीत एक ऐसा अन्तर जिससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है, वह अन्तर, अन्तर नही कहलाता है।"

t - परीक्षण की गणना – t - परीक्षण में t – अनुपात (t - ratio) की गणना की जाती है। t – अनुपात, दो मध्यमानों के अन्तर तथा इस अन्तर की मानक त्रुटि का अनुपात है। अतः t – अनुपात,

$$t = \frac{M_1 \sim M_2}{\sigma_D}$$

σ_D = दोनों मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि

$$\sigma_D = \sigma_D = \sqrt{\frac{S_1^2}{n_1} + \frac{S_2^2}{n_2}} \quad \text{(30 से बड़े समूह के लिये)}$$

या

$$\sqrt{\frac{S_1^2}{n_1 - 1} + \frac{S_2^2}{n_2 - 1}} \quad \text{(30 या 30 से छोटे समूह के लिये)}$$

$M_1 \sim M_2$ = दोंनों प्रतिदर्श समूह के मध्यमानों का अन्तर।

S_1, S_2 = समूहों के मानक विचलन।

N_1, N_2 = समूहों के सदस्यों की संख्या ।

दो मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता के परीक्षण हेतु t- अनुपात की गणना कर लेने के बाद इसकी सार्थकता देखी जाती है। इसके लिए सम्बन्धित मुक्तांशो (df) पर t – अनुपातों की सारणी को देखा जाता है। दो मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता के लिए ज्ञात किये गये t- अनुपात का मान वॉछित सार्थकता स्तर के लिए सारणी मान से अधिक होता है तब t-अनुपात को उस सार्थकता स्तर पर सार्थक अन्तर नहीं है, को निरस्त कर दिया जाता है। इसके विपरीत यदि परिगणित t – अनुपात का मान वांछित सार्थकता स्तर के लिये सारणी मान से कम होता है, तब परिगणित t – अनुपात को उस सार्थकता स्तर पर असार्थक कहा जाता है, तथा शून्य परिकल्पना को स्वीकार कर लेते हैं।

उदाहरण – कक्षा–8 तथा कक्षा–10 के छात्रों के प्रतिदर्शों के सामान्य ज्ञान परीक्षण पर प्राप्त अंको का मध्यमान व मानक विचलन निम्नवत थे। क्या कक्षा –10 के छात्रों का मध्यमान कक्षा–8 के छात्रों के मध्यमान से सार्थक रूप से अधिक हैं?

	N	M	S
कक्षा–8	25	55.24	11.75
कक्षा–10	28	62.76	10.38

हल– चूँकि कक्षा 10 का मध्यमान कक्षा–8 की अपेक्षा अधिक है। इसलिये एक **पुच्छीय** परीक्षण (One-tailed test) का प्रयोग होगा। यहाँ df = 25 – 1 + 28 – 1 = 1

अतः df = 51 के लिये एक पुच्छीय परीक्षण (One-tailed test) के लिये t **सरणी** में देखने पर

$$t_{05} = 2.01$$

$$t_{01} = 2.68$$

चूँकि दोनों प्रतिदर्शो का आकार 30 से कम है अतः मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात करेंगे –

$$\sigma_D = \sqrt{\frac{S_1^2}{n_1 - 1} + \frac{S_2^2}{n_2 - 1}}$$

जबकि S_1, S_2 = क्रमशः दोनों समूह के मानक विचलन

n_1, n_2 = क्रमशः समूह –1 व समूह–2 में छात्रों की संख्या

अतः $$\sigma_D = \sqrt{\frac{(11.75)^2}{25-1} + \frac{(10.38)^2}{28-1}}$$

$$= \sqrt{5.7526 + 3.9905}$$

$$= \sqrt{9.7431}$$

$$\sigma_D = 3.12$$

मध्यमानों के अन्तर की सार्थता के लिए t अनुपात,

$$t = \frac{M_1 \sim M_2}{\sigma_D}$$

$$= \frac{55.24 \sim 62.76}{3.12}$$

$$= \frac{7.52}{3.12}$$

$$= 2.41$$

क्योंकि प्राप्त t=2.41 मान एक पुच्छीय परीक्षण (one tailed test) के लिये 0.05 स्तर पर सारणी मान $t_{05} = 2.01$ से अधिक है परन्तु .01 स्तर पर सारणी मान $t_{01} = 2.68$ से कम है। अतः प्राप्त t मान 0.05 स्तर पर तो सार्थक है, जबकि 0.01 स्तर पर असार्थक है। अतः 0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना निरस्त होती है तथा वैकल्पिक परिकल्पना स्वीकृत होती है। अर्थात कक्षा–10 के छात्रों का मध्यमान कक्षा–8 के छात्रों के मध्यमान से 0.05 स्तर पर सार्थक रूप से अधिक होते हैं।

उदाहरण– कक्षा–8 के छात्रों के दो प्रतिदर्श रैण्डम विधि से छाँटे गये । एक समूह को नियन्त्रित समूह के रूप में रखा गया तथा दूसरे को प्रयोगात्मक समूह के रूप में रखकर दो माह तक विशेष प्रशिक्षण दिया गया। प्रयोग के अन्त में दोनो समूह को उपलब्धि परीक्षण दिया गया। परीक्षण पर प्राप्त परिणाम निम्नवत थे। क्या नियन्त्रित व प्रयोगात्मक समूहों के मध्यमानो में अंतर सार्थक है ?

	प्रतिदर्श आकार(n)	मध्यमान(M)	मानक विचलन(S)
प्रयोगात्मक समूह	50	69.27	4.83
नियन्त्रित समूह	50	62.85	7.10

हल– चूँकि यहाँ प्रयोगात्मक समूह को विशेष प्रशिक्षण दिया गया है। अतः प्रयोगात्मक समूह का मध्यमान नियन्त्रित समूह से अधिक होना चाहिये। अतः यहाँ भी one-tailed test का प्रयोग होगा। साथ ही दोनों प्रतिदर्शो का आकार भी n=30 से अधिक है, अतः t .01 स्तर पर 2.33 एवं .05 स्तर पर 1.66 से करके सार्थकता का निर्धारण करेंगे। यहाँ df=98 तथा n का मान 30 से ज्यादा है। अतः मध्यमानों में अन्तर की मानक त्रुटि को निम्न सूत्र से ज्ञात करेंगे–

$$\sigma_D = \sqrt{\frac{S_1^2}{n_1} + \frac{S_2^2}{n_2}}$$

$$= \sqrt{\frac{(4.83)^2}{50} + \frac{(7.10)^2}{50}}$$

$$= \sqrt{.4666 + 1.0082}$$

$$= \sqrt{1.4748}$$

$$= 1.21$$

मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता के लिए t - अनुपात

$$t = \frac{M_1 - M_2}{\sigma_D}$$

$$= \frac{69.27 - 62.85}{1.21}$$

$$= \frac{6.42}{1.21}$$

$$= 5.31$$

चूँकि प्राप्त $t = 5.31$ one tailed test के लिए 0.01 स्तर पर सारणी मान 2.33 से अधिक है। अतः यह अन्तर 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः इस स्तर पर शून्य परिकल्पना को निरस्त कर वैकल्पिक परिकल्पना को स्वीकार किया जा सकता है। अर्थात प्रयोगात्मक समूह का मध्यमान नियन्त्रित समूह के मध्य मान से सार्थक रूप में अधिक होता है।

15.6 प्रसरण विश्लेषण (Analysis of variance or ANOVA)

t – परीक्षण का उद्देश्य दो प्रतिदर्श समूह के प्राप्तांको के मध्य सार्थक अन्तर का अध्ययन करना होता है। जबकि प्रसरण विश्लेषण के अन्तर्गत दो से अधिक प्रतिदर्श समूहों के प्राप्तांकों के मध्य सार्थक अन्तर का अध्ययन निहित होता है। अतः t – परीक्षण का एक विकसित रूप ही प्रसरण विश्लेषण है। इसे संक्षेप में ANOVA भी कहते है। इसका प्रतिपादन आर०ए०फिशर ने 1923 में किया था। अतः इसे इन्हीं के नाम पर एफ अनुपात (F-Ratio) भी कहा जाता है।

15.6.1 F-test की आवश्यकता क्यों पड़ी –

जब दो से अधिक समूहों जैसे तीन समूहों के मध्य मध्यमानों (Mean) के अन्तर की सार्थकता की जॉच करनी हो तो t – परीक्षण का प्रयोग यहाँ पर किया

तो जा सकता है किन्तु ऐसी परिस्थिति में तीन t मान ज्ञात करना होगा। जिससे शोधकर्ता को अधिक श्रम व समय देना होगा। इस परेशानी से बचने के लिए ही R.A.Fisher ने इस परीक्षण का प्रतिपादन किया।

15.6.2 प्रसरण विश्लेषण की मान्यतायें :–

प्रसरण विश्लेषण का प्रयोग निम्नलिखित मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही करना होता है :–

1. जीवसंख्या अथवा विभिन्न जीवसंख्या समूह द्वारा प्रतिदर्श का चयन अनियत प्रतिचयन विधि (Random sampling Method) के द्वारा होना चाहिये।
2. प्रतिदर्श के रूप में चयनित प्राप्तांक का वितरण सामान्य सम्भाव्यता वक्र के अनुरूप ही होना चाहिये।
3. विभिन्न प्रसरण विश्लेषण परस्पर स्वतन्त्र तथा योगात्मक (Additive) होने चाहिए।

प्रतिदर्श की संख्या अधिक होने पर प्रसरण विश्लेषण के परिणामों की शुद्धता अधिक प्रभावित नहीं होती है, किन्तु प्रतिदर्श की संख्या कम होने पर उक्त मान्यताओं का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है, ताकि शुद्ध और विश्वसनीय परिणाम प्राप्त हो सकें।

साधारणतया ANOVA में कुल प्रसरण (total variance) को दो भागों में बॉटा जाता है।

1. वाह्य प्रसरण (Between or among variance)
2. आन्तरिक प्रसरण (Within variance)

वाह्य प्रसरण जिसे समूह के बीच का प्रसरण (between group variance) या बड़ा प्रसरण (larger variance) भी कहा जाता है, ऐसा प्रसरण है जिससे सभी समूहों के प्राप्तांको के आधार पर प्राप्त माध्य से प्रत्येक समूह के माध्य की विभिन्नता का पता चलता है। प्रत्येक समूह में पाये जाने वाले प्राप्तांको की औसत विभिन्नता (average variability) को समूहों के भीतर का प्रसरण या आन्तरिक प्रसरण या छोटा प्रसरण कहा जाता है।

प्रत्येक समूह का प्रसरण (variance or σ^2) अलग–अलग ज्ञात करके फिर सभी प्रसरणों का औसत ज्ञात किया जाता है और इस औसत को समूह के भीतर का प्रसरण कहा जाता है। वाह्य प्रसरण (Between or among variance) तथा भीतरी प्रसरण (within variance) के अनुपात को F–अनुपात (F-ratio) कहा जाता है। इसे सूत्र के रूप में निम्न प्रकार से लिखते है –

$$F = ratio = \frac{\text{Among or Between variance}}{\text{within variance}}$$

अथवा (or)

$$F = ratio = \frac{\text{Larger variance}}{\text{Smaller variance}} = \frac{MS_B}{MS_W}$$

जहाँ $MS_B = \frac{SS_B}{df_B}$ $MS_w = \frac{SS_w}{df_w}$

F परीक्षण के इसी F-ratio की गणना की जाती है।उपरोक्त दोनों तरह के प्रसरणों (variances) के अन्तर की सार्थकता की जॉच करने वाली सांख्यिकी विधि को F- परीक्षण या F-test कहा जाता है। उपरोक्त के पदों एवं प्रयोग को निम्न उदाहरण से समझना आसान होगा।

उदाहरण – नीचे प्रथम समूह तथा द्वितीय समूह के प्राप्तांक दिये गये हैं। दोनो समूहों के अन्तर की सार्थकता प्रसरण. विश्लेषण द्वारा 0.05 या 5% स्तर पर ज्ञात करिये।

Group A X_1	Group BX_2	X_1^2	X_2^2
8	6	64	36
7	7	49	49
6	5	36	25
5	4	25	16
4	3	16	9
5	2	25	4
9	7	81	49
6		36	
$\sum X_1$=50	$\sum X_2$=34	$\sum X_1^2$=332	$\sum X_2^2$=188
n_1=8	n_2=7		

हल– F परीक्षण के लिये सर्वप्रथम संशोधन पद (Correction term) ज्ञात किया जाता है। इसलिये

हल– संशोधन (C) = $\frac{(\sum X_1 + \sum X_2 + ...)^2}{N_1 + N_2 + ...}$

$$= \frac{(50+34)^2}{8+7}$$

$$= \frac{7056}{15} = 470.4$$

Total SS - (Total sum of squares)

$$SS_T = \sum X_1^2 + \sum X_2^2 - C$$

$$= 332 + 188 - 470.4$$

$$= 520 - 470.4$$

$$= 49.6$$

Sum of Squares for Between the Groups

$$SS_B = \frac{(\Sigma X_1)^2}{n_1} + \frac{(\Sigma X_2)^2}{n_2} + \ldots\ldots\ldots + \frac{(\Sigma X_2)^2}{n_n} - Cn$$

$$= \frac{(50)^2}{8} + \frac{(34)^2}{7} - 470.4$$

$$= 312.5 + 165.142 - 470.3 = 7.242$$

Sum fo Squares forWithin the Groups

$$SS_w = \text{Total SS} - \text{Between SS}$$

$$= SS_T - SS_B$$

$$= 49.6 - 7.242$$

$$= 42.358$$

$$\text{F- ratio} = \frac{\text{MeanSquarebetweenGroups}}{\text{MeanSquarewithinGroups}} = \frac{MS_B}{MS_W} = \frac{SS_B / df_B}{SS_W / df_W}$$

वाहय वर्ग योग के लिये स्वतन्त्रांश $df_B = k - 1 = 2 - 1 = 1$

आन्तरिक वर्ग योग के लिये स्वतन्त्रांश $df_W = N - k = 15 - 2 = 13$

K= समूहों की संख्या

$W = n_1 + n_2 + \ldots\ldots\ldots$

$$= \frac{7.242}{3.258} = 2.2228$$

एक अनुपात तालिका के अनुसार 5% विश्वास स्तर पर तथा 1 वाहय वर्ग योग मुक्तांश और आन्तरिक वर्ग योग स्वतन्त्रांश पर तालिका का का मान 4.67 है। अतः परिकलित अनुपात मान 2.2228 तालिका मान 4.67 से कम है। अतः शून्य परिकल्पना सत्य है। अर्थात दोनों समूह के मध्य 5% विश्वास स्तर पर अन्तर सार्थक नहीं है।

एफ–अनुपात की सारांश (Summary) तालिका का रूप

प्रसरण का स्रोत	वर्ग योग	मुक्तांश	माध्य वर्ग	एफ अनुपात	परिणाम
समूहों के मध्य समूहों के अन्दर	7.242 42.358	1 13	7.242 3.258	2.2228	0.05 स्तर पर असार्थक

15.7 अभ्यास प्रश्न

1. सांख्यिकी अनुमान क्या है ? सांख्यिकी अनुमान की विधि को स्पष्ट0.05 कीजिये।
2. टी–परीक्षण तथा प्रसरण विश्लेषण के महत्व को स्पष्ट कीजिये।
3. सार्थकता स्तर क्या है ? इसके स्तर को स्पष्ट कीजिये।
4. निम्न प्रदत्तों के लिये प्रसरण विश्लेषण का प्रयोग करके समूहों की तुलना कीजिये।

समूह–अ	समूह–ब	समूह–स
N=20	N=25	N=40
$\sum x$=160	$\sum x$=125	$\sum x$=230
$\sum x^2$=1600	$\sum x^2$=950	$\sum x^2$=1810

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Agarwal, Y.P. (1988) : Statistical Methods : Concept Applications and competation, Sterling Publishers Private Ltd, New Delhi.

Garrett, H.E. (1967) : Statistics in Psychology and Education, Vakils, Feffer and Simons Pvt. Ltd. Bombay.

गुप्ता, एस.पी. (2003) : सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

सिंह, अरूण कुमार (2009) : ''मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ'' मोतीलाल बनारसी दास, बंगलों रोड, नई दिल्ली।

15.9 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

4. F 6.34, df=2, 82, 0.01 स्तर पर सार्थक

इकाई –16 अप्राचलिक सांख्यिकी (Non-Parametric Statistics)

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 अप्रचलिक संख्यिकी का प्रत्यय एवं प्रमुख विधियाँ

16.4 काई–वर्ग परीक्षण

16.4.1 काई–वर्ग परीक्षण की स्थितियाँ

16.4.2 काई–वर्ग परीक्षण में मुक्तांश

16.4.3 काई–वर्ग परीक्षण के सोपान

16.4.4 काई–वर्ग परीक्षण के अनुप्रयोग

16.4.5 काई–वर्ग परीक्षण के लाभ

16.4.6 काई–वर्ग परीक्षण की परिसीमायें

16.4.7 सातत्यता के लिये येट्स संशोधन

16.4.8 काई–वर्ग परीक्षण की मान्यतायें

16.5 मध्यांक परीक्षण

16.5.1 मध्यांक परीक्षण के सोपान

16.6 के0एस0परीक्षण

16.6.1 के.एस. एक प्रतिदर्श परीक्षण

16.6.2 के.एस. द्वि प्रतिदर्श परीक्षण

16.7 मान–व्हिटनी यू–परीक्षण

16.8 सारांश

16.9 अभ्यास कार्य

16.10 चर्चा के बिन्दु

16.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.12 अभ्यास हेतु आंकिक प्रश्नों के उत्तर

16.1 प्रस्तावना

अनुसन्धान कार्य में सांख्यिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। कोई भी व्यक्ति अनुसन्धान कार्यों को तब तक नहीं समझ सकता जब तक उसे अनुसन्धान में प्रयुक्त विभिन्न सांख्यिकीय पदों व विधियों का ज्ञान न हो। सांख्यिकी की प्रकृति, कार्य व प्रकारों की चर्चा पूर्व इकाइयों में हो चुकी है। प्रतिदर्श की विशेषताओं को

जानने के लिए वर्णनात्मक सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है तथा इसके उपरान्त अनुमानात्मक सांख्यिकीय विधियों के आधार पर इन विशेषताओं की सहायता से समष्टि समूह के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है। अनुमानात्मक सांख्यिकी के दो रूप प्राचलिक या मान्यतायुक्त सांख्यिकी की विधियों को भी हम पूर्व इकाइयों में अध्ययन कर चुके हैं, इस इकाई में हम अनुमानात्मक सांख्यिकी के दूसरे रूप मान्यतामुक्त या अप्राचलिक सांख्यिकी की प्रमुख विधियों का अध्ययन करेंगे। अप्राचलिक सांख्यिकी का प्रयोग कब और किस प्रकार किया जाता है ? इसकी जानकारी इस इकाई में देने का प्रयास किया गया है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप में यह योग्यता विकसित हो जायेगी–

1. अप्राचलिक सांख्यिकी के प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. अप्राचलिक सांख्यिकी की विभिन्न विधियों को जान सकेंगे।
3. काई–वर्ग परीक्षण का अनुसन्धान में प्रयोग कर सकेंगे।
4. मध्यांक परीक्षण का अनुसन्धान कार्य में प्रयोग कर सकेंगे।
5. के0एस0परीक्षण का अनुसन्धान कार्य में प्रयोग कर सकेंगे।
6. मान–व्हिटनी परीक्षण के प्रयोग को सीख सकेंगे।

16.3 अप्राचलिक सांख्यिकी का प्रत्यय एंव प्रमुख विधियाँ

प्राचलिक सांख्यिकी के विपरीत अप्राचलिक सांख्यिकी से तात्पर्य ऐसी सांख्यिकीय विधियों से हैं जिनके प्रयोग के लिए आंकड़ों के सम्बन्ध में किन्हीं शर्तों या मान्यताओं की पूर्ति करना आवश्यक नहीं होता। इसीलिए इन विधियों को मान्यतामुक्त सांख्यिकी विधियाँ भी कहते हैं। अर्थात अप्राचलिक सांख्यिकी ऐसी सांख्यिकीय विधियाँ है जो जीव संख्या (Population) जिनसे कि प्रतिदर्श लिया जाता है, के बारे में कोई विशेष शर्त नहीं रखती है। चूँकि ऐसी सांख्यिकी जीवसंख्या के बारे में कोई शर्त नहीं रखती है इसलिये इसे वितरण–मुक्त सांख्यिकी (Distribution-free Statistics) भी कहा जाता है। लेकिन वितरण मुक्त सांख्यिकी कहने का तात्पर्य यह नही है कि इसकी कोई भी पूर्व कल्पना (Assumption) या शर्त नहीं होती है। वास्तव में अप्राचलिक सांख्यिकी भी अपने संख्यात्मक आंकड़ो के बारे में कुछ पूर्वकल्पना करती है। जैसे– अध्ययन किये जाने वाले चर का प्रेक्षण स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष होना चाहिये, उसमें निरन्तरता हो तथा आंकड़े नामित मापनी व (Nominal Scale) या क्रमसूचक मापनी (Ordinal Scale) पर प्राप्त हुए हो। आप्राचलिक सांख्यिकी कई दृष्टियों से लाभप्रद है।

बैंडली (Bradly 1968) ने अप्राचलिक सांख्यिकी की तुलना प्राचलिक सांख्यिकी से करते हुए उसके निम्नांकित लाभ तथा परिसीमाओं को बताया है–

(i) व्यूत्पत्ति की सरलता (Simplicity of derivation)

अप्राचलिक सांख्यिकी की व्यूत्पत्ति प्राचलिक सांख्यिकी की व्यूत्पत्ति की तुलना में आसान है। प्राचलिक सांख्यिकी की व्यूत्पत्ति के लिए गणित के क्षेत्र में एक स्तर की सक्षमता की आवश्यकता पड़ती है परन्तु अधिकतर अप्राचलिक सांख्यिकी मात्र संयोजी सूत्रों से सरलता से ज्ञात की जा सकती है।

(ii) प्रयोग में तीव्रता (Speed of Application)

जब प्रतिदर्श का आकार छोटा या मध्यम स्तर का होता है तो ऐसी स्थिति में अप्राचलिक सांख्यिकी का व्यवहार प्राचलिक सांख्यिकी की अपेक्षा ज्यादा उपयुक्त तथा तीव्रता के साथ किया जा सकता है।

(iii) अनुप्रयोग की सहजता (Easy fo Application)

प्राचलिक सांख्यिकी में जहाँ उच्च स्तर की गणितीय परिकलन की आवश्यकता पड़ती है, वहीं अप्राचलिक सांख्यिकी में श्रेणी करण, गिनती, जोड़, घटाना आदि से कार्य पूरा हो जाता है। इसीलिए इनका व्यवहार में प्रयोग लाना ज्यादा सहज है।

(iv) अपेक्षित मापनी के प्रकार (Type of measuremet required)

अप्राचलिक सांख्यिकी के प्रयोग में ज्यादातर क्रमसूचक आंकड़े या कभी–कभी नामित आंकड़े प्रयुक्त किये जाते हैं जो क्रमशः क्रमसूचक मापनी या नामित मापनी से प्राप्त होते हैं। जबकि प्राचलिक सांख्यिकी के ऑकड़े अंतराल या आनुपातिक मापनी से प्राप्त होते हैं। इसीलिए अप्राचलिक सांख्यिकी के आंकड़े अपेक्षाकृत अधिक आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं।

(v) प्रतिदर्श के आकार का प्रभाव (Inference of sample size)

यदि प्रतिदर्श का आकार 10 अर्थात N=10 या इससे कम हो तो अप्राचल सांख्यिकी का प्रयोग अधिक सरल तथा तीव्रता से होता है। ऐसी परिस्थिति में प्राचलिक सांख्यिकी की पूर्व मान्यताओं की अवहेलना स्वाभाविक हो जाता है। ऐसी स्थिति में अप्रालिक सांख्यिकी का प्रयोग अधिक उपयुक्त तथा लाभप्रद होता है।

(vi) सांख्यिकीय क्षमता (Statistical efficiency)

व्यावहारिकता तथा अनुसन्धान से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण में लगे मानव प्रयास की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अप्रालिक सांख्यिकी प्राचलिक सांख्यिकी की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक है। इसी प्रकार सांख्यिकी क्षमता की गणितीय कसौटी के आधार पर भी कहा जा सकता है कि अप्राचलिक सांख्यिकी की पूर्व कल्पनायें संतुष्ट होने पर यह सांख्यिकी प्राचलिक सांख्यिकी से श्रेष्ठ होती है। परन्तु जब प्रतिदर्श अर्थात N बड़ा होता है तो ऐसी स्थिति में अप्राचलिक सांख्यिकी की क्षमता

प्राचलिक से कम होती है।

(vii) पूर्वमान्यताओं का अतिक्रमण करने की सुप्रमाण्यता (Susceptibility to violation of assumptions)

अप्राचलिक सांख्यिकी की पूर्व मान्यतायें कम तथा कम विस्तृत होती है। इसीलिये अनुसन्धानकर्ता द्वारा इनके अतिक्रमण करने की सम्भावना भी कम से कम होती है। ब्रेडली का यह भी मत है कि अप्राचलिक साख्यिकी का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है कि इसमें हुए किसी भी प्रकार के अतिक्रमण को आसानी से पकड़ा जा सकता है परन्तु प्राचलिक सांख्यिकी में ऐसा सम्भव नहीं है।

(viii) अनुप्रयोग का क्षेत्र (Scope of application)

अप्रालिक सांख्यिकी की पूर्त मान्यतायें प्राचलिक सांख्यिकी की पूर्व मान्यताओं की अपेक्षा कम सख्त होती है। अतः इनका प्रयोग भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रतिदर्शो पर किया जा सकता है। अतः प्राचलिक सांख्यिकी का क्षेत्र प्राचलिक सांख्यिकी की अपेक्षा अधिक व्याापक होता है।

अप्राचलिक सांख्यिकी की प्रमुख विधियाँ –

अप्राचलिक सांख्यिकी के रूप में प्रयुक्त होने वाली अनुमानात्मक सांख्यिकी की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्न है –

(i) काई–वर्ग परीक्षण (Chi-square Test)

(ii) मध्यांक परीक्षण (Median Test)

(iii) कोलमोगोरोव –स्मिरनोव परीक्षण या के0एस0परीक्षण (Kolmogorov-Smirnov Test)

(iv) मान–व्हिटनी यू–परीक्षण (Mann-Whitney U Test)

उपरोक्त अप्राचलिक सांख्यिकी विधियों में कुछ महत्वपूर्ण तथा ज्यादा प्रयोग में लायी जाने वाली विधियों का विस्तृत विवरण आगे दिया है।

बोध प्रश्न –

अप्राचलिक सांख्यिकी के प्रयोग के तीन लाभ लिखिये –

....

....

....

16.4 काई–वर्ग परीक्षण (Chi-Square Test)

काई–वर्ग परीक्षण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अप्राचलिक सांख्यिकीय प्रविधि है। असतत् वर्गो तथा आवृत्तियों के रूप में उपलब्ध आंकडों के लिये सर्वाधिक उपयुक्त तथा ज्यादातर प्रयुक्त होने वाली सांख्यिकी विधि काई–वर्ग परीक्षण ही है। इस विधि

को सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान कार्यों में प्रयुक्त सांख्यिकी जैसे–सामान्य प्रायिकता वक्र, टी–परीक्षण एवं एफ–परीक्षण के समतुल्य स्वीकार किया जाता है। गिलफोर्ड (Guilford, 1956) ने इसे एक सामान्य उद्‌देश्य सांख्यिकी कहा है। काई–वर्ग का संकेत $Ç^2$ है। काई (Ç) वास्तव में ग्रीक भाषा का एक अक्षर है। काई–वर्ग वितरण की खोज सन् 1875 में हेलमर्ट (Helmert) ने की थी तथा सन् 1900 में कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने पुनः इसका प्रतिपादन स्वतन्त्र रूप से किया जिसके आध ाार पर काई–वर्ग परीक्षण को विकसित किया गया।

काई–वर्ग परीक्षण वस्तुतः आवृत्तियों के किसी अवलोकित वितरण की तुलना किसी पूर्व निश्चित परिकल्पना के आधार पर तैयार किये गये परिकल्पित वितरण जिसे सैद्धान्तिक वितरण अथवा प्रत्याशित वितरण भी कहते हैं, से करता है। इस तुलना में देखा जाता है कि अवलोकित वितरण तथा परिकल्पित वितरण के विभिन्न वर्गो में स्थित आवृत्तियों में सहमति अथवा विभिन्नता किस सीमा तक है। अवलोकित वितरण तथा परिकल्पित वितरण की आवृत्तियों के मध्य दृष्टिगोचर अन्तर की सार्थकता के लिए काई–वर्ग की गणना की जाती है। अर्थात इस परीक्षण द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि कोई दिया गया अवलोकित वितरण किसी परिकल्पना के आधार पर तैयार किये गये प्रत्याशित वितरण से सार्थक रूप से भिन्न हैं अथवा नहीं। इसे कुर्टज तथा मेओ (Kurtz & Mayo, 1980) के शब्दों में निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है –

" काई–वर्ग का प्रयोग प्रायः यह निश्चित करने के लिए किया जाता है कि क्या प्रेक्षित आवृत्तियों का समुच्चय ऐसा है जो मात्र संयोग परिवर्तनों के कारण उन आवृत्तियों से भिन्न है, जो किसी तरह के सिद्धान्त के आधार पर प्रत्याशित है।"

उपर्युक्त परिभाषा से भी यह स्पष्ट है कि काई–वर्ग में अवलोकित आवृत्तियों का एक समुच्चय होता है। इसे प्राप्त आवृत्ति या fo कहा जाता है। अनुसन्धानकर्ता अब यह देखना चाहता है कि ये प्राप्त आवृत्तियां कहाँ तक उन आवृत्तियों से भिन्न है जो किसी सिद्धान्त पर आ सकती है या प्रत्याशित है। इस प्रकार की आवृत्तियों को fe कहा जाता है। इस प्रकार से अनुसन्धानकर्ता यह जानना चाहता है कि fo तथा fe में जो अन्तर आ रहा है वह वास्तविक है या मात्र संयोगवश प्राप्त हुआ है। इस उद्‌देश्य की पूर्ति करने के लिये वह काई–वर्ग ($Ç^2$) का प्रयोग करता है जिसका सूत्र निम्नांकित है –

$$\chi^2 = \sum\left(\frac{(fo - fe)^2}{fe}\right)$$

जहां χ^2 = काई–वर्ग

fo = प्राप्त आवृत्ति

fe = प्रत्याशित आवृत्ति

$\sum$ = कुल योग

16.4.1 काई–वर्ग परीक्षण की स्थितियाँ–

काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग अनुसन्धान कार्यो की निम्न स्थितियों में किया जाता है–

(i) जब अनुसन्धान के आंकड़े गुणात्मक प्रकृति के प्राप्त होते हैं। अर्थात चरों को नामित या क्रमिक स्तर पर मापा गया होता है । नामित या क्रमित स्तरों पर प्रयोज्यों को उनमें विद्यमान किसी विशिष्ट गुण जैसे– लिंग, सामाजिक, आर्थिक स्तर, अधिगम शैली, व्यक्ति प्रकार, बौद्धिक स्तर, निवास, परीक्षा परिणाम आदि के आधार पर कुछ वर्गों में विभक्त किया जाता है तथा विभिन्न वर्गो में आये प्रयोज्यों की संख्या की गणना करके आवृत्तियाँ ज्ञात की जाती है।

(ii) आंकड़े आवृत्तियों या अनुपात या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किये गये हों या इस रूप में उन्हें बदला जाना सम्भव हो।

16.4.2 काई–वर्ग परीक्षण में स्वतन्त्रांश (Degree of Freedom) -

मुक्तांशों की संख्या उन वर्गो की संख्या के बराबर होती है जिसमें पक्ति व स्तम्भों के योगों के रूप में आरोपित वाहय बन्धनों को संतुष्ट करते हुए, इच्छानुसार आवृत्तियाँ रखी जा सकती है। आवृत्ति वितरण एक मार्गी तथा द्विमार्गी हो सकते हैं। एक मार्गी वितरण में केवल एक पंक्ति होती है तथा वाहय रूप से आरोपित बंधन मात्र विभिन्न वर्गो में सम्मिलित आवृत्तियों का योग होता है। यदि कुल आवृत्तियो (N) को K वर्गो में बांटकर आवृत्ति वितरण बनाया गया होता है, तब कुल योग (N) को स्थिर रखते हुए केवल (K-1) वर्गों में इच्छानुसार आवृत्तियाँ बांटी जा सकती है जबकि अन्तिम वर्ग की आवृत्ति को इस प्रकार समायोजित करना होगा कि सभी K वगों की आवृत्तियों का योग N के ही बराबर हो। ऐसी स्थिति में मुक्तांशों (df) की संख्या K-1 के बराबर होती है। जहाँ K वर्गो की संख्या है।

द्विमार्गी अथवा द्विचर आवृत्ति वितरण में आवृत्तियाँ कुछ पंक्तियों तथा कुछ स्तम्भों में वितरित रहती है। इस प्रकार के आवृत्ति वितरण में यदि पंक्तियों की संख्या (r) तथा स्तम्भों की संख्या (c) हो मुक्तांशों (df) की संख्या (r-1) (c-1) के बराबर होती है। उदाहरण के लिये यदि किसी द्विमार्गी वितरण में परीक्षा परिणाम के तीन तथा सामाजिक आर्थिक स्तर के तीन वर्ग हो तो मुक्तांशों (df) की संख्या (3-1) + (3-1) =4 होगी ।

16.4.3 काई–वर्ग परीक्षण के सोपान –

काई वर्ग परीक्षण की सम्पूर्ण क्रिया को निम्न सोपानों में बाँटा जा सकता है–

(i) वितरण के सम्बन्ध में परिकल्पना का निर्माण करना।

(ii) परिकल्पना के आधार पर प्रत्याशित आवृत्तियों (fe) को ज्ञात करके प्रत्याशित आवृत्ति वितरण तैयार करना।

(iii) शून्य परिकल्पना का निर्माण करना।

(iv) सार्थकता स्तर का चयन करना।

(v) मुक्तांशों (df) को ज्ञात करना।

(vi) सार्थकता स्तर तथा स्वतन्त्रांशो के लिये काई–वर्ग का सारणी मान ज्ञात करना।

(vii) काई वर्ग के उपरोक्त सूत्र की सहायता से काई–वर्ग की गणना करना।

(viii) काई–वर्ग की सार्थकता देखकर, शून्य परिकल्पना का स्वीकृत या अस्वीकृत करने का निर्णय लेना।

(ix) शून्य परिकल्पना की स्वीकृति या अस्वीकृति के आधार पर बनाई परिकल्पना को स्वीकृत या निरस्त करना।

काई वर्ग परीक्षण के उपरोक्त सोपानों को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है।

उदाहरण – माना कि 300 छात्रों ने किसी मनोवृत्ति मापनी के 12 पदों पर तीन श्रेणियों में उत्तर दिये। उनके उत्तरों की आवृत्तियाँ निम्न प्रकार से थी– सहमत –125, असहमत–80 तथा तटस्थ– 95

हल–

(i) यहाँ पर समान वितरण की परिकल्पना है। अतः तीनों वर्गो में प्रत्याशित आवृत्ति बराबर–बराबर होनी चाहिये। क्योंकि कुल आवृत्ति N=300 है, अतः प्रत्येक वर्ग के लिये fe का मान 100–100 होगा।

(ii) काई–वग परीक्षण द्वारा जॉच की जाने वाली शून्य परिकल्पना यह होगी कि विभिन्न वर्गो की अवलोकित आवृत्ति (fo) तथा प्रत्याशित आवृत्ति (fe) वितरणों में अन्तर नहीं है। संकेतों के रूप में इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है– $Ho : foi \neq fei$

(iii) सार्थकता स्तर =.01 तथा df=K-1=3-1=2 है, अतः df=2 के लिये .01 स्तर पर काई–वर्ग सारणी देखनी होगी। (काई–वर्ग सारणी अनुसन्धान तथा सांख्यिकी की स्तरीय पुस्तकों के अन्त में दी गयी होती है) सारणी देखने पर यह मान $\chi^2(df=2) = 9.21$ है।

(iv) अवलोकित वितरण तथा प्रत्याशित वितरण की तुलना हेतु काई–वर्ग की गणना के लिये सारणी बनाने पर निम्न रूप बनेगा–

काई–वर्ग की गणना

क्रम	प्रतिक्रिया वर्ग			योग
	सहमत	असहमत	तटस्थ	
fo	125	80	95	300
fe	100	100	100	300
fo-fe	25	200	05	$X^2 =$
$(fo-fe)^2$	625	400	25	$\Sigma \frac{(fo-fe)^2}{fe}$
$\frac{(fo-fe)^2}{fe}$	6.25	4	0.25	=10.50

(v) चूँकि परिगणित X^2 =10.50 का मान df= 2 के लिये .01 स्तर पर सार्थकता के लिये आवश्यक न्यूनतम मान 9.21 से अधिक है, अतः यह .01 स्तर पर सार्थक है। इसलिये शून्य परिकल्पना कि अवलोकित तथा प्रत्याषित वितरणों में अन्तर नहीं है, को 0.01 स्तर पर अस्वीकार किया जा सकता है। अतः समान वितरण की परिकल्पना को भी अस्वीकार किया जाता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि समष्टि में छात्रों की मनोवृत्तियों को तीन प्रतिक्रिया वर्गो में भिन्न रूपों में स्वीकार या समान रूप से वितरित किया जा सकता है।

16.4.4 काई–वर्ग परीक्षण के अनुप्रयोग

काई वर्ग परीक्षण के निम्नांकित प्रमुख अनुप्रयोग हैं–

(i) काई–वर्ग का प्रयोग समान प्रायिकता परिकल्पना पर प्रत्याशित आवृत्तियों की तुलना अवलोकित आवृत्तियों से करने में होता है।

(ii) काई–वर्ग का प्रयोग वितरण की सामान्यता (Normality) की जाँच करने में किया जाता है। इस प्रयोग को समानुकता (Goodness of fit) की संज्ञा दी गयी है।

(iii) काई–वर्ग का प्रयोग स्वतन्त्र परिकल्पना पर प्रत्याशित आवृत्तियों की तुलना अवलोकित आवृत्तियों से करने में की जाती है।

(iv) काई–वर्ग का प्रयोग विभिन्न महत्वपूर्ण सांख्यिकी की सार्थकता की जॉच करने में किया जाता है। जैसे–फाई गुणांक, केण्डाल संगति गुणांक, क्रुस्कल वालिस एच परीक्षण, असंगत गुणांक आदि की जॉच में सफलतापूर्वक किया जाता है।

16.4.5 काई–वर्ग परीक्षण के लाभ –

काई–वर्ग परीक्षण के दो प्रमुख लाभ हैं–

(i) यदि आंकड़े आवृत्ति में हों तो काई–वर्ग का प्रयोग लगभग सभी तरह के व्यावहारिक उद्‌देश्यों के लिये किया जाता है।

(ii) काई–वर्ग द्वारा आसानी से यह ज्ञात हो जाता है कि प्राप्त या अवलोकित आवृत्तियाँ किसी परिकल्पना या सिद्धान्त पर आधारित आवृत्तियों के आकार में अच्छी तरह से फिट बैठी है या नहीं।

16.4.6 काई–वर्ग परीक्षण की परिसीमायें –

काई वर्ग परीक्षण की कुछ परिसीमायें भी है। जो निम्नांकित है–

(ii) काई–वर्ग चरों के सम्बन्ध की शक्ति के विषय में कुछ नहीं कहता। इससे केवल यह पता चलता है कि किसी एक चर पर का वर्गीकरण दूसरे चर पर के वर्गीकरण से असंयोगवश (non-change manner) सम्बन्धित है या नहीं।

(iii) काई–वर्ग का प्रयोग ऐसे आंकड़ो पर नही हो सकता है जिनकी अभिव्यक्ति प्राप्तांको के रूप में हुई है और उन्हें आवृत्ति या प्रतिशत में बदलना संभव नहीं है।

(iv) यह एक सरल सांख्यिकीय तकनीक है। कभी–कभी लोग इसकी सरलता एवं सुगमता को देखकर ऐसी परिस्थितियों में भी प्रयोग कर लेते हैं जहाँ इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। लेकिन लेविस तथा वर्क (Lewis & Burkc, 1979) ने कई वर्ग के प्रयोगों की समीक्षा के आधार पर बताया है कि कुल 9 ऐसी सामान्य स्थितियां होती है जिसमें X^2 का लोग गलत प्रयोग करते हैं।

16.4.7 सातत्यता के लिये येट्स शुद्धि (Yates' Correction for continuity)

काई–वर्ग परीक्षण का परिकलन करने में यदि आवृत्ति वितरण तालिका 2x2 या 2x1 के रूप में होती है जहाँ df हमेशा 1 होता है तो ऐसी स्थितियों में दिक्कतें उत्पन्न हो जाती है। वास्तव में काई–वर्ग का सैद्धान्तिक प्रतिदर्शन वितरण एक दिये हुए मुक्तांश के लिये सतत होता है परन्तु कभी–कभी 2x2 तालिका के किसी भी सेल में जब विशेषकर प्रत्याशित आवृत्ति कम जैसे–1, 2, 3 आदि होती है, तो ऐसे वितरण में असात्यता आ जाती है। इसी असात्यता को कम करने तथ्था सततता को बनाये रखने के लिये प्रोफेसर येट्स ने शुद्धि की सिफारिश की जिसे येट्स संशोधन कहा जाता है। येट्स शुद्धि के लिये कुछ बातों का होना आवश्यक है, जो निम्न है–

(ii) आवृत्तियों या प्रतिशत या समानुपात निश्चित रूप से 2x2 या 2x1 तालिका में हो अर्थात तालिका के df का मान हमेशा 1 होना चाहिये।

(iii) तालिका के किसी सेल की प्रत्याशित आवृत्ति अर्थात fe को 5 से कम होना चाहिये। हालॉकि कुछ विशेषज्ञ इसे 5 के कम नही

बल्कि 10 से कम की बात कहते हैं।

(iv) येट्स संशोधन में (fo - fe) के प्रत्येक अन्तर में से 0.5 घटाया जाता है अर्थात प्रत्येक fo मे से जो fe से ज्यादा होता है, .5 घटा लिया जाता है तथा प्रत्येक fo में से जो fe से कम होता है, 0.5 जोड़ दिया जाता है।

(v) इस संशोधन का प्रयोग तालिका के प्रत्येक सेल में किया जाता है न कि सिर्फ उसी सेल में जिसमें प्रत्याशित आवृत्ति 5 से कम है।

16.4.8 काई वर्ग परीक्षण की मान्यतायें (Assumptions)

एक अप्राचलिक सांख्यिकी होते हुए भी काई–वर्ग परीक्षण की कुछ मान्यतायें अन्तर्निहित है। जो निम्न है–

(i) अवलोकित वितरण के विभिन्न वर्ग अथवा प्रकोष्ठ (cell) परस्पर अपवर्जित (Mutally Exclusive) होते हैं अर्थात कोई भी व्यक्ति केवल एक ही वर्ग या प्रकोष्ठ में आ सकता है।

(ii) प्रतिदर्श का चयन समष्टि से रैण्डम (Random) विधि से हुआ है।

(iii) प्रत्येक (fo-fe_ का प्रतिचयन वितरण मध्यमान शून्य के साथ सामान्य प्रायिकता वक्र (NPC) के अनुरूप है।

बोध प्रश्न –

1. काई–वर्ग परीक्षण के सूत्र एवं प्रयुक्त संकेतों के अर्थ लिखिये।

....

....

....

2. काई–वर्ग परीक्षण किन स्थितियों में प्रयोग किया जाना चाहिये ?

....

....

....

16.5 मध्यांक परीक्षण (Median Test)

माध्यिका परीक्षण एक ऐसी अप्राचलिक सांख्यिकी है जिसके द्वारा दो स्वतन्त्र प्रतिदर्शो या दो स्वतन्त्र समूहों में केन्द्रीय प्रवृत्ति के रूप में विशेषकर मध यांक के आधार पर तुलना की जाती है कि इनमें अन्तर है या नहीं। वास्तव में मध्यांक परीक्षण यह देखता है कि क्या दोनों प्रतिदर्श एक ही समष्टि (Population) अथवा एक समान मध्यांक वाली दो समष्टियों से छॉटे गये हैं। इसमें दोनों प्रतिदर्शो का आकार की दृष्टि से बराबर होना आवश्यक नहीं है।

इस परीक्षण के उपयोग में अनुसन्धान परिकल्पना (H_1) यह होती है कि दोनों स्वतन्त्र प्रतिदर्शो को ऐसी समष्टि से लिया गया है जिसका मध्यांक समान नहीं है तथा शून्य परिकल्पना (Ho) यह होती है कि दोनों स्वतन्त्र प्रतिदर्शों को ऐसी समष्टि से लिया गया है जिसका मध्यांक एक है।

इस परीक्षण में दोनों प्रतिदर्शो का एक सामान्य मध्यांक ज्ञात किया जाता है। इसके बाद मध्यांक से ऊपर तथा मध्यांक से ऊपर नहीं प्राप्तांको की संख्या ज्ञात की जाती है। इन दोनों तरह की आवृत्तियों के आधार पर तथा दोनों प्रतिदर्श के आधार पर 2x2 वितरण तालिका तैयारकर काई–वर्ग ज्ञात किया जाता है। काई वर्ग की सार्थकता तथा असार्थकता मान के आधार पर शून्य परिकल्पना को अस्वीकृत या स्वीकृत कर अनुसन्धान परिकल्पना की स्वीकृति या अस्वीकृति के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है।

16.5.1 मध्यांक परीक्षण के सोपान

मध्यांक परीक्षण के निम्न सोपान है–

(i) दोनों प्रतिदर्शो का संयुक्त मध्यांक ज्ञात करना।

(ii) प्रत्येक समूह में संयुक्त मध्यांक के ऊपर तथा उसके बराबर या उससे नीचे स्थित प्राप्तांकों की आवृत्तियों को ज्ञात करना।

(iii) 2 x 2 आवृत्ति वितरण तालिका तैयार करना।

(iv) काई–वर्ग की गणना करना।

(v) परिगणित काई–वर्ग की सार्थकता df=1 पर देखना। काई–वर्ग का मान सार्थक होने पर शून्य परिकल्पना (Ho) कि दोनों समूहों के मध्यांको में अन्तर नहीं है, को निरस्त करना या काई–वर्ग के मान के असार्थक होने पर उसे स्वीकार करना।

उदाहरण – छात्र तथा छात्राओं के दो प्रतिदर्शो के लिये किसी परीक्षण पर निम्न प्राप्तांक प्राप्त हुए। क्या इन दोनो समूहों में सार्थक अन्तर है ?

छात्र – 7, 12, 15, 10, 8, 5, 14, 16, 9, 8, 19, 12, 16, 11, 3, 10

छात्रायें– 8, 5, 14, 16, 18, 3, 6, 9, 19, 4, 6, 7, 10,12

हल – सर्वप्रथम दोनो समूहो का संयुक्त मध्यांक ज्ञात करने के लिये सभी प्राप्तांको को आरोही या अवरोही क्रम में निम्नानुसार क्रमबद्ध करना होगा–

3, 3, 4, 5, 5, 6, 6, 7, 7, 8, 8, 8, 9, 9, 10, 10, 10, 11, 12, 12, 12, 14, 14, 15, 16, 16, 16, 18, 19, 19

क्योकि यहाँ पर कुल प्राप्तांक (N) = 30 है इसलिये (N+1)/2 वां प्राप्तांक अर्थात 15.5 वां प्राप्तांक ही संयुक्त मध्यांक होगा। इसलिये

संयुक्त मध्यांक = 15.5 वां प्राप्तांक = 15 वां प्राप्तांक + 16 वां प्राप्तांक

$$= \frac{10+10}{2} = 10$$

अब प्रत्येक समूह में संयुक्त मध्यांक से अधिक तथा कम मान वाले प्राप्तांकों की संख्या ज्ञात करके 2x2 तालिका बनाने पर

संयुक्त मध्यांक के आधार पर समूहों का विभाजन

	प्रथम समूह	द्वितीय समूह	योग
संयुक्त मध्यांक (10) से ऊपर स्थित प्राप्तांक	8 A	5 B	13
संयुक्त मध्यांक (10) के बराबर अथवा उससे नीचे स्थित प्राप्तांक	8 C	9 D	17
कुल	16	14	30

2x2 तालिका से X^2 की गणना निम्नसूत्र से सीधे की जा सकती है।

$$\text{काई वर्ग } (\chi)^2 = \frac{N(AD-BC)^2}{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}$$

अतः इस सूत्र द्वारा

$$\chi^2 = 30(8 \times 9 - 5 \times 8)^2$$
$$\chi^2 = 13 \times 17 \times 16 \times 14$$
$$\chi^2 = 30(72 - 4\ 0)^2$$
$$\chi^2 = \frac{30720}{49504} = 0.62$$

चूँकि df=1 के लिये सारणी काई–वर्ग का मान 0.05 स्तर पर 3.841 तथा 0.01 स्तर पर 6.635 है, अतः पारिगणित $\chi^2 = 0.62$ को किसी भी स्तर पर सार्थक नही कहा जा सकता है। इस असार्थक काई–वर्ग मान के आधार पर कहा जा सकता है कि छात्र और छात्राओं के समूहों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

बोध प्रश्न –

मध्यांक परीक्षण का प्रयोग कब किया जाता है ?

....

....

16.6 के.एस.परीक्षण (K.S. Test)

के.एस.परीक्षण का पूरा नाम कोलमोगोरोव–स्मिरनोव **परीक्षण है। यह** परीक्षण दो अलग–अलग प्रतिदर्श के रूपों को अलग–अलग **ढंग से परीक्षण**

करता है। इसीलिये इस परीक्षण को दो भागों में बाँटा जाता है।

1. के.एस.एक प्रतिदर्श परीक्षण
2. के.एस.द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण

16.6.1 के. एस. एक प्रतिदर्श परीक्षण

यह परीक्षण वास्तव में समानुकता की जॉच का परीक्षण (Test of Goodness of fit) है। यह परीक्षण बताता है कि कोई अवलोकित आवृत्ति वितरण किसी परिकल्पना के आधार पर तैयार किये गये अनुमानित वितरण अथवा किसी विशिष्ट सैद्धान्तिक वितरण से किस सीमा तक समानता रखता है। यह परीक्षण कम से कम क्रमित स्तर के वितरणों के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि अवलोकित वितरण क्रमित अथवा अन्तरित स्तर का होता है तब समानुकता की जॉच के लिये इस परीक्षण का प्रयोग काई–वर्ग परीक्षण से अधिक अच्छा माना जाता है। यह परीक्षण वास्तव में अवलोकित तथा प्रत्याशित संचयी आवृत्ति वितरणो की तुलना करता है। जिस बिन्दु पर इन दोनों संचयी आवृत्ति वितरणों में सर्वाधिक अन्तर होता है, उसे ज्ञात किया जाता है एवं देखा जाता है कि क्या इतना बड़ा अन्तर केवल संयोगवश आ सकता है अथवा नहीं।

इस परीक्षण की शून्य एवं वैकल्पिक परिकल्पना निम्नानुसार होती है–

Ho : अवलोकित संचयी वितरण तथा प्रत्याशित संचयी वितरण में अन्तर नहीं है।

H_1 : अवलोकित संचयी तथा प्रत्याशित संचयी वितरण एक समान है।

इस परीक्षण में अवलोकित तथा प्रत्याशित आवृत्ति वितरणों को संचयी आवृत्ति वितरणों में बदल लिया जाता है। इसके बाद विभिन्न वर्गो की अवलोकित संचयी आवृत्ति (Fo) तथा प्रत्याशित संचयी आवृत्ति (Fe) के अन्तर को ज्ञात कर लेते हैं। फिर इनमें से सर्वाधिक अन्तर को N से भाग देकर D का मान प्राप्त कर लेते हैं। अतः

$$\frac{\text{सर्वाधिक } (Fo \sim Fe)}{N}$$

परिगणित D मान की सार्थकता की जॉच के0एस0 एक प्रतिदर्श परीक्षण के D मानों की सारणी की सहायता से की जाती है। यदि परिगणित D मान दिये गये N पर वांछित सार्थकता स्तर के लिये D के सारणी मान से अधिक होता है तब इसे सार्थक कहते हैं अन्यथा असार्थक कहा जाता है। सार्थक D मान शून्य परिकल्पना को निरस्त करने की ओर संकेत करता है। इस परीक्षण को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्टता से समझा जा सकता है।

उदाहरण – दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों के प्रति अभिवृत्ति कथन पर 50 प्रयोज्यों का वितरण निम्नानुसार था। क्या वितरण को सभी प्रतिक्रिया वर्गो में समान वितरण के अनुरूप माना जा सकता है ?

प्रतिक्रिया वर्ग – पूर्णतःउपयुक्त उपयुक्त उदासीन कमउपयुक्त अनुपयुक्त कुल

आवृत्ति– 14 11 9 8 8 50

हल – चूँकि प्रतिक्रिया वर्ग क्रमित स्तर के हैं। इसलिये के0एस0एक प्रतिदर्श परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है। अतः अवलोकित वितरण तथा समान वितरण की परिकल्पना के आधार पर तैयार किये गये प्रत्याशित वितरण की तुलना के लिये के0एस0परीक्षण हेतु निम्न सारणी बनाने पर –

के0एस0 एक प्रतिदर्श परीक्षण का गणना कार्य

प्रतिक्रिया वर्ग	अवलोकित वितरण		प्रत्याशित वितरण		Fo ~ Fe
	Fo	Fe	Fe	Fe	
अनुपयुक्त	8	50	10	50	0
कमउपयुक्त	8	42	10	40	2
उदासीन	9	34	10	30	4
उपयुक्त	11	25	10	20	5
पूर्णतःउपयुक्त	14	14	10	10	4
	N=50		N=50		

$$D = \frac{\text{सर्वाधिक } (Fo \sim Fe)}{N}$$

$$D = \frac{5}{50}$$

$$D = 0.1$$

के0एस0एक प्रतिदर्श परीक्षण की D मानों की सारणी से N के 35 से अधिक होने पर परिगणित D मान को 0.05 व 0.01 स्तरों पर सार्थक होने के लिये क्रमशः $1.36/\sqrt{N}$ व $1.63/\sqrt{N}$ के बराबर अथवाअधिक होना चाहिये। यहाँ पर N=50 है, अतः $1.36/\sqrt{N}=.192$ तथा $1.63/\sqrt{N}=.231$ होगा। क्योंकि प्राप्त मान D=0.1 दोनों ही मानों से कम है, इसलिये यह दोनों में से किसी भी स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना कि अवलोकित तथा प्रत्याशित वितरणों में अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जा सकता है।

16.6.2 के0 एस0 द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण

यह परीक्षण दो स्वतन्त्र प्रतिदर्शो की तुलना के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह बताता है कि क्या दोनों प्रतिदर्शो को एक ही समाष्टि अथवा एक जैसी समाष्टियों से लिया हुआ स्वीकार किया जा सकता है अथवा नही। इस परीक्षण का प्रयोग एक पुच्छीय अथवा द्वि–पुच्छीय परीक्षण दोनों ही रूपों में किया जा

सकता है। द्विपुच्छीय परीक्षण में प्रतिदर्शो के अन्तर की सार्थकता देखी जाती है जबकि एक पुच्छीय परीक्षण मे एक प्रतिदर्श के दूसरे प्रतिदर्श से श्रेष्ठ अथवा हीन होने की जॉच की जाती है।

इस परीक्षण की शून्य परिकल्पना (Ho) होती है कि दोनों प्रतिदर्श संचयी वितरणों में अन्तर नहीं है जबकि वैकल्पिक परिकल्पना (H_1) होती है कि दोनो प्रतिदर्श संचयी वितरणों में अन्तर है। इस परीक्षण में सर्वप्रथम दोनों वितरणों को संचयी वितरणों में बदल लेते हैं तथा फिर उनके प्रतिदर्श आकारों से भाग देकर इन संचयी वितरणों को आनुपातिक संचयी वितरणों में परिवर्तित कर लेते हैं। तत्पश्चात आनुपातिक संचयी आवृत्तियों के अन्तरों को ज्ञात किया जाता है। सर्वाधिक अन्तर को मान D कहा जाता है। अतः के0एस0 द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण में D=सर्वाधिक ($pF_1 \sim pF_2$)

जहाँ pF_1 = प्रथम प्रतिदर्श के किसी वर्ग की आनुपातिक संचयी आवृत्ति

pF_2 = द्वितीय प्रतिदर्श के किसी वर्ग की आनुपातिक संचयी आवृत्ति

परिगणित D मान की सार्थकता की जॉच के0एस0 द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण के D मानों की सारणी के द्वारा की जा सकती है। यदि पारिगणित D मान दिये गये N_1 तथा N_2 पर वांछित सार्थक स्तर के लिये D के सारणी मान से अधिक होता है तब उसे सार्थक कहा जाता है। सार्थक D मान शून्य परिकल्पना को निरस्त करने तथा असार्थक होने पर स्वीकार की जा सकती है।

उदाहरण – किसी विषय पर अभिवृत्ति कथन पर छात्र एवं छात्राओं के दो प्रतिदर्शो की प्रतिक्रियायें निम्न थी। क्या इन दोनों प्रतिदर्शो की प्रतिक्रियाओं में अन्तर सार्थक है ?

प्रतिक्रिया वर्ग–	कभी नहीं	कभी–कभी	प्रायः	बहुधा	सदैव	कुल
छात्र प्रतिदर्श–	35	20	18	15	12	100
छात्रा प्रतिदर्श–	20	17	20	12	11	80

हल : क्योंकि प्रतिक्रिया वर्गो की प्रकृति क्रमित है, अतः दोनों समूहों की तुलना के लिये के.एस.द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण को प्रयुक्त किया जा सकता है। दोनों प्रतिदर्शो की तुलना हेतु सारणी बनाने पर –

प्रतिक्रिया वर्ग	अवलोकित वितरण		प्रत्याशित वितरण		Fo ~ Fe
	Fo	Fe	Fe	Fe	
अनुपयुक्त	8	50	10	50	0
कमउपयुक्त	8	42	10	40	2
उदासीन	9	34	10	30	4
उपयुक्त	11	25	10	20	5
पूर्णतःउपयुक्त	14	14	10	10	4
	N=50		N=50		

D = सर्वाधिक ($pF_1 \sim pF_2$)

अतः D =0.10

के0एस0द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण की D मानों की सारणी से N_1 तथा N_2 के 40 से बड़ा होने पर परिगणित D मान को 0.05 व 0.01 स्तर पर सार्थकता के लिये क्रमशः $1.36/\sqrt{(N_1+N_2)/N_1N_2}$ तथा $1.63/\sqrt{(N_1+N_2)/N_1N_2}$ अथवा अधिक होना चाहिये। यहाँ पर N_1=100 तथा N_2=80 है। अतः

$$1.36/\sqrt{(N_1+N_2)/N_1N_2} = 1.36/\sqrt{(100+80)/100x80} = 9.1$$

तथा

$$1.63/\sqrt{(N_1+N_2)/N_1N_2} = 1.63/\sqrt{(100+80)/100x80} = 10.2$$

क्योंकि परिगणित D=0.10 दोनों ही मानों से कम है। अतः यह किसी स्तर पर सार्थक नहीं है। परिणामतः शून्य परिकल्पना कि दोनों प्रतिदर्शो में अन्तर नहीं है, को स्वीकार किया जा सकता है।

बोध प्रश्न –

1. के0एस0 परीक्षण का पूरा नाम क्या है?

....

....

2. के.एस. एक प्रतिदर्श परीक्षण तथा के0एस0 द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण में क्या अन्तर है ?

....

....

....

16.7 मान– व्हिटनी यू–परीक्षण

मान–व्हिटनी यू परीक्षण का प्रतिपादन दो वैज्ञानिकों मान (Mann) एवं व्हिटनी (Whitney) द्वारा 1947 में किया गया था। यह प्रमुख अप्राचलिक सांख्यिकी है। यह एक तरह का t-परीक्षण का अप्रचालिक विकल्प है जिसका प्रयोग अनुसन्धानकर्ता दो प्रतिदर्शों से प्राप्त वितरणों के माध्यों में अन्तर की सार्थकता जानने के लिये तब करता है जब आँकड़े टी–परीक्षण से सम्बन्धित पूर्वकल्पनायें सा मान्यतायें पूरी नहीं कर रहे होते हैं। अर्थात प्राप्त ऑकड़ें ऐसे हो कि वे प्रसामान्य रूप में वितरित नहीं है तथा उनमें प्रसरण की सजातीयता भी नही है।

सामान्यतः यादृच्छिक (Randomly) रूप से चुने गये जब दो स्वतन्त्र प्रतिदर्श जो आकार की दृष्टि से समान हो या न हो से ऑकड़े प्राप्त होते हैं तो मान–व्हिटनी यू परीक्षण द्वारा यह जॉच की जाती है कि क्या दोनो प्रतिदर्श एक ही समाष्टि से लिये गये हैं ? अर्थात मान–व्हिटनी यू0 परीक्षण द्वारा इस शून्य परिकल्पना की जॉच की जाती है कि इन दोनों प्रतिदर्शो में कोई सार्थक नहीं है

क्योंकि ये दोनो प्रतिदर्श एक ही समष्टि से यादृच्छिक ढंग से लिये गये हैं। यह परीक्षण क्रमों पर आधारित होता है, इसलिये इसमें अन्तराल स्तर पर प्राप्तांको का होना आवश्यक नहीं है। समान आकार के दो छोटे प्रतिदर्शो की तुलना करने के लिये क्रम योगों पर आधारित इस परीक्षण को सर्वप्रथम फ्रेंक विल्कोक्सन (Frank Wilcoxon) ने प्रस्तुत किया था। इसलिये इस परीक्षण को क्रम योग परीक्षण, कोटि परीक्षण या विलकोक्सन–मान–व्हिटनी परीक्षण भी कहते हैं। इस परीक्षण की शून्य तथा वैकल्पिक परिकल्पना निम्नानुसार होती है–

H_0 : दोनों प्रतिदर्श एक समान हैं क्योंकि दोनों एक ही अथवा एक समान समष्टियों से रैण्डम विधि से चुने गये हैं।

H_1 : दोनों प्रतिदर्श में अन्तर है अर्थात वे एक ही अथवा एक जैसे समष्टियों से नहीं चुने गये हैं।

इस परीक्षण में सर्वप्रथम दोनों प्रतिदर्शो को संयुक्त समूह मानते हुए सभी प्राप्तांको को क्रमबद्ध कर लेते हैं। क्रमबद्ध करते समय सबसे छोटे प्राप्तांक को सबसे छोटा क्रम अर्थात 1 देते हैं तथा सबसे बड़े प्राप्तांक को सबसे बड़ा क्रम अर्थात $N = N_1 + N_2$ देते हैं । प्राप्तांको को इस प्रकार से क्रमबद्ध करने के बाद दोनो समूहों के प्राप्तांकों को दिये गये क्रमों का अलग–अलग योग कर लेते हैं तथा निम्न सूत्रों का प्रयोग करके U_1 तथा U_2 की गणना करते हैं –

$$U_1 = N_1 N_2 + \frac{N_1(N_1+1)}{2} - \sum R_1$$

तथा

$$U_2 = N_1 N_2 + \frac{N_2(N_2+1)}{2} - \sum R_2$$

जहां N_1 = प्रथम समूह में प्राप्तांको की संख्या

N_2 = दूसरे समूह में प्राप्तांको की संख्या

$\sum R_1$ = प्रथम समूह में प्राप्तांको को आबंटित क्रमों का योग

$\sum R_2$ = द्वितीय समूह में प्राप्तांको को आबंटित क्रमों का योग

इन सूत्रों से परिगणित U_1 तथा U_2 मे से जो मान छोटा होता है वही यू–मान कहलाता है। यू–मान प्राप्त करने के उपरान्त उसकी सार्थकता यदि N_1 तथा N_2 दोनो ही 20 से कम होते हैं तब यू मानों की सारणी की सहायता से सरलता से निर्धारित किया जाता है। परन्तु यदि N_1 या N_2 अथवा दोनों ही 20 से अधिक होते हैं तब यू को Z में बदलकर उसकी सार्थकता सामान्य प्रायिकता वक्र सारिणी से निर्धारित करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त मान सारणी

मान से अधिक होने पर वह सार्थक कहलाता है। यू मान को जेड मान में परिवर्तित करने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$Z = \frac{U - \frac{N_1 . N_2}{2}}{\sqrt{\frac{N_1\ N_2\ (N_1 + N_2 + 1)}{12}}}$$

इस परीक्षण को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

उदाहरण – विद्यार्थियों के दो प्रतिदर्शो के गणित के मासिक परीक्षण पर प्राप्तांक निम्न प्रकार से थे। क्या दोनो प्रतिदर्शो में अवलोकित अन्तर सार्थक है?

प्रथम प्रतिदर्श – 15, 14, 16, 8, 12, 9

द्वितीय प्रतिदर्श – 17, 10, 11,14, 12

हल – चूँकि दोनों प्रतिदर्श का आकार छोटा है, अतः उनकी तुलना के लिये यू–परीक्षण का प्रयोग उचित होगा। दोनों समूहों को एक संयुक्त समूह मानकर प्राप्तांको को छोटे से बड़े की ओर क्रम प्रदान करने पर

मान –व्हिटनी यू परीक्षण के क्रम योगों की गणना

प्रथम प्रतिदर्श		द्वितीय प्रतिदर्श	
प्राप्तांक (X)	क्रम (R)	प्राप्तांक (X)	क्रम (R)
15	9	17	11
14	7.5	10	3
16	10	11	4
8	1	14	7.5
12	5.5	12	5.5
9	2		
N_1=6	$\sum R_1$=35	N_2=5	31

U_1 तथा U_2 की गणना करने पर –

$$U_1 = N_1\ N_2 + \frac{N_1\ (N_1 + 1)}{2} - \sum R_1$$

$$= 6 \times 5 + \frac{6 \times 7}{2} - 35 = 30 + 21 - 35 = 16$$

$$U_2 = N_1\ N_2 + \frac{N_2\ (N_2 + 1)}{2} - \sum R_2$$

$$= 6 \times 5 + \frac{5 \times 6}{2} - 31 = 30 + 15 - 31 = 14$$

अतः U= 14

क्यों कि N_1 तथा N_2 दोनों ही 20 से छोटे हैं अतः N_1 =6 व N_2 =5 पर

सारणी में दिये यू मानों से प्राप्त यू–मान की तुलना करके सार्थकता का निर्धारण करना होगा। सारणी में $N_1=6$ तथा $N_2=5$ के लिये U का 0.05 स्तर पर मान 4 तथा .01 स्तर पर 1 है। क्योंकि प्राप्त U=14 हैं जो दोनों से ही अधिक है। अतः यह 0.01 स्तर पर सार्थक है। इसलिये कहा जा सकता है कि दोनों प्रतिदर्शो में सार्थक अन्तर नहीं है।

यू–परीक्षण के लाभ –

मान–व्हिटनी यू परीक्षण के कुछ लाभ निम्न हैं –

(i) यह बहुत ही सरल एवं लोकप्रिय परीक्षण है।

(ii) यह परीक्षण अन्य समान परीक्षण जैसे मध्यांक परीक्षण से अधिक दक्ष (efficient) होता है।

(iii) मान–व्हिटनी परीक्षण में पूर्व मान्यताओं की आवश्यकता नहीं होती।

बोध प्रश्न –

1. मान–व्हिटनी यू परीक्षण के गणना का सूत्र क्या है ?

....

....

2. मान–व्हिटनी परीक्षण को अन्य किन नामों से भी जाना जाता है ?

....

....

16.8 सारांश

अप्राचलिक सांख्यिकी, अनुसन्धान कार्यो में सांख्यिकी अनुमान के आधार पर परिणाम प्राप्त करने की सरल तथा सहज विधियाँ है। अप्राचलिक सांख्यिकी के अन्तर्गत काई–वर्ग परीक्षण, मध्यांक परीक्षण, के0एस0परीक्षण, मान–व्हिटनी यू परीक्षण आदि बहुतायत से प्रयुक्त होने वाले परीक्षण हैं। इन परीक्षणें में काई–वर्ग परीक्षण को स्थितियो, प्रक्रिया के सोपानों, अनुप्रयोगों आदि के साथ उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है। इस इकाई में अन्य अप्राचलिक सांख्यिकी विधियों जैसे– मध्यांक परीक्षण, के.एस.परीक्षण तथा मान व्हिटनी परीक्षण में प्रयुक्त सूत्र, संकेतों का अर्थ, गणना प्रक्रिया आदि को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया गया है।

16.9 अभ्यास कार्य

1. अप्राचलिक सांख्यिकी की कौन–कौन सी विधियाँ है ?
2. अप्राचलिक सांख्यिकी के लाभों का वर्णन कीजिये ?
3. काई–वर्ग परीक्षण के सोपानों को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिये।
4. काई–वर्ग परीक्षण में येट्स संशोधन क्या है? स्पष्ट कीजिये।

5. मध्यांक परीक्षण को स्पष्ट कीजिये।
6. के0एस0द्वि–प्रतिदर्श परीक्षण की गणना प्रक्रिया को समझाइये।
7. मान–व्हिटनी परीक्षण किन परिस्थितियों में प्रयोग किया जाता है ?
8. मान–व्हिटनी परीक्षण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये ।
9. दो स्वतन्त्र प्रतिदर्शो के किसी परीक्षण पर प्राप्तांक निम्नानुसार थे

छात्र– 21, 27, 26, 18, 12, 32, 15, 36, 31, 27, 33, 17, 24, 21, 31, 15, 30, 16

छात्रा–18, 22, 16, 14, 38, 25, 27, 32, 15, 12, 18, 11, 10, 17, 24, 10

(i) मध्यांक परीक्षण की सहायता से दोनों परीक्षणों की तुलना कीजिये।

(ii) मान–व्हिटनी यू परीक्षण से आंकड़ो का विश्लेषण कीजिये।

16.10 चर्चा के बिन्दु

इस इकाई में देखा कि अप्राचलिक सांख्यिकी सांख्यिकीय अनुमान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अप्राचलिक सांख्यिकी मे काई–वर्ग परीक्षण एक मुख्य विधि है। अप्राचलिक सांख्यिकी विधियों के होते हुए भी काई–वर्ग परीक्षण की कुछ मान्यतायें होती हैं जबकि अप्राचलिक सांख्यिकी को मान्यता मुक्त सांख्यिकी भी कहते हैं। ऐसा क्यों? अनुसन्धान कार्यों में प्राचलिक या अप्राचलिक सांख्यिकी का प्रयोग एक साथ किया जाय तो परिणामों की विश्वसनीयता पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

16.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Agarwal, Y.P. : Statistical Methods : Concept Applications and computation, Sterling Publishers Private Ltd, New Delhi. (1988)

Garrett, H.E. : Statistics in Psychology and Education, Vakils, Feffer and Simons Pvt. Ltd. Bombay.(1967)

गुप्ता, एस.पी. : सांख्यिकीय विधियां, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद (2003) ।

सिंह अरूण कुमार : "मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ" मोतीलाल बनारसी दास, बंगलों रोड, नई दिल्ली (2009)।

16.12 अभ्यास हेतु आंकिक प्रश्नों के उत्तर

(i). $\div^2 = 1.89 (df=1)$ सार्थक नही

(ii). $U = 88.5$ सार्थक